श्री श्री भागवत-पत्रिका

वर्ष—१८ राष्ट्रभाषा हिन्दीमें श्रीश्रीरूप-रघुनाथकी वाणीकी एकमात्र वाहिका संख्या—१-९

नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री

श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज

आविर्भाव-शतवार्षिकी-स्मारक-विशेषाङ्क

संस्थापक एवं नियामक

नित्यलीलाप्रविष्ट परमहंस ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री
श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके

अनुगृहीत

नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री
श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज

प्रेरणा-स्रोत
नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री
श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज

सम्पादक—श्रीमाधवप्रिय दास ब्रह्मचारी, श्रीअमलकृष्ण दास ब्रह्मचारी

प्रचार सम्पादक संघ—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त वन महाराज
श्रीपाद रामचन्द्र दासाधिकारी
त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त सिद्धान्ती महाराज
श्रीयुक्ता उमा दासी, श्रीयुक्ता सुचित्रा दासी
श्रीविजयकृष्ण दास ब्रह्मचारी

सहकारी सम्पादक संघ—डॉ. श्रीअच्युतलाल भट्ट, एम. ए., पी-एच. डी.
त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त तीर्थ महाराज
त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारसिंह महाराज
डॉ. (श्रीमती) मधुखण्डेलवाल, एम. ए., पी-एच. डी.
श्रीपरमेश्वरी दास ब्रह्मचारी 'सेवानिकेतन'

कार्याध्यक्ष—श्रीमद् प्रेमानन्द दास ब्रह्मचारी 'सेवारत्न'

कार्यकारी मण्डल—श्रीगोकुलचन्द्र दास, श्रीप्रेमदास, श्रीसुबलसखा दास
श्रीसञ्जय दास,

ले-आउट, फोटो एवं डिजाइन—श्रीकृष्णकारुण्य दास ब्रह्मचारी

कार्यकारी सहायक—श्रीमद्भक्तिवेदान्त गोविन्द महाराज, गौरराज दास,
विजयलक्ष्मी दासी, मधुकर दास,
कृष्णदास, ऐश्वर्य दासी, राधारमण दास

आभार—सुशील कृष्ण दास, शचीनन्दन दास

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
जवाहर हाट, मथुरा-२८१००१(उ. प्र.)

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति ट्रस्टकी ओरसे
त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त माधव महाराज द्वारा
श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, जवाहर हाट, मथुरासे प्रकाशित।

www.purebhakti.com www.harikatha.com
bhagavata.patrika@gmail.com

॥ श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः ॥

श्री श्री भागवत-पत्रिका

वर्ष १८

श्रीगौराब्द - ५३५
वि. सं. - २०७८; विष्णु - केशव मास ; सन् - २०२१ (२९ मार्च - २८ दिसम्बर)

संख्या १ - ९

विषय-सूची

सम्पादकीय ३

श्रीव्यासपूजा एवं श्रीगुरुतत्त्व ५

श्रीश्रीबलदेव-स्तोत्रम् ७
(श्रीमद्गर्गसंहितायां बलभद्रखण्डे एकादशोऽध्याय)

श्रीगुरुभक्ति ९
ॐ विष्णुपाद सच्चिदानन्द श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

प्रतिमुहूर्त्तमें श्रीगुरुकी पूजा १३
ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपाद

श्रीव्यासपूजा २१
ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज

श्रीव्यासपूजाके अवसरपर दीन-अकिञ्चनकी श्रीहरि-गुरु-वैष्णवके निकट प्रार्थना २७
ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज

श्रीगुरु-पदाश्रय ३९
श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम गोस्वामी महाराज

श्रीव्यास-पूजाका यथार्थ तात्पर्य ४१
ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज

श्रीसारस्वत-गौड़ीय-वैष्णव एवं सतीर्थजनों द्वारा प्रदत्त पुष्पाञ्जलि ४५

श्रीमत् तुर्याश्रमी महाराजजीका आशीर्वाद-पत्र ४६

प्रपूज्यचरण अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराजके अतिमर्त्य चरित्रकी कतिपय स्मृतियाँ ४८
श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज

श्रील भक्तिवेदान्त वामन महाराजजीके कुछ संस्मरण ५९
श्रीश्रीमद्भक्तिविज्ञान भारती गोस्वामी महाराज

श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजके शतवर्ष शुभाविर्भाव-महामहोत्सव पर प्रणति-पुष्पाञ्जलि ६२
पूज्यपाद श्रीश्रीमद्भक्तिजीवन आचार्य महाराज

श्रील भक्तिवेदान्त वामन महाराजकी वैष्णवोचित गुणावली ६८
पूज्यपाद श्रीश्रीमद्भक्तिरञ्जन सागर महाराज

श्रीभक्तिवेदान्त-वामन-चरितामृत ७०
पूज्यपाद श्रीमद्भक्तिसर्वस्व गोविन्द महाराज

श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजकी आविर्भाव शतवार्षिकी पर पुष्पाञ्जलि ७४
त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिविबुध बोधायन महाराज

श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजके स्मरणमें ७७
श्रीमद्भक्तिवेदान्त साधु महाराज

जगद्गुरु नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजकी संक्षिप्त जीवनी ८१

चरणाश्रित एवं अनुगतजनों द्वारा प्रदत्त पुष्पाञ्जलि १०५

श्रील भक्तिवेदान्त-वामनगोस्वामि-द्वादशकम् १०६
श्रीपाद हरिप्रियदास

श्रीगुरुपापद्मकी आविर्भाव-शतवार्षिकीके उपलक्ष्यमें विनम्र श्रद्धाञ्जलि १०८
श्रीमद्भक्तिवेदान्त परिव्राजक महाराज

श्रीगुरुदेवके शुभाविर्भाव-शतवार्षिकीके अवसरपर भक्ति-प्रसूनाञ्जलि १११
श्रीमद्भक्तिवेदान्त तीर्थ महाराज

परमाराध्य श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज एवं श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजकी शुभाविर्भाव-शतवार्षिकीपर दीनकी स्मृतिचारणा ११४
श्रीमद्भक्तिवेदान्त माधव महाराज

मेरे प्रभुकी जन्म-शतवार्षिकीका अभिनन्दन ११९
श्रीमद्भक्तिवेदान्त वन महाराज

मेरे गुरुपादपद्म श्रील वामन गोस्वामी महाराजके शततम आविर्भाव-तिथि-वासरपर इस दासाधमका श्रद्धार्घ्य निवेदन १२३
श्रीमद्भक्तिवेदान्त बोधायन महाराज

श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजकी अप्राकृत गुणावलीका स्मरण १२७
श्रीमद्भक्तिवेदान्त श्रीधर महाराज

श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजकी आविर्भाव-शतवार्षिकीपर पुष्पाञ्जलि १३२
श्रीमद्भक्तिवेदान्त मधुसूदन महाराज

परमाराध्यतम श्रीगुरुपादपद्मकी शुभाविर्भाव-शतवर्षपूर्तिपर इस दीन सेवककी प्रणति-पुष्पाञ्जलि १३४
श्रीमद्भक्तिवेदान्त गोविन्द महाराज

आन्तरिक-कृतज्ञता १४१
श्रीमद्भक्तिवेदान्त सिद्धान्ती महाराज

श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज १४४
श्रीपाद परमेश्वरी दास ब्रह्मचारी

अप्राकृत-चरित्र १४७
श्रीसञ्जय दास

परमाराध्यतम श्रीगुरुपादपद्मकी शुभ शतवार्षिकी-आविर्भाव महोत्सवके उपलक्ष्यमें दीनाकी पुष्पाञ्जलि ... १५०
श्रीयुक्ता उमा दासी

भक्ति-रस-निर्झर स्रोत श्रील वामन गोस्वामी महाराज १५३
डा. मधु खण्डेलवाल, (साहित्याचार्या)

श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजके अप्राकृत जीवनादर्शकी शिक्षाप्रद कतिपय मधुर-स्मृतियाँ १५९

नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजकी अलौकिक-चरितावलीके किञ्चित् संस्मरण १७७

श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजके अप्राकृत शिक्षामृत-सिन्धुके कुछेक बिन्दु १८७

सम्पादकीय

परमाराध्यतम अभिन्न गुरुदेव नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजकी शुभाविर्भाव-शतवार्षिकीके उपलक्ष्यमें उनके अप्राकृत अतिमर्त्य चरित्रसे समन्वित तथा श्रीरूपानुग गुरुवर्गकी वाणीसे सुशोभित होकर, उनके समसामयिक एवं वर्तमान कालीन गुणमुग्ध गौड़ीय-वैष्णवजनों, चरणाश्रितजनों एवं अनुगतजनों द्वारा लिखित पुष्पाञ्जलियोंसे सुवासित होकर श्रीश्रीभागवत-पत्रिकाके इस 'स्मारक विशेषाङ्क' ने सारस्वत-गौड़ीय-वैष्णवोंके प्रीतिविधान एवं जगत्-मङ्गलके लिए कृपापूर्वक आत्मप्रकाश किया है। अथच यह 'स्मारक विशेषाङ्क' श्रील गुरुदेव श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजकी अपने उन शिक्षागुरु एवं ज्येष्ठ गुरुभ्राता श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजके प्रति अशेष प्रीति एवं समादरका फलस्वरूप है, जिन्होंने अपने जीवन और तन-मन-वचन-प्राणको अपने गुरुपादपद्म श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी मनोऽभीष्ट सेवामें समर्पितकर गौड़ीय-जगत्में एक 'सत्-शिष्य' एवं 'सद्गुरु' का आदर्श प्रस्तुत किया है।

इन दोनों गुरु-भ्राताओंकी आत्मीयता, परस्पर स्नेह-प्रीति एवं विश्वास, विश्वव्यापी भक्तोंके लिए प्रेरणाका स्रोत है। अपने ज्येष्ठ गुरुभ्राताकी मधुर-स्मृतियोंके परिवेशन एवं उनके निरन्तर महिमा-गानके द्वारा श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजने अपने चरणाश्रितजनों एवं अनुगतजनोंके हृदयोंमें श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजके अद्भुत-अप्राकृत व्यक्तित्व, आदर्श जीवन-चरित्र एवं शिक्षाओंके विषयमें अधिकाधिक रूपसे अवगत होनेकी वर्द्धनशील अभिलाषाका रोपण किया है।

श्रील प्रभुपादकी वाणी है कि—"प्रत्येक वर्षके प्रारम्भमें, प्रत्येक मासके प्रारम्भमें, प्रत्येक दिनके प्रारम्भमें तथा प्रति मुहूर्त्तमें उन परम-वरेण्य, परमाराध्यतम गुरुदेवकी पूजा करना कर्त्तव्य है।" तथापि आविर्भाव-शतवार्षिकी एक ऐसा स्वर्णिम अवसर है, जिसमें श्रील गुरुपादपद्म—श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजके व्यक्तित्व एवं कृतित्वकी सम्पूर्ण पटकथा नवनवायमान रूपमें समुपस्थित होती है। शत-शत भक्तोंको उनकी दयाकी विविधता, शत-शत स्थानों पर उनके चरणरजका दर्शन, शत-शत भावोंके द्वारा ठाकुर-ठाकुरानीका सेवा-विधान, शास्त्रोंकी शत-शत सारपूर्ण एवं मन्थन-निःसृत व्याख्यासमूह तथा उदारतापूर्ण व्यक्तित्वके द्वारा शत-शत स्निग्ध, स्मित और वात्सल्य वर्षा-बिन्दु भक्तहृदयोंको ऐसे सूत्रमें बाँध देते हैं, जिससे समस्त साधकभक्त एक ही स्वरमें विरह-आलाप (कथोपकथन) करते-करते उनके सामीप्यका शत-शत रूपमें अनुभव करते हुए पहलेसे शत-गुणित आनन्द एवं शतगुण उत्साहका अनुभव करते हैं, फलस्वरूप श्रील गुरुपादपद्मके तिरोभाव और आविर्भाव एक ही तात्पर्यपरक हो जाते हैं।

वास्तवमें महापुरुषोंके जीवनादर्शकी पर्यालोचना करने पर हम देखते हैं कि उनका जीवन एक धर्मशास्त्र है, एक आचार-संहिता है। इन कालातीत महाजनोंने पग-पग पर भगवत् स्फूर्तिसे विभावित होकर अपने जीवन यापनका आदर्श प्रदर्शित किया है। अतः वस्तुतः क्या ऐसे श्रीगुरुपादपद्मकी अतुलनीय अमन्दोदय दया एवं अप्राकृत गुणावलीका वर्णन कोटि-कोटि जिह्वाओंसे भी किया जा सकता है? अहो! अनन्तकोटि जन्मोंमें भी यह निर्णय करना सम्भव नहीं है। तथापि गौड़ीय-वैष्णव-दर्शनके अवरोह मार्गकी मन्दाकिनीके सुचारु प्रवाहमें जिनकी अमोघ वाणी, सुसिद्धान्तपूर्ण वक्तृतावली, सुस्पष्ट प्रबन्धावली, भावपूर्ण पत्रावली एवं आचरणगत शिक्षावलीका अतुलनीय अवदान रहा है, उन गुरुपादपद्मके शतवार्षिक-आविर्भाव महोत्सवके उपलक्ष्यमें जिन भक्तोंने अपनी प्राण-सञ्जीवनी स्मृतियों एवं पुष्पाञ्जलियोंको प्रेषित किया है, उन सबके प्रति हम हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापन करते हैं।

इस शतवार्षिकी-स्मारक-विशेषाङ्कमें जो प्रकाशित हुआ है, उसमें श्रील गुरुपादपद्मकी अद्वितीय, परम मनोहर, महामेधावी गुणयुक्त पावन चरितावली निरूपित हुई है, जिसके सम्यक् अनुशीलनसे यह अनुभववेद्य होता है कि किस प्रकार आम्नाय-परम्पराको सञ्जीवित रखा जाता है, शास्त्रके तात्पर्यको किस प्रकार धारण किया जाता है तथा श्रौतपथकी अजस्रधाराको किस प्रकार प्रवाहित किया जाता है। जबतक हम युक्तिविशारद, अकुण्ठमेधा, विशुद्ध विज्ञानके ज्योतिपुञ्ज, तत्त्वदर्शी-रसज्ञ साधु श्रील गुरुपादपद्मके सेवामय जीवन-प्रसूत आचार-विचारगत सुगन्धित शतदलीय कलिकासमूहके मृणाल-तन्तु तक नहीं पहुँच पाते, तबतक नयनमणि मञ्जरी, विनोद मञ्जरी आदिके द्वारा प्रदर्शित वेद-वेदान्तादि शास्त्रोंकी मीमांसा (समाधान) के सार श्रीमद्भागवत एवं गोपाल-विद्याका मार्मिक रहस्य—श्रीगौरसुन्दर द्वारा करुणापरवश प्रकटित अनर्पित-चिरं-उन्नतोज्जवल-भक्तिरसमें श्रीवृन्दावनीय-रस उपासना हमसे कोटियोजन दूर रहेगी।

श्रीगुरुपादपद्म अनन्त गुणोंके निलय हैं, भक्तिसिद्धान्तोंके सम्पूट (संदूक) हैं, शास्त्रीय परम्परा-वाणीके प्रखर प्रचारक हैं, गौड़ीय-वैष्णव सिद्धान्तसमूहके कोष हैं, विलक्षण निष्कपट सेवक हैं, गुरुनिष्ठ हैं, सारस्वत ऊर्जाके अद्भुत स्रोत हैं, श्रीराधा ठाकुरानीके प्रेष्ठत्वसे स्निग्ध कीर्तिवान् हैं, श्रीरूपानुगप्रवर हैं, अप्राकृत गुणावलीकी प्रतिमूर्ति हैं, वैष्णवताके श्रीनिकेतन हैं एवं समस्त जीवोंके प्रति परम दयालु हैं।

'वैष्णवेर गुणगान, करिले जीवेर त्राण'—वैष्णवोंका गुणगान करनेसे जीवका उद्धार होता है। गुरुवर्गके चरित-पीयूषकणका आस्वादन एवं उनके गुणोंका कीर्तन करने पर उनके चरणकमलोंमें निष्कपट प्रीति उदित होती है जिससे हमारा आत्यन्तिक और अशेष कल्याण साधित होता है। यद्यपि हमारी वर्तमान अनर्थग्रस्थ अवस्थामें हमें अज्ञान-निवारक परम-भास्कर श्रीगुरुपादपद्मका प्रत्यक्ष दर्शन नहीं हो रहा है, किन्तु उनकी भूरिदा (प्रशंसनीय) विजय-वैजयन्ती (विजय-पताका) सर्वत्र लहरा रही है, उनके उपदेश-मृदङ्गसे नभमण्डल मुखरित हो रहा है एवं दिग्-दिगन्त जय-जयकार ध्वनिसे धन्यातिधन्य हो रहे हैं।

हम यह 'स्मारक-विशेषाङ्क' अपने परमाराध्यतम गुरुदेव ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजके कर-कमलोंमें इस हार्दिक निवेदनके साथ अर्पित कर रहे हैं कि वे इसे अपने ज्येष्ठ एवं प्रिय गुरु-भ्राता श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजके कर-कमलोंमें उनकी आविर्भाव शतवार्षिकीके अवसरपर समर्पित करें। श्रील गुरुदेवके माध्यमसे समर्पित होने पर हमारी तुच्छ भेंट अवश्य ही स्वीकृत होगी—ऐसा हमारा पूर्ण विश्वास है।

सारस्वत-गौड़ीय-वैष्णव परिवारके परिजनोंने जिन गुणावली-समूहको लिपिबद्ध किया है, पुष्पाञ्जलियोंको अर्पण किया है, अपने हृद्गत मधुर-स्मृतियों एवं अतिमर्त्य चरित्रके वृत्तान्तोंको उद्घाटित किया है, वर्तमान समयमें अथवा भविष्यमें जो सभी सौभाग्यवान् जीव इस 'स्मारक विशेषाङ्क'में प्रकाशित श्रीगुरुपादपद्मके अप्राकृत जीवनकी झाँकीका दर्शन करेंगे एवं सहृदयताके साथ उनके चरित्रका अनुशीलन करेंगे, वे लोग अवश्य ही अपने जीवनको धन्यातिधन्य अनुभवकर भजन-पथ पर अग्रसर होनेकी प्रेरणा प्राप्त करेंगे। करुणासागर श्रीगुरुपादपद्मकी प्रीतियुक्त सेवावृत्तिकी पुनः-पुनः चर्चा करनेपर वज्रके समान कठोर हृदय भी द्रवीभूत होगा एवं जागतिक प्रवृत्ति भगवत् उन्मुखी प्रवृत्तिमें पर्यवसित होकर व्रजभावसेवा अभिमुखी होगी।

हम गुरु-द्वयकी अहैतुकी करुणा एवं आशीर्वादकी प्रार्थना करते हैं, जिससे हम उनकी अप्राकृत शिक्षाओं एवं आदर्श जीवन-चरितको हृदयाङ्गम करके अपने जीवनमें पालन करनेका सामर्थ्य लाभ कर सकें।

जय परमाराध्य जगद्गुरु नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजकी जय!

जय परमाराध्य जगद्गुरु नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजकी जय!

श्रीव्यास-पूजा एवं श्रीगुरुतत्त्व

श्रीश्रीबलदेव-स्तोत्रम्

(श्रीमद्गर्गसंहितायां बलभद्रखण्डे एकादशोऽध्याय)

देवादिदेव भगवन् कामपाल नमोऽस्तुते।
नमोऽनन्ताय शेषाय साक्षाद्रामाय ते नमः॥१॥

हे देवादिदेव! हे भगवन् कामपाल् (भगवान्‌की कामनाओंको पूर्ण करनेवाले)! आपको नमस्कार है। हे बलराम! आप साक्षात् शेष, अनन्त हैं, आपको नमस्कार है।

धराधराय पूर्णाय स्वधाम्ने सीरपाणये।
सहस्रशिरसे नित्यं नमः सङ्कर्षणाय ते॥२॥

हे पृथ्वीको धारण करनेवाले! आप अपने तेजसे पूर्ण हैं, आप सीरपाणि अर्थात् हाथमें हल धारण किये हुए हैं। हे सहस्र-शीर्ष सङ्कर्षण, आपको नित्य नमस्कार है।

रेवतीरमण त्वं वै बलदेवाच्युताग्रज।
हलायुध प्रलम्बघ्न पाहि मां पुरुषोत्तम॥३॥

हे बलदेव! आप अच्युत (श्रीकृष्ण) के ज्येष्ठ भ्राता हैं, रेवतीके पति हैं, हलरूपी अस्त्र धारण करनेवाले हैं तथा प्रलम्बासुरके नाशक हैं। हे पुरुषोत्तम! आपको नमस्कार है।

बलाय बलभद्राय तालाङ्काय नमो नमः।
नीलाम्बराय गौराय रोहिणेयाय ते नमः॥४॥

हे बल, बलभद्र तथा तालध्वज! आपको बार-बार नमस्कार है। नीलवस्त्र-धारी, गौरवर्ण-विशिष्ट, रोहिणी-पुत्र, आपको नमस्कार है।

धेनुकारिर्मूष्टिकारिः कूटारिर्बल्वलान्तकः।
रुक्म्यरिः कुपकर्णारिः कुम्भाण्डारिस्त्वमेव हि॥५॥

आप धेनुकासुरका वध करनेवाले हैं, मुष्टिक (कंसके मल्ल) का दमन करनेवाले, कूट (कंसके मल्ल) के घातक तथा बल्वल (नैमिषारण्यमें ऋषियोंके यज्ञमें विघ्न पहुँचानेवाले)के

संहारक हैं। रुक्मी (रुक्मिणीके भ्राता), कूपकर्ण (बाणासुरके मन्त्री), कुम्भाण्ड (बाणासुरके मन्त्री)—इन सबके विनाशक आप ही हैं।

कालिन्दी-भेदनोऽसि त्वं हस्तिनापुर-कर्षकः।
द्विविदारिर्यादवेन्द्रो ब्रजमण्डल-मण्डनः॥ ६॥

आपने कालिन्दीको भेद किया, हस्तिनापुरको आकर्षण किया तथा द्विविद वानरका वध किया है। आप यादवगणोंमें सर्वश्रेष्ठ तथा व्रजमण्डलकी शोभा हैं।

कंसभ्रातृ-प्रहन्तासि तीर्थयात्राकरः प्रभुः।
दुर्योधनगुरुः साक्षात् पाहि पाहि प्रभो ततः॥ ७॥

आप कंसके भाइयोंका वध करनेवाले हैं, तीर्थयात्रा-कारी प्रभु हैं तथा साक्षात् दुर्योधनके गदायुद्धके शिक्षागुरु हैं। अतः हे प्रभो! रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए।

जय जयाच्युत देव परात्पर
स्वयं अनन्त दिगन्तगतश्रुत।
सुरमुनीन्द्र-फणीन्द्रवराय ते
मुषलिने बलिने हलिने नमः॥ ८॥

हे अच्युत! आपकी जय हो, जय हो; हे परात्पर देव! आप स्वयं अनन्त तथा दिगन्त-पर्यन्त विश्रुत (विख्यात) हैं एवं आप सुरेन्द्र-मुनीन्द्र-फणीन्द्रगणोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं। हल-धारी, बल-धारी तथा मूषल-धारी आपको नमस्कार है।

यः पठेत् सततं स्तवनं नरः
स तु हरेः परमं पदमाव्रजेत्।
जगति सर्वबलं त्वरिमर्दनं।
भवति तस्य धनं स्वजनो घनम्॥ ९॥

जो व्यक्ति सतत इस स्तवका पाठ करता है, वह हरिका परमपद प्राप्त करता है। जगत्‌में उसको समस्त प्रकारका बल, शत्रु-संहारमें सामर्थ्य, धन तथा स्वजन निरन्तर प्राप्त होते रहते हैं।

[श्रीगौड़ीय स्तोत्ररत्नसे अनुदित]

श्रीगुरुभक्ति

ॐ विष्णुपाद सच्चिदानन्द श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

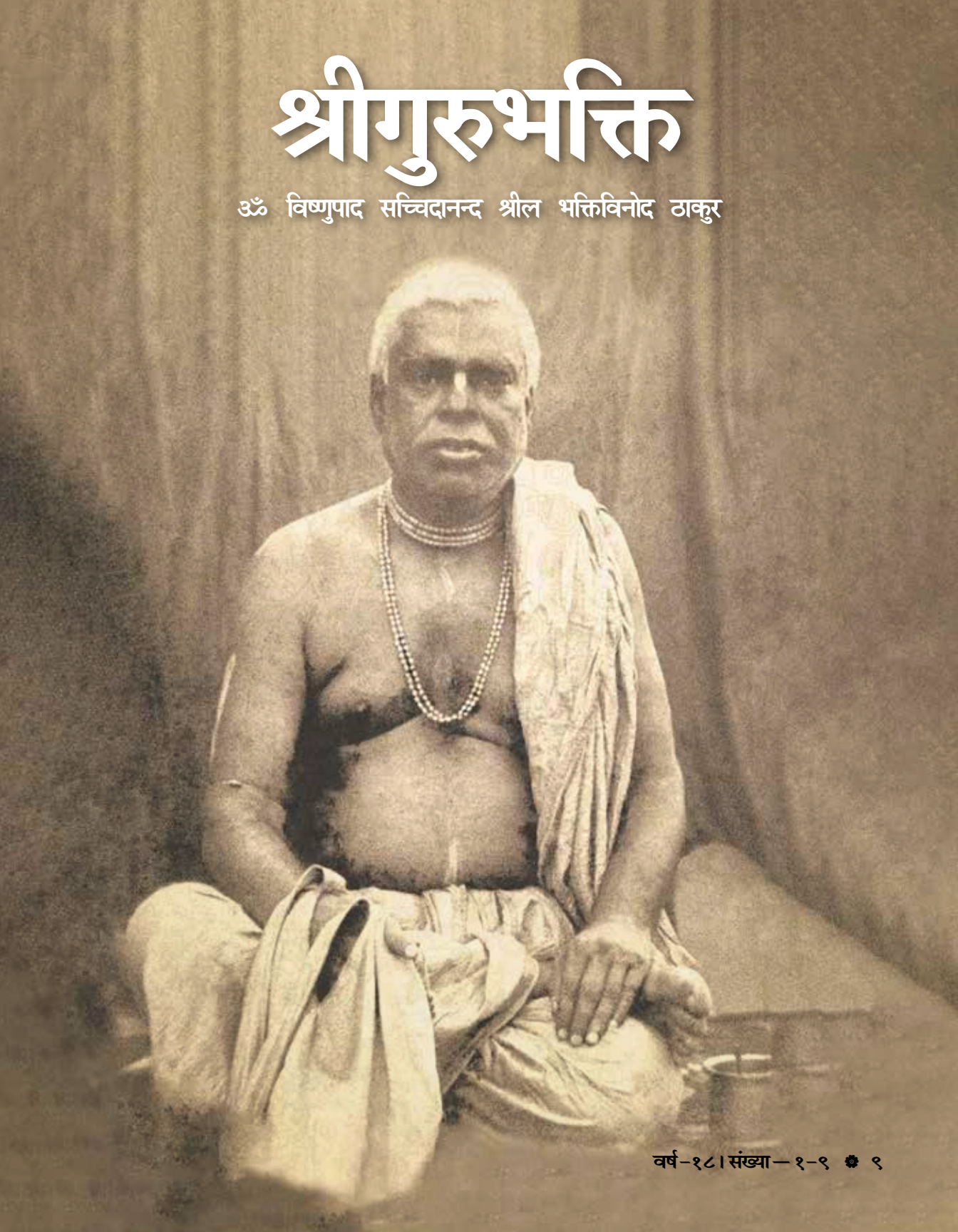

सद्गुरुकी कृपासे यथार्थ सुखकी प्राप्ति

सुविस्तृत संसार-जालमें आबद्ध अन्धजीवगण सुखकी आशामें माया और मोह द्वारा मुग्ध होकर इधर-उधर परिभ्रमण करते हैं; विद्या, बुद्धि, धन और मान आदि सभीमें सुखको ढूँढते हैं, परन्तु किसी भी प्रकारसे अपनेको सुखी नहीं कर पाते। इस प्रकार जीवके अनेक जन्म बीत जाते हैं। बहुत जन्मोंमें अर्जित सुकृतियोंके फलस्वरूप जब जीवके हृदयमें भगवद्-विषयिनी श्रद्धाका सञ्चार होता है, तभी उसे सुख-प्राप्तिका आभास होता है। श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् हैं, जीवगण उनके नित्य किङ्कर (दास) हैं। श्रीकृष्णके प्रति भक्ति करनेसे जीवका समस्त क्लेश दूर होकर उसे कृष्णदास्य प्राप्त होता है। इस प्रकारके दृढ़ विश्वासका नाम 'श्रद्धा' है। श्रद्धावान् जीव शीघ्र ही सद्गुरुका चरणाश्रय करता है तथा श्रीगुरुकृपाके द्वारा उसे समस्त सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं।

जीवोंके परम-बन्धु

असीम कृपामय वैष्णवगण इस जगत्में जीवोंके परम बन्धु हैं। जीवोंको कृष्ण-विमुख जानकर वे उनके निकट निरन्तर भक्तितत्त्वका प्रचार करते हैं। जब जीवगण भक्तितत्त्वमें श्रद्धावान् होकर वैष्णव -चरणाश्रय करते हैं, तब वैष्णवगण श्रीगुरुरूपसे उनको भगवत् भजनका उपदेश प्रदान करते हैं। वे भजननिपुण तथा अनन्यचित्तवाले योग्य शिष्यमें कृपाका सञ्चार कर श्रीकृष्णके अप्राकृत भण्डारके दर्शनके लिए उसमें शक्ति प्रदान करते हैं। इस प्रकार वैष्णव-कृपाकी सीमा नहीं है। शत-शत अनर्थोंसे परिपूर्ण, विभिन्न प्रकारसे माया द्वारा मोहित, संसार-सागरमें पतित अति क्षुद्र अधम जीवको जो श्रीगुरुरूपमें अपने चरणोंमें स्थान प्रदान करते हैं, उसके भजनविहीन जीवनका भार स्वयं ग्रहण करते हैं, अपने विशुद्ध चरित्र और सुदृढ़ भजनसे उसे मुग्धकर एवं शक्तिका सञ्चार कर उसे भजनमार्गमें क्रमशः अग्रसर करते हैं, यथार्थतः उनकी अपार कृपाकी कोई सीमा नहीं है, वह अनन्त और अद्भुत है। इसलिए श्रील नरोत्तम ठाकुर महाशयने लिखा है—

श्रीगुरु करुणा-सिन्धु, अधम-जनार बन्धु,
लोकनाथ' लोकेर-जीवन।
हा हा प्रभो! कर दया, देह' मोरे पदछाया,
एबे यश घुषुक त्रिभुवन॥

चक्षु-दान दिला जेइ, जन्मे-जन्मे प्रभु सेइ,
दिव्यज्ञान हृदे प्रकाशित।
प्रेम-भक्ति जाँहा हइते, अविद्या विनाश जा'ते,
वेदे गाय जाँहार चरित॥

[श्रीगुरुदेव (श्रील लोकनाथ गोस्वामी प्रभु) करुणाके सागर हैं, अधम जनोंके परमबन्धु हैं तथा जगत्वासियोंके जीवनस्वरूप हैं। हे प्रभो! आप मुझपर कृपाकर अपने चरणोंकी छाया प्रदान कीजिए। आपका यश त्रिभुवनमें विघोषित हो। जो दिव्यचक्षु प्रदानकर हृदयके अज्ञानतारूपी अन्धकारका विनाश करते हैं, दिव्यज्ञानका प्रकाशकर हृदयमें प्रेमभक्तिको उदित कराते हैं, स्वयं वेद भी जिनके अलौकिक चरित्रका गुणगान करते हैं, वे ही मेरे जन्म-जन्मान्तरोंके प्रभु हैं।]

दीक्षागुरु और शिक्षागुरु—दोनोंके प्रति एक जैसा सम्मान प्रदर्शन

दीक्षागुरु और शिक्षागुरु भेदसे श्रीगुरु दो प्रकारके हैं। जिनसे मन्त्र प्राप्त होता है, वे दीक्षागुरु हैं और जिनसे भजन-शिक्षा ग्रहण की जाती है, वे

ही शिक्षागुरु हैं। शिष्य दोनोंके प्रति ही एक जैसा सम्मान प्रदर्शन करेंगे, दोनोंको ही कृष्णशक्तिके प्रकाश रूपमें जानेंगे, उनके प्रति किसी प्रकारकी भेद-भावना रहनेसे शिष्य अपराधी हो जायेंगे। श्रीचैतन्य-चरितामृतमें कथित है—

यद्यपि आमार गुरु चैतन्येर दास।
तथापि जानिये आमि ताँहार प्रकाश॥

गुरु कृष्णरूप हन शास्त्रेर प्रमाणे।
गुरुरूपे कृष्ण कृपा करेन भक्तगणे॥

शिक्षागुरुके त' जानि कृष्णेर स्वरूप।
अन्तर्यामी, भक्तश्रेष्ठ—एइ दुइ रूप॥

[यद्यपि मेरे गुरु श्रीचैतन्य महाप्रभुके दास हैं, तथापि मैं उन्हें श्रीमन्महाप्रभुके प्रकाशके रूपमें जानता हूँ। शास्त्रप्रमाणोंके अनुसार गुरु कृष्णके रूप हैं, कृष्ण गुरुरूपसे भक्तोंपर कृपा करते हैं। शिक्षागुरुको मैं कृष्णका स्वरूप जानता हूँ। शिक्षागुरु दो प्रकारके हैं—भजनके अनुकूल विवेकदाता चैत्यगुरु एवं भजनानन्दी महान्त-गुरु।]

श्रीगुरु—श्रीभगवान्‌के प्रकाश-विशेष

गुरुको साक्षात् भगवान् मानना अपराध है, क्योंकि इस प्रकारके विचारसे यह 'जीव और ईश्वरमें समानता' रूप मायावाद मत हो जाता है। श्रीगुरुको श्रीभगवान्‌के प्रकाश-विशेष या श्रीभगवान्‌की शक्तिके रूपमें भक्ति करनेसे कोई दोष नहीं रहता है। प्रेममय भगवान् ही श्रीगुरुदेवमें प्रकटित होकर दीक्षा दे रहे हैं—शिष्यके मनमें इस प्रकारका भाव रहनेसे ही उसका मङ्गल होगा, श्रीगुरुवाक्यमें उसका दृढ़ विश्वास होगा और उनके प्रति अचला भक्ति होगी।

श्रीगुरु और शिष्य होनेके लक्षण

श्रद्धावान् जीव बहुत यत्नपूर्वक सद्‌गुरुका चरणाश्रय करेंगे। वैष्णवाचार्य श्रील सनातन गोस्वामीने विविध शास्त्रोंसे श्रीगुरुके लक्षण और शिष्यके लक्षण अपने हरिभक्तिविलास नामक ग्रन्थमें संग्रह किये हैं। उन सभी शास्त्रवाक्योंका तात्पर्य यह है कि दृढ़-चरित्रवान्, विशुद्धभक्त भागवतोत्तम ही जीवके गुरु हैं तथा निष्पाप, शुद्धश्रद्धावान् विनीत शिष्य ही शिक्षाके लिए उपयुक्त है। इस विचारका उल्लंघन होनेपर अनर्थ उपस्थित होता है। श्रीमन्महाप्रभुके श्रीमुखवाक्य ये हैं—**"जेइ कृष्ण-तत्त्ववेत्ता सेइ गुरु हय"** एवं **"गुरु यथा भक्तिशून्य तथा शिष्यगण"** [जो कृष्णतत्त्वको भलीभाँति जानते हैं, वे ही गुरु हैं। भक्तिशून्य गुरुके शिष्य भी वैसे ही होते हैं।] प्रभुके श्रीमुखवाक्य सर्वत्र सत्य हैं, इसमें कोई संशय नहीं है।

गुरु और शिष्य—दोनोंका सम्बन्ध जीवनके बाद भी वर्तमान

शास्त्रमें कहा गया है कि गुरु बहुत दिनोंतक शिष्यकी परीक्षा लेंगे एवं शिष्य भी श्रीगुरुके चरित्रका सम्पूर्ण रूपसे दर्शन करेंगे। इस प्रकार दोनों एक दूसरेकी शुद्धता जाननेके बाद सम्बन्ध स्थापित करेंगे। गुरु-शिष्यका सम्बन्ध दो दिनोंके लिए नहीं होता, अपितु जीवनके बाद भी वर्तमान रहता है। यदि शिष्य यत्नके साथ ढूँढकर सद्‌गुरु आश्रय नहीं करते, तब वे विभिन्न कारणोंसे गुरुदेवके प्रति अचला भक्ति नहीं रख सकते और गुरुके प्रति अवज्ञा दोषके कारण परमार्थसे विच्युत हो जाते हैं। यदि गुरु अयोग्य हैं, तो शिष्य उनका परित्याग कर अन्य सद्‌गुरुको स्वीकार करेंगे। शिष्य यदि पतित हो जाता है और श्रीगुरु उसका संशोधन करनेके लिए असमर्थ होते हैं, तो गुरुको उस शिष्यका परित्याग कर देना चाहिए।

श्रीगुरु-आदेशका विशेष यत्न और दृढ़ताके साथ पालन करनेसे गुरुकृपाकी प्राप्ति

श्रीगुरुदेव शिष्यको जिस प्रकार आदेश देंगे, दृढ़ श्रद्धाके साथ शिष्यको उसका पालन करना चाहिए। वैसा न कर विभिन्न लोगोंके निकट जाकर विभिन्न प्रकारके उपदेशोंका श्रवण करनेसे लौल्य-दोषसे शिष्यका भजन नहीं होगा। यह देखना होगा कि श्रीगुरुदेव जो आदेश देते हैं, वह सत्शास्त्रविरुद्ध है या नहीं। यदि शास्त्रविरुद्ध लगता है, तो सरल भावसे श्रीगुरुके चरणोंमें उसे निवेदन कर शास्त्रवाक्यके साथ समन्वय (मेल-जोल) कर लेंगे। श्रीगुरुदेव जिस प्रकार आदेश देते हैं, विशेष यत्न और दृढ़ताके साथ उसका पालन न करनेसे किसी भी प्रकारसे गुरुकृपा प्राप्त नहीं की जा सकती।

शिष्यमें श्रीगुरुके प्रति ममता उदित होनेका क्रम

भागवतोत्तम गुरुदेव इच्छा करनेपर शिष्यमें शक्तिसञ्चार कर उसे परमभागवत बना सकते हैं, किन्तु अयोग्य शिष्यको उस प्रकार बनानेकी श्रीगुरुदेवमें स्वाभाविक प्रवृत्ति नहीं होती। जीव यत्नपूर्वक श्रीगुरुवाक्य पालनकर शीघ्र ही गुरुकृपा-रूपी धनसे धनी हो जाते हैं। 'श्रीगुरुकृपा' क्या वस्तु है, वे समझ सकते हैं। जबतक भजनमें अनर्थ रहता है, तबतक यत्नपूर्वक शास्त्रोक्त विधि-निषेधोंका पालनकर श्रीगुरु द्वारा उपदिष्ट भजन-पथ पर अग्रसर होना पड़ता है। श्रीगुरुदेवकी कृपासे शिष्य जब अनर्थ-सागरको पारकर निष्ठा और उसके बाद रुचिके राज्यमें उपस्थित होता है, तब श्रीगुरुकृपा प्रबलरूपसे प्रवाहित होती है। तब श्रीगुरुदेव उसके जीवनके धन हो जाते हैं। शिष्यमें उनके प्रति ममता उदित होती है एवं क्रमशः भजन-सुखकी वृद्धिके साथ-साथ वह ममता परिपक्व होकर श्रीगुरुदेवके प्रति अपूर्व दास्य-रसका विस्तार करती है। तब शिष्य श्रीगुरुदेवके चरणोंमें अति यत्नके साथ अपना जीवन समर्पण करता है।

श्रीगुरु-वाक्योंका पालन ही शिष्यकी प्रधान सेवा

जबतक स्वाभाविक प्रीतिका उदय नहीं होता है, तबतक श्रीगुरुकृपाकी प्राप्तिके लिए उनकी सेवा करना शिष्यके लिए नितान्त आवश्यक है। यत्नके साथ श्रीगुरुवाक्योंका पालन करना ही उसकी प्रधान सेवा है। अनेक शिष्य श्रीगुरुदेवके वचनोंका पालन करनेमें उतना यत्न नहीं करते, किन्तु किसी प्रकारसे श्रीगुरुदेवके पाद-सेवन या उनको वायु-वीजन (पंखा) करनेके लिए अत्यन्त व्यस्त हो जाते हैं। यदि सहज प्रीतिके साथ ऐसा किया जाता है, तो वह अति उत्तम है, किन्तु यदि हृदयमें कपटता रहती है या इस प्रकारकी सेवासे श्रीगुरुदेवका प्रिय बन जाऊँगा—ऐसी आशा रहती है, तो वह उतना अच्छा नहीं है, उससे श्रीगुरुदेवका प्रिय नहीं हुआ जाता। श्रीगुरुदेवके आदेशोंका पालन करनेसे वे अधिक सन्तुष्ट होते हैं। यह निश्चित है कि उस प्रकारका सेवन बुरा नहीं है, क्योंकि वैसी सेवाके फलसे श्रीगुरुवाक्योंका पालन करनेके लिए शक्ति प्राप्त होती है एवं उसी (श्रीगुरुवाक्य-पालन) से ही श्रीगुरु-कृपा प्राप्त होती है। सहज प्रीतिवशतः की गयी सेवाके फलसे आत्मप्रसाद (आत्मसन्तुष्टि) प्राप्त होती है।

[श्रीगौड़ीय-पत्रिका (वर्ष-१२, संख्या-१०) से अनुदित]

प्रतिमुहूर्त्तमें श्रीगुरुकी पूजा

(श्रीव्यासपूजाके अवसरपर ॐ विष्णुपाद
श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपादका प्रत्यभिभाषण)

स्थान—श्रीचैतन्यमठका सारस्वत नाट्यमन्दिर, मायापुर
तिथि एवं समय—७ फरवरी १९३१, शनिवार, कृष्णा-पञ्चमी, रात ९ बजे

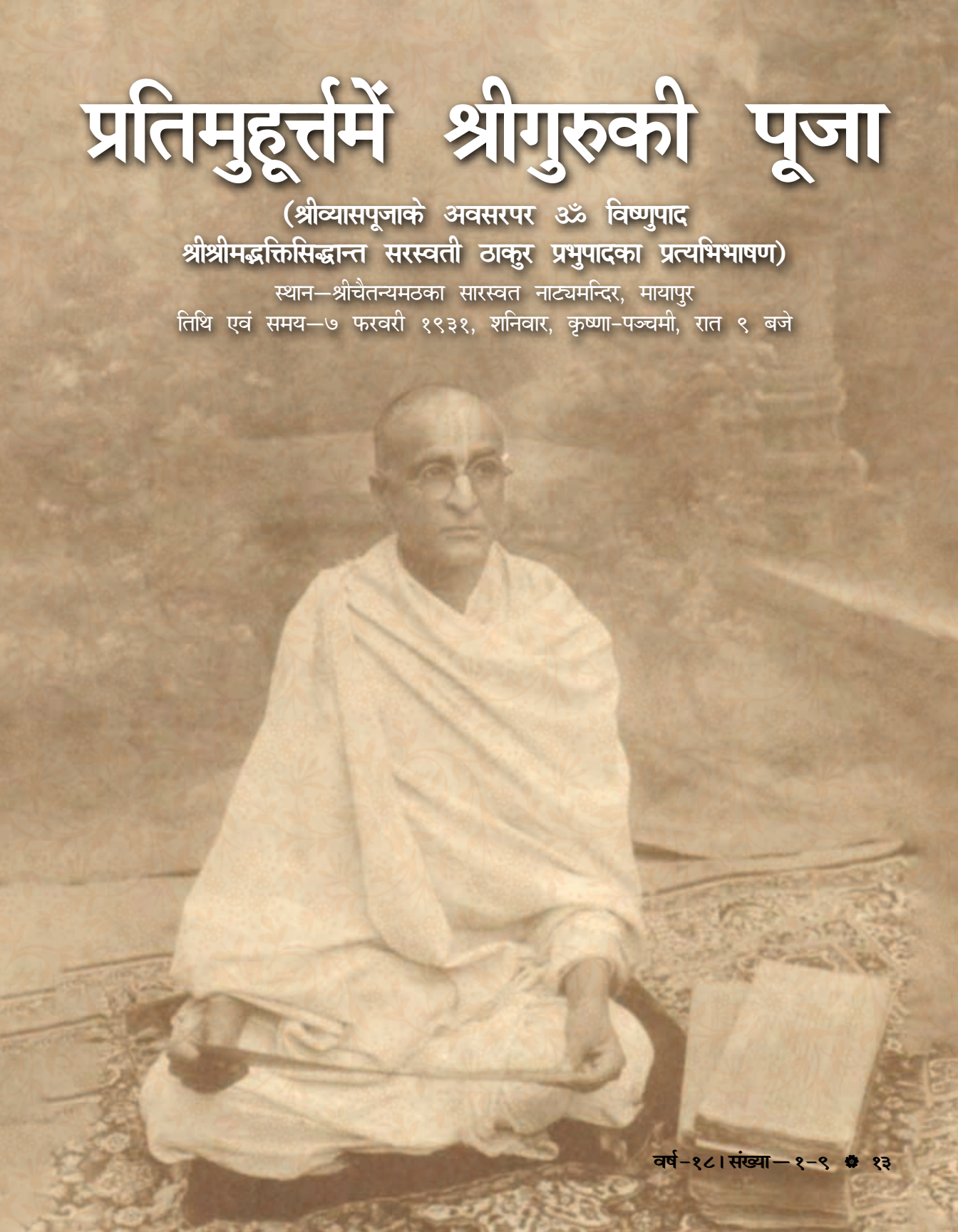

अज्ञान-तिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जन-शलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरुवै नमः॥

हम सब मिलकर भगवान्‌की सेवा करेंगे

आजके दिवसमें मुझे श्रीगुरुदेवकी पूजा करनेका सुयोग प्राप्त हुआ है। पिछले वर्ष भी मुझे अपने गुरुदेवकी पूजा करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था, आज भी वैसा सुयोग उपस्थित हुआ है। भगवत्कृपासे श्रीगुरु-सेवा करनेका सुयोग हमें एक वर्षतक प्राप्त हुआ है। यदि श्रीगुरुदेव हमें अपनी सेवासे वञ्चित करनेकी अभिलाषा करते, तब हम वर्षव्यापी जीवन लाभ नहीं कर पाते। हमने जो यह वर्षव्यापी जीवन लाभ किया है, उसके अनुरूप हम अपने श्रीगुरुदेवकी सेवा कर पाये हैं अथवा नहीं, इस विषयकी विवेचना करनेका समय उपस्थित हुआ है।

श्रीगुरुदेवने कहा है कि, **हम सब मिलकर भगवान्‌की सेवा करेंगे।** इस **'हम'** शब्दके द्वारा उन्होंने केवल एक व्यक्तिको लक्ष्य करके यह बात नहीं कही है। अनेक लोग स्वार्थपर होकर कहते हैं—"मैं ही सेवा करूँगा, अथवा अकेले मुझपर ही यह कार्यभार पड़ा है, अन्य किसीका इसमें अधिकार नहीं है।" किन्तु श्रीगुरुदेवका दयार्द्रचित्त कहता है—"आओ, हिंसाका परित्यागकर सभी मिलकर भगवान्‌की पूजा करते हैं। यह समस्त अभिलाषओंमें सर्वश्रेष्ठ वस्तु है।" सर्वश्रेष्ठ वस्तु होनेके कारण अन्य लोग इसे कर नहीं पायेंगे अथवा अन्य लोगोंको मैं करने नहीं दूँगा, इस प्रकारकी हिंसा मेरे गुरुदेवमें नहीं है। सभीके द्वारा मिलकर जो कीर्त्तन किया जाता है, वही 'सङ्कीर्त्तन' है। [जैसा कि भक्तिसन्दर्भमें कहा गया है—] 'बहुभिर्मिलित्वा यत् कीर्त्तनं, तदेव सङ्कीर्त्तनम्।' सङ्कीर्त्तनके अन्तर्गत वन्दना—स्तुति आती है।

बाहरीरूपसे देखनेपर प्रतीत होता है कि स्तावक (स्तुति करनेवाले) का स्थान-निम्न है और स्तवनीय (स्तुतिके पात्र) का स्थान उच्च है, किन्तु इस बातका तृतीय पक्ष श्रवण करनेपर अच्छी तरहसे यह समझा जा सकता है कि किस प्रकार स्तावककी महिमा स्तवनीय वस्तुकी अपेक्षा उसके स्तवन-कार्यमें कितने परिमाणमें अधिक अग्रसर होनेपर और भी अधिक है।

भगवान्‌को पुकारनेके लिये 'तृणादपि सुनीच' होना होगा

श्रीगौरसुन्दरकी वाणी यही है कि भगवान्‌को पुकारनेके लिये 'तृणादपि सुनीच' होना होगा। कोई व्यक्ति अपनी तुच्छताकी उपलब्धि न होने-तक किसी दूसरेको नहीं पुकारता। जब हम किसी अन्यकी सहायताके लिये प्रार्थी होते हैं, तब हम स्वयंको असहाय मानते हैं कि—मेरे द्वारा कोई कार्य सम्पन्न नहीं हो रहा है, अतएव किसी अन्यकी सहायता ग्रहण करनेके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। पाँचजनोंके मिलकर करनेसे ही जो कार्य सम्पन्न हो सकता है, वह केवल एक व्यक्तिके द्वारा सम्भवपर नहीं होता है। श्रीगौरसुन्दरने भगवान्‌को पुकारनेके लिये कहा है तथा यह बात श्रीगुरुदेवके माध्यमसे अवगत होती है। 'भगवान्‌को पुकारनेके लिये कहा है'—यह कहनेका तात्पर्य है कि भगवान्‌की सहायता ग्रहण करनेके लिये कहा है, किन्तु यदि हम भगवान्‌को पुकारते समय उन्हें अपने भृत्य (दास) के रूपमें परिणत कर बैठते हैं अथवा अपने किसी कार्यकी पूर्ति करनेके लिये हम उनकी सहायता ग्रहण करना चाहें, तब तो हममें 'तृणादपि सुनीचता' नहीं रह सकती। केवल बाहरीरूपसे प्रकाश होनेवाला दैन्य

'तृणादपि सुनीचता' नहीं है, वह कपटता है। जिस प्रकारसे पुकारनेपर सभी सेवकगण (नौकर) उत्तर देते हैं, वैसी पुकार भगवान् तक नहीं पहुँचती। कारण, वे परम स्वतन्त्र, पूर्ण चेतन वस्तु हैं, किसीके भी वशमें नहीं आते हैं। अपनी अस्मिताको निष्कपट दैन्यमें प्रतिष्ठित न करनेपर पूर्ण-स्वतन्त्र भगवान्‌के निकट हमारा आवेदन नहीं पहुँचता है।

और एक बात है, 'तृणादपि सुनीच' होकर पुकारनेके साथ यदि हम सहनशीलता-गुणसे सम्पन्न न हों, तो ऐसा होनेपर भी पुकारना नहीं होता है। यदि हम किसी वस्तुके प्रति लोभी होकर असहिष्णुता दिखाते हैं, तो 'तृणादपि सुनीच' भावके विरुद्ध भाव ग्रहण करना होगा। यदि हम सम्पूर्णरूपसे विश्वास-युक्त होते हैं कि, भगवान् पूर्ण वस्तु हैं और उनको पुकारनेपर किसी प्रकारका अभाव नहीं होगा, ऐसा होनेपर उस समय सहनशीलताका भी अभाव नहीं होगा। और यदि हम लोभी होकर—असहिष्णु होकर चञ्चलता प्रकाश करते हैं—'मैं स्वयं अपने कुछ कृतित्व-सामर्थ्यका अवलम्बनकर कार्य सम्पन्न करूँगा'—ऐसे विचारको गाँठ बाँधकर रखते हैं, तो ऐसा होनेपर भी भगवान्‌को पुकारना नहीं होता है। आत्मम्भरिता (स्वार्थ) अधिक होनेपर भी भगवान्‌को पुकारना नहीं होता है। आत्मम्भरिता का विनाश करनेकी चेष्टामें नियुक्त रहनेपर भी पुकारना नहीं होता है।

वास्तविक मङ्गल-विधाता—आश्रयजातीय भगवान् श्रीगुरुदेव

हम अनेक समय ऐसा समझते हैं कि हम अनुग्रहकर स्तवादि करते हैं—भगवान्‌को पुकारनेके स्थानपर अन्य कार्योंमें नियुक्त हो सकते हैं—इस प्रकारकी बुद्धि भी सहनशीलताके अभावकी ही परिचायक है। इन सभी मनोभावोंसे हमारी रक्षा करनेके लिये—हम निष्कपट 'तृणादपि सुनीच' भावसे जितना वञ्चित होते हैं, उससे रक्षा करनेके लिये रक्षककी आवश्यकता है—ऐसी दुष्प्रवृत्तिसे रक्षा करनेके लिये हमें आश्रयकी आवश्यकता है। ठाकुर श्रीनरोत्तम (प्रार्थना ४४) में कहते हैं—

आश्रय लइया भजे, तारे कृष्ण नाहि त्यजे,
आर सब मरे अकारण।

[अर्थात् जो आश्रय ग्रहणकर भजन करते हैं, श्रीकृष्ण उन्हें त्यागते नहीं हैं, किन्तु जो आश्रय-रहित होकर भजन करते हैं, वे अकारण ही भजन-पथसे विच्युत हो जाते हैं।]

श्रीगुरुदेवकी सेवा ही सबसे पहला प्रयोजन है। जगत्‌में कर्म, ज्ञान या अन्य अभिलाषाओंको प्राप्त करनेके लिये भी गुरुकी आवश्यकता होती है, किन्तु उन समस्त गुरुओंके द्वारा प्रदत्त विद्या तुच्छ-तुच्छ फलका ही प्रसव करती है। पारमार्थिक श्रीगुरुदेव ऐसे तुच्छ फलके प्रदाता नहीं हैं। श्रीगुरुदेव वास्तविक मङ्गल-विधाता हैं। जिस मुहूर्त्तमें हम आश्रयजातीय भगवान्‌के अनुग्रहसे रहित हो जायेंगे, उसी मुहूर्त्तमें जगतकी विभिन्न अभिलाषाएँ उपस्थित होंगी। यदि वर्त्म-प्रदर्शक गुरुदेव हमें यह उपदेश प्रदान न करें कि—किस प्रकार श्रीगुरुदेवका आश्रय ग्रहण करना होगा, किस प्रकार गुरुपादपद्मके साथ व्यवहार करना होगा—यदि वे यह सब शिक्षा न दें, तब हम रत्नको प्राप्त करके भी उसे खो बैठेंगे—उससे वञ्चित हो जायेंगे।

नामभजन-प्रणालीके प्रदाता श्रील गुरुदेवकी पूजा

नामभजन ही एकमात्र भजन-प्रणाली है। श्रीगुरुदेव यह भजन-प्रणाली ही प्रदान करते हैं, अतः वर्षके आरम्भसे ही श्रीगुरुपादपद्मकी पूजा करना हमारा कर्त्तव्य है। श्रीरूप गोस्वामीने श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु (१/२/७४) में कहा

है—"आदौ गुरुपदाश्रयस्तस्मात् कृष्णदीक्षादिशिक्षणम्। विश्रम्भेण गुरोः सेवा साधुवर्त्मानुवर्त्मनम्॥" अर्थात् सर्वप्रथम श्रीगुरुपदाश्रयकर उनसे श्रीकृष्ण सम्बन्धित दीक्षा और शिक्षा आदि ग्रहण करनी चाहिए। तत्पश्चात् उनकी विश्रम्भभावसे सेवा करनी चाहिए और ऐसे साधु-महापुरुषोंके पथका अनुगमन करना चाहिए, इत्यादि।

अपनी पारदर्शिताके द्वारा अज्ञेय-दुर्ज्ञेय राज्यमें अग्रसर नहीं हुआ जा सकता

अपनी सौ-सौ पारदर्शिता(कुशलता)के द्वारा अज्ञेय राज्य, दुर्ज्ञेय राज्यमें अग्रसर नहीं हुआ जा सकता—जिस समस्त भविष्यत्को जगत्को देखने नहीं दिया जा रहा है, जो भविष्यकाल नामक वस्तु है, उसमें अपनी चेष्टाके द्वारा अग्रसर नहीं हुआ जा सकता। जहाँपर अति-लोक (लोकातीत) विचार है, वहाँ इस लोकके विचार हमें पहुँचा नहीं सकते। जो समस्त वस्तुएँ कालके अन्तर्गत हो गयी हैं, केवल उन वस्तुओंका ही मैंने इन्द्रियोंसे ज्ञान प्राप्त किया है अर्थात् इन्द्रियज्ञानके द्वारा उन्हीं वस्तुओंको जाना है। किन्तु, आनेवाले कालके विषयमें मैं कुछ नहीं जानता। ये चक्षु, मात्र दो-एक मील तक ही देख सकते हैं, ये कर्ण केवल कुछ दूरके शब्द ही सुन सकते हैं। ऐसी (सीमित) इन्द्रियोंके गोचर ज्ञानसे इन्द्रियोंसे अतीत राज्य—पूर्ण-राज्यके विषयमें जाना नहीं जा सकता। इस प्रकारके राज्यमें केवल अपनी पारदर्शिताके द्वारा अग्रसर होनेकी चेष्टा करनेपर हम कभी अन्तकाल तक भी अग्रसर नहीं हो सकते। रावणके द्वारा स्वर्गकी ओर सीढ़ी बाँधनेकी चेष्टा करनेके समान सीढ़ी कुछ दूर उठते-ना-उठते ही आश्रयके अभावमें आकाशमें, शून्यमें अधिक समय टिक नहीं सकती, चूर-चूर होकर नीचे गिर जाती है। केवल अपनी पारदर्शिताकी पूँजी लेकर अज्ञेय राज्यमें प्रवेश करनेकी इच्छा करनेपर भी हम अधःपतित हो जाते हैं और लघुको गुरु करनेपर भी हम अधःपतित हो जाते हैं।

कौन लघु और कौन गुरु?

कौन लघु है, कौन गुरु है, हम उसका विचार करेंगे। जो समस्त गुरुओंकी एकमात्र आराध्य वस्तु हैं, उसी पूर्ण वस्तुकी जो सेवा करते हैं, वही गुरु हैं। मैं सितार सिखानेवाले गुरु अथवा कसरत सिखानेवाले गुरुके विषयमें नहीं कह रहा हूँ, वे मृत्युसे रक्षा नहीं कर सकते। भागवतमें एक श्लोक भी मिलता है (५/५/१८)—"वह गुरु, गुरु नहीं है, वह पिता, पिता नहीं है, वह माता, माता नहीं है, वह देवता, देवता नहीं है, वह स्वजन, स्वजन नहीं है, जो मृत्युके मुखसे हमारी रक्षा नहीं कर सकते, हमें नित्य जीवन नहीं दे सकते। इस जड़ जगतमें अभिनिवेश-रूपी अज्ञान-मृत्युसे हमारी रक्षा नहीं कर सकते।"

प्रत्येक दिन, प्रत्येक मुहूर्त्तमें श्रीगुरुपादपद्मकी पूजा

अज्ञानताके कारण ही मृत्युके मुखमें पतित होना पड़ता है, विज्ञतासे मृत्युके मुखमें पतित नहीं होना पड़ता। हम यहाँ जो विद्या अर्जन करते हैं, पागल होनेपर, लकवा मारे जानेपर अथवा मृत्युके उपरान्त उस विद्याका मूल्य नहीं रहता। यदि हम वास्तव सत्यका अनुसन्धान नहीं करते हैं, तो हम अचेतन हो जाते हैं। जो मृत्युके मुखसे उद्धार नहीं कर सकते, वे कुछ दिनोंके लिए ही भोगोंकी वस्तुएँ देनेवाले लोग हैं। जो वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ आदि इन्द्रियोंकी प्रेरणासे हमें लुब्ध करते रहते हैं, वे वञ्चक हैं। किन्तु जो गुरुदेव इन समस्त वञ्चनाओंसे हमारी रक्षा कर सकते हैं, प्रत्येक वर्षके प्रारम्भमें, प्रत्येक मासके प्रारम्भमें,

प्रत्येक दिनके प्रारम्भमें, प्रत्येक मुहूर्त्तके प्रारम्भमें उन्हीं गुरुपादपद्मकी पूजा करना ही हमारा कर्त्तव्य है।

मेरे गुरुदेव भिन्न-भिन्न मूर्त्तियोंमें विराजमान हैं, यदि वे भिन्न-भिन्न मूर्त्तियोंमें विराज न करें, तब कौन मेरी रक्षा करेगा? मेरे गुरुदेवने जिनको अपना बना लिया है, वे मेरे उद्धारकारी हैं। किन्तु जो मेरे गुरुपादपद्मकी निन्दा करनेवाले हैं या जो इस प्रकार निन्दा करनेवालेको किसी प्रकारका प्रश्रय देते हैं, ऐसे अमङ्गलकारी पाषण्डीका मुख मेरे दर्शन-पथपर कभी नहीं आये।

जो प्रत्येक मुहूर्त्तमें मुझे अपने चरणकमलोंमें आकर्षण करके रखते हैं, मैं उन गुरुपादपद्मसे जिस क्षण भ्रष्ट होता हूँ, गुरुपादपद्मको भूल जाता हूँ, उस मुहूर्त्तमें मैं निश्चय ही सत्यसे विच्युत हो जाता हूँ। गुरुदेवसे विच्युत होनेपर असंख्य अभाव मुझे अभिनिविष्ट करते हैं। मैं शीघ्रतापूर्वक स्नान करनेके लिये दौड़ता हूँ, शीतका निवारण करनेके लिये व्यस्त हो जाता हूँ, गुरुदेवकी सेवा छोड़कर अन्य कार्योंकी ओर धावित हो जाता हूँ। जो गुरुदेव मेरी इन समस्त द्वितीय अभिनिवेशोंसे अनुक्षण रक्षा करते हैं, वर्ष-मास-दिन-मुहूर्त्तके आरम्भमें यदि उन गुरुदेवका स्मरण न करूँ, तब मैं निश्चय ही और भी अधिक असुविधामें पड़ जाऊँगा। तब मैं स्वयं गुरु बननेकी इच्छा करूँगा—अन्य लोग मुझे गुरु कहकर मेरी पूजा करें, मेरी ऐसी दुर्बुद्धि आकर उपस्थित होगी—यही द्वितीय अभिनिवेश है। आज जो हम एकदिनके लिये 'गुरुपूजा' करनेके लिये उपस्थित हुए हैं, ऐसा नहीं है, नित्य प्रतिमुहूर्त्त ही हमारे लिये गुरुपूजा है।

गौरसुन्दर साक्षात् कृष्णवस्तु हैं, वे जगत्-गुरुके रूपमें यहाँ आये हैं। उन्होंने जो 'शिक्षाष्टक' कहा है, महान्त गुरु एवं उन महान्त गुरुदेवके चरणकमलोंमें प्रणत महान्त सभी वैष्णव उसी शिक्षामें मुझे सब प्रकारसे शिक्षित करते हैं। महान्तगुरुके चरणकमलोंमें प्रणत सभी महान्त वैष्णव मेरा विपदसे उद्धार करते हैं।

आश्रयजातीय गुरुवर्ग विभिन्न मूर्त्तियोंमें उपस्थित

आश्रयजातीय गुरुवर्ग विभिन्न आकारोंमें-विभिन्न मूर्त्तियोंमें हमारे ऊपर दया करनेके लिये उपस्थित हैं। ये दिव्यज्ञान प्रदाता गुरुदेवके ही प्रकाश विशेष हैं। विभिन्न आदर्शोंमें जगद्गुरुका बिम्ब प्रतिबिम्बित होता है। प्रत्येक वस्तुमें मेरे गुरुदेव प्रतिफलित हैं। विषय-जातीय कृष्ण आधा-भाग और आश्रय-जातीय कृष्ण आधा-भाग हैं। उन दोनोंका विलास-वैचित्र्य ही पूर्णता है। विषय-जातीयकी पूर्ण प्रतीति—श्रीकृष्ण हैं और आश्रयजातीयकी पूर्ण प्रतीति—मेरे गुरुदेव हैं। चेतनकी भूमिका-समूहमें जो आश्रयजातीय अप्राकृत प्रतिबिम्ब पड़ता है, वही भिन्न-भिन्न मूर्त्तियोंमें मेरे गुरुपादपद्म हैं। जो प्रत्येक क्षण यह दिखलाते हैं कि सम्पूर्ण जीवन ही भगवान्‌की सेवा करनी होगी, वही गुरुपादपद्म हैं। वे गुरुपादपद्म ही प्रत्येक जीवके हृदयमें प्रतिबिम्बित हो रहे हैं—आश्रयजातीयके रूपमें प्रत्येक वस्तुमें उनका अवस्थान है। वे प्रत्येक वस्तुमें विराजमान हैं—

चूत-प्रियाल-पनसासन-कोविदार-
जम्बर्क-बिल्व-बकुलाम्र-कदम्ब-नीपाः।
येऽन्ये परार्थभवका यमुनोपकूलाः
शंसन्तु कृष्णपदवीं रहितात्मनां नः॥

(श्रीमद्भा॰ १०/३०/९)

अर्थात् हे चूत, हे प्रियाल, पनस, आसन, कोविदार, जम्बु, अर्क, बिम्ब, बकुल, आम, कदम्ब, नीप एवं अन्यान्य परहितकर यमुनातटवासी वृक्षगण, तुम सभी हमें यह बतला दो कि कृष्ण किस पथसे गये हैं, कृष्णके विरहमें हमारे चित्तमें शून्य बोध हो रहा है।

जब कृष्ण रासस्थलीसे चले गये, तब मुक्तपुरुष गोपियाँ सभी वस्तुओंके पास जा-जाकर कृष्णको ढूँढ रही हैं, क्या तब गोपियोंकी आध्यक्षिकता प्रबल थी? क्या तब उनका इन्द्रियोंसे उत्पन्न ज्ञान प्रबल था? ये सब कथाएँ हमें अपने गुरुपादपद्मसे सुननेका अवसर प्राप्त होता है। नन्द-गोविन्द, यशोदा-गोविन्द, श्रीदाम-सुदाम-गोविन्द, चित्रक-पत्रक-गोविन्द, वंशी-गोविन्द, गो-गोविन्द, कदम्ब-गोविन्द आदि चिद्विलास-वैचित्र्य रसमय श्रीराधा-गोविन्दकी विलास-क्रिया है। यदि चित्तमें श्रीगुरुदेवका विचरण दिखाई देता है, यदि हृदयमें गुरुदेवका दर्शन होता है, तभी ये सब कथाएँ स्फुरित होती हैं। जो प्रत्येक विषयमें हमें भगवत्सेवा करनेके लिये प्रबुद्ध करते हैं, उनकी पूजा छोड़कर पूर्ण वस्तुकी सेवा प्राप्त करनेका और कोई उपाय नहीं है।

गुरुपादपद्ममें निष्ठा प्रदर्शन

हमने आज भी अनेक कथाएँ सुननेका अवसर पाया है, कैसी-कैसी निष्ठाकी कथाएँ प्राप्त हुई है—यद्यपि अंग्रेजी भाषामें अनेक कथाएँ कही गयी हैं, किन्तु उसमें भी हमारे सुननेके लिये अनेक विषय थे। हम भी गुरुपादपद्ममें इस प्रकारकी निष्ठा प्रदर्शन कर सकें। विभिन्न आधारोंमें प्रतिफलित श्रीगुरुदेवके बिम्ब हमारी शिक्षाके लिये नित्य ही अनेक नवीन-नवीन कथाएँ प्रकाशित करते रहते हैं। मैं दाम्भिकतासे परिपूर्ण क्षुद्र जीव हूँ, मेरा यह सब सुननेका अधिकार क्यों होगा? श्रीगुरुपादपद्म मुझे यह सब निष्ठापूर्ण वाक्य सुननेका अवसर देकर प्रतिमुहूर्त्त बतलाते हैं—"अहो क्षुद्र जीव! तुम गुरुपादपद्ममें ऐसी निष्ठा प्रदर्शन करो" विभिन्न आधारोंमें अपने गुरुपादपद्मकी प्रकटित मूर्त्तिकी भगवत्-सेवा-वृत्ति देखनेपर मनमें अभिलाषा होती है कि मुझे इनके सङ्गमें हरिसेवा करनेके लिये कोटि-कोटि जन्म प्राप्त हों। इनके सङ्गमें मेरी कोटि-कोटि जन्मोंकी भगवत्सेवा-विमुखता नष्ट हो जाय।

मेरे अतिरिक्त अन्य सभीका मङ्गल हुआ है

जब मैं दक्षिणदेशमें मङ्गलगिरिपर महाप्रभुका पादपीठ प्रतिष्ठित करनेके लिये गया था, तब वहाँ हममेंसे कुछ लोगोंने प्रश्न किया था—"हम जब प्रथम बार मठमें आये थे, तब आपके बन्धु-बान्धवोंका चरित्र और भगवत्-सेवाके प्रति अनुराग देखकर हमारा उत्साह और आशा कितनी वर्द्धित हुई थी, आजकल हमारी दृष्टि क्रमशः क्षीण हो रही है, हम अनेक प्रकारके विचार करने लगते हैं। कुछेक ब्रह्मचारी समावर्त्तनकर गृहमें प्रवेश कर गये हैं।"

मैंने इसके उत्तरमें कहा—गृहमें प्रवेश करनेसे ही हरिभजन छोड़ देना होता है, ऐसा मैं नहीं कह सकता। मैं तो आश्चर्यसे वैष्णवोंको देख रहा हूँ! मैं उनकी वैष्णवता देख रहा हूँ—उनकी हरिभक्ति और कितनी बढ़ गई है। मैं कितना पाषण्डी था, उनके सङ्गमें मेरी पाषण्डता कितनी कम हो गई है। मैं देखा रहा हूँ कि मेरे विमुख होनेपर भी सभी हरिभजन कर रहे हैं। श्रीरघुनाथदास गोस्वामी प्रभुके चरणकमलोंकी कृपासे मैं जान पाया हूँ—

वैष्णवेर निन्द्य कर्म ना पाड़े काणे।
सबे कृष्ण भजे तिंह एई मात्र जाने॥

[अर्थात् वैष्णवोंने कोई निन्दनीय कार्य किया है—यह बात कदाचित् कानोंमें न पड़ें। श्रील रघुनाथ दास गोस्वामीपाद केवल यही जानते थे कि सभी कृष्ण भजन कर रहे हैं।]

मैं तो देख रहा हूँ कि सभी उन्नतिके पथपर अग्रसर होकर हरिभजन कर रहे हैं। भगवान्का संसार सब प्रकारसे समृद्ध हुआ है। केवल मेरा ही मङ्गल नहीं हुआ—सभीका मङ्गल हुआ है। आप लोग अल्प-अभावमें ही चञ्चल हो गये हैं, आपकी भगवत् सेवामें उत्कण्ठा अधिक है; तभी ऐसा कह

रहे हैं कि वे और भी अधिकतर भावसे हरिभजन करें, उनको हरिभजन करते देखकर भी आपकी तृप्ति नहीं हो रही है। आप लोग चाहते हैं कि, वे लोग आपके प्राण-प्रभुकी सेवा और कोटिगुण अधिक भावसे करें; किन्तु मेरा क्षुद्र हृदय—मेरा क्षुद्र आधार है, इसीलिये उनके विपुल हरिभजनको मैं अपने क्षुद्र भाजन[पात्र]में ग्रहण नहीं कर पा रहा हूँ, मेरे क्षुद्र पात्रसे उनकी हरिभजनकी चेष्टा छिटककर गिर गई है। इनके हरिभजनकी कथा मैं अपने क्षुद्र आधारपर रख नहीं पा रहा हूँ। ये लोग कैसे आश्चर्य-आश्चर्य आदर्श-जीवन दिखलाकर चले जा रहे हैं। केवल मैं ही हरिभजन नहीं कर पाया; मैं केवल दूसरेके छिद्र देखनेमें ही व्यस्त हूँ, मैं कैसे भजनके पथपर अग्रसर होऊँगा? मैं तो वैष्णवोंके छिद्र अन्वेषण करनेमें ही व्यस्त हो गया हूँ।

वैष्णवोंके छिद्र कौन अन्वेषण करते हैं

वैष्णवोंके छिद्र कौन अन्वेषण करते हैं? आध्यक्षिक सम्प्रदाय—बाह्यविषयोंसे प्रताड़ित चक्षु, नाक, कर्ण आदि जिनके सम्बल हैं—जो हरिभजन विमुख हैं, वे ही ऐसा करते हैं। जब मुझे कोई कहता है कि किसी व्यक्तिने हरिनाम छोड़ दिया है, तो मैं समझता हूँ कि निश्चय ही उसका हरिभजन बहुत अधिक हुआ है, उसका हृदय बहुत उन्नत हो गया है, तभी एकमात्र मङ्गलके पथ-स्वरूप हरिभजनको छोड़कर वह अन्य कार्यमें व्यस्त हो गया है। जो धनी हो गये हैं, वे तृप्तिलाभ करनेके कारण ही और धनार्जनका क्लेश नहीं लेना चाहते।

गीतामें भगवान्‌ने कहा है कि भगवान्‌के किसी भी भक्तका कभी भी अमङ्गल नहीं होता है—उनका कभी भी विनाश नहीं है—(श्रीगी॰ ९/३१) "न मे भक्तः प्रणश्यति।"

अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥

(श्रीगी॰ ९/३०-३१)

जिन्होंने अनन्य-भावसे भजन किया है, क्या वे कभी अधःपतित हो सकते हैं? निश्चय ही उन्होंने मङ्गल लाभ किया है। हमारी दृष्टिमें दोष है; तभी हम स्वयं ही अपना मङ्गल लाभ नहीं कर पा रहे हैं।

परस्वभावकर्माणि न प्रशंसेन्न गर्हयेत्।
विश्वमेकात्मकं पश्यन् प्रकृत्या पुरुषेण च॥

(श्रीमद्भा॰ ११/२८/१)

अर्थात् आश्रय प्रकृति और विषय पुरुषके मिलनमें विश्वको एक स्वरूप देखकर किसी अन्यके स्वभाव और कर्मकी कभी भी प्रशंसा अथवा निन्दा नहीं करनी चाहिये।

आध्यक्षिक (इन्द्रिय ज्ञानपर निर्भर) हो जानेसे मैं अधोक्षज (इन्द्रिय ज्ञानसे अतीत भगवान्) की सेवासे वञ्चित हो जाऊँगा—गुरुदेवकी सेवासे वञ्चित हो जाऊँगा। मेरा अपना अमङ्गल होनेपर ही अन्यके अमङ्गलकी बात मेरे मनमें आती है। स्वयं छिद्रयुक्त होनेके कारण ही मैं अन्य लोगोंके छिद्रानुसन्धानके प्रति आकृष्ट होता हूँ। अपना मङ्गल कर लेनेमें सामर्थ्य होनेपर फिर दूसरोंके अमङ्गल, दूसरोंके छिद्र देखनेका समय नहीं हुआ करता।

कृष्णेति यस्य गिरि तं मनसाद्रियेत
दीक्षास्ति चेत् प्रणतिभिश्च भजन्तमीशम्।
शुश्रूशया भजनविज्ञमनन्यमन्य-
निन्दादिशून्यहृदमीप्सितसङ्गलब्ध्या॥

(उपदेशामृतम् ५)

[अर्थात् यदि कोई सद्गुरुके चरणाश्रयमें दीक्षित होकर कृष्णनामका गान करता है, तो उसे हृदयसे आदर करना चाहिये एवं जो हरिभजनमें प्रवृत्त होकर नामभजन करता है उसको प्रणाम आदिके द्वारा सम्मान करना चाहिये। तथा ऐकान्तिक कृष्णाश्रित, कृष्णके अतिरिक्त अन्य प्रतीतिसे रहित होकर निन्दा-वन्दना आदि भेदभाव शून्य-हृदय, भजन-विज्ञ महाभागवतको स्वजातीयाशय स्निग्धगणोंमें सबकी अपेक्षा श्रेष्ठ उत्तम सङ्ग जानकर मध्यम अधिकारी प्रणिपात, परिप्रश्न और सेवाके द्वारा उनका आदर करेंगे।]

जीवन अल्पकालके लिए स्थायी है। हम पिछले वर्ष यहाँ श्रीगुरुपादपद्मकी पूजा करनेके लिये मिलित हुए थे। भगवान्ने जिनपर कृपा की, वे चले गये और हम दूसरोंके छिद्रोंका अनुसन्धान करनेके लिये—'तृणादपि सुनीचेन' के अभावका आदर्श दिखानेके लिये इस देवीधामपर विषयभोगमें व्यस्त हैं।

श्रीगुरुपादपद्म दूसरोंके छिद्र दर्शन करनेसे निवृत्त रहते हैं; किन्तु मेरा अमङ्गल, मेरे शत-सहस्र छिद्रोंको सर्वदा दिखलानेके अलावा श्रीगुरुपादपद्मका और कोई कृत्य नहीं है। श्रीगुरुपादपद्मके आदर्शसे हम वञ्चित न हो जायँ। आजसे पुनः यदि एक वर्ष जीवित रहूँ, तो प्रति मुहूर्त्त गुरुसेवा करूँगा, परचर्चा छोड़ दूँगा। 'मैं बड़ा बहादुर हूँ, मैं बड़ा पण्डित, बुद्धिमान, वक्ता हूँ, और वह मूर्ख, निर्बोध है, कुछ भी बोल नहीं सकता है'—इस प्रकारकी परचर्चाको कम करके यदि हरि चर्चा करूँ, तो समझूँगा कि हमारा मङ्गल होगा। अर्थात् भगवद् विमुखजनोंका कभी भी आदर नहीं करूँगा।

अद्वयज्ञान ब्रजेन्द्रनन्दनके आश्रय-अंश ही गुरुपादपद्म हैं। वे विषय-विग्रह दर्शनमें कृष्णचन्द्र स्वयं हैं, गुरुपादपद्माश्रित मैं भी उनके अन्तर्गत आश्रित हूँ।

साधक और सिद्धकी अवस्था एक नहीं

आशाभरैरमृतसिन्धुमयैः कथञ्चित्
कालो मयातिगमितः किल साम्प्रतं हि।
त्वञ्चेत् कृपां मयि विधास्यसि नैव किं मे
प्राणैर्व्रजेन च वरोरु वकारिणापि॥

(विलापकुसुमाञ्जलि १०२)

कुछ लोग मुझसे पूछते हैं—हम सभीको सिद्ध प्रणाली क्यों नहीं प्रदान करते? किन्तु मैं यह नहीं समझ पाता कि साधक और सिद्धकी अवस्था किस प्रकार एक हो सकती है? अनर्थमय साधनकालमें अनर्थमुक्त साधन और सिद्धिकी कथाका किस प्रकार अनुशीलन किया जा सकता है, यह हमारे विचारमें नहीं आता। यदि कोई सिद्ध हो जाता है, और वह दया करके यदि मुझे बतला दे, तभी तो मैं जान पाऊँगा कि उसका कौन-सा सिद्धस्वरूप है।

श्रीगुरुदेव मधुर रसमें वार्षभानवी हैं। अपने उदित चेतन-भावके विचारानुसार जो जिस भावसे उनका दर्शन करते हैं, गुरुदेव वही वास्तव वस्तु हैं। वात्सल्य रसमें वे नन्द-यशोदा, सख्य रसमें—श्रीदाम-सुदाम, दास्य रसमें—चित्रक-पत्रक हैं। इन सब विषय-आश्रयोंकी आलोचना गुरुसेवा करते-करते हृदयमें उपस्थित होगी। ये सब कथाएँ कृत्रिम-भावसे हृदयमें उदित नहीं होती; सेवा-प्रवृत्ति उदित होनेपर स्वयं ही भाग्यवान् जनमें उदित हो जाती हैं। हमारा गुरुसेवाके अतिरिक्त और कोई कृत्य नहीं है। जड़ जगत्का मिश्र-भाव लेकर शेष-शिव-ब्रह्मा आदिके लिये भी अगम्य नित्यलीलाकी कथाओंकी आलोचना नहीं होती। मैं आप लोगोंके चरणोंमें दण्डवत् करता हूँ—अपने गुरुवर्गको दण्डवत् करता हूँ।

[साप्ताहिक गौड़ीय (खण्ड-९, संख्या-२८) से अनुदित]

श्रीव्यास-पूजा

(श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपादकी व्यासपूजाके अवसरपर
ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी हरिकथा)

स्थान—श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चुँचुड़ा
दिनांक एवं तिथि—७ फरवरी १९५०, मङ्गलवार, कृष्णा-पञ्चमी

वर्ष-१८। संख्या—१-९ ❁ २१

'व्यासपूजा' का अर्थ

प्रतिवर्ष ही आप लोगोंको श्रीव्यासपूजाके अवसर पर आमन्त्रित किया जाता है और इस सम्बन्धमें मैंने बहुतसे विषयोंको आपके समक्ष निवेदन किया है। सबसे पहले हमें यह जानना होगा कि श्रीव्यासपूजा है क्या? 'श्रीव्यासपूजा'का अर्थ केवल श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यासकी पूजाको ही नही, बल्कि उनके अनुगत गुरुवर्गकी पूजाको भी लक्ष्य करता है। लगभग ४५० वर्ष पहले श्रीमन् महाप्रभुने श्रीनित्यानन्द प्रभुके द्वारा 'श्रीवास-आङ्गन' में इस व्यास-पूजाका प्रचलन आरम्भ किया था। इसके बाद श्रील भक्तिसिद्धान्त सास्वती ठाकुरने सम्पूर्ण भारतमें श्रीगौड़ीय-वैष्णव समाजमें विशुद्ध श्रीव्यासपूजाका पुनः प्रवर्त्तन किया।

शंकर-सम्प्रदायमें व्यासपूजा दिखावा मात्र

शाङ्कर-सम्प्रदायमें भी हम श्रीव्यास-पूजाका प्रचलन देखते हैं, किन्तु वह व्यासपूजाके नाम पर उसका दिखावा मात्र है। पूज्य-वस्तुकी ही हम पूजा करते हैं एवं उन्हें भ्रम-प्रमाद आदिसे रहित जानकर ही बिना किसी सोच-विचारके निष्कपट रूपसे उनकी शिक्षा और उपदेशका पालन किया करते हैं। जब इस प्रकारका विचार या संशय आ जाता है कि वे भ्रम-प्रमाद आदि दोषोंसे ग्रस्त हैं, तब उनके प्रति पूज्य बुद्धि कैसे रह सकती है? इसलिए आचार्य शङ्करके उद्देश्यसे श्रीचैतन्य महाप्रभुने कहा है—

व्यास भ्रान्त बलि' सेई सूत्रे दोष दिया।
विवर्त्तवाद स्थापियाछे कल्पना करिय॥

(चै.चै.म ६/१७२)

[अर्थात् आचार्य शङ्करने व्यासदेवको भ्रान्त कहकर उनके 'सूत्र' पर दोष आरोपित किया और कल्पना करके 'विवर्तवाद' की स्थापना की।]

मैं व्यासको मानूँगा, उनकी पूजा करूँगा, किन्तु उनका विचार या सिद्धान्त स्वीकार नहीं करूँगा—ऐसा नहीं हो सकता है। श्रीगुरुदेव और श्रीव्यासदेवके प्रति मर्त्यबुद्धि (साधारण मनुष्य बुद्धि) या संशय ही जीवोंकी अधोगतिका कारण है और इसीसे जीव नरकगामी बनता है। इसीलिए शास्त्रोंमें कहा गया है कि—*'न मर्त्यबुद्धया असूयेत सर्वदेवमयो गुरुः', "संशयात्मा विनश्यति।"* शङ्कराचार्यने स्वयं ही श्रीव्यासको 'भ्रान्त' (भ्रमित) बतलाया है। इसलिए जिन लोगोंकी धारणामें व्यासदेवके विचार भ्रान्त हैं, उनके लिए व्यासपूजा करना विडम्बना (व्यङ्गमात्र) जैसा ही है। यह किसी प्रतिष्ठित व्यक्तिको लांघकर अपना काम करवानेकी कुचेष्टाके समान अथवा 'खड़जठिया'[सुविधावादी]के व्यवहार जैसा ही है।

श्रीव्यासके अनुगत होकर ही व्यासपूजा करना कर्त्तव्य

इसलिए सबसे पहले हमें श्रीव्यासके अनुगत होना पड़ेगा एवं उनकी वाणी और शिक्षाको ग्रहणकर जगत्में उसके प्रचारका व्रत लेना पड़ेगा। विशुद्ध रूपसे श्रीव्यासपूजाके प्रचलनके लिए हमें सभी प्रकारसे जागरूक होना होगा। यदि आप सभी श्रीव्यासके अनुगत हो जायें और उनकी पूजामें स्वयंको पूर्णरूपसे नियुक्त कर दें तो देखेंगे कि, आपके लिए किसी प्रकारकी अभाव-असुविधा नहीं रहेगी और संसारके समस्त अमङ्गल दूर हो जायेंगे।

श्रीव्यासके अनुगत होनेसे ही जीवोंका अभाव-मोचन

कुछ लोग कहते हैं कि—धर्मनीतिके साथ समाजनीति, राष्ट्रनीति, अर्थनीतिका जब किसी प्रकारका सम्बन्ध ही नहीं है, तब फिर धर्म पालन करनेसे [आर्थिक] अभाव और [सामाजिक और राष्ट्रीय] विपत्तियाँ कैसे दूर हो सकती हैं? इसपर मेरा कहना है कि, पहले

आप स्वयं श्रीव्यास द्वारा रचित शास्त्रोंके अनुरूप धर्मका आचरण करें और धर्मके पथपर चलें—आप स्वयं देखेंगे कि, आपके अभाव और विपतियाँ, सभीका समाधान हो गया है। यथार्थ रूपसे श्रीव्यासका आनुगत्य छोड़कर अन्य सभी मनो-धर्मोंका पालन करनेसे किसी भी प्रकारका मङ्गल नही होगा। धर्माचरण करनेपर समाजनीति, राष्ट्रनीति, अर्थनीति कोई भी नहीं छूटेगी, अपितु वे सब आपके अनुकूल हो जायेंगी।

शास्त्र-ग्रन्थ सदैव ही उपयोगी हैं

पुनः कुछ लोगोंका कहना है कि—प्राचीन शास्त्र-ग्रन्थ अब और नहीं चलेंगे। धर्म, कर्म और शास्त्र-ग्रन्थ अब सभीको युगके अनुसार उपयोगी बनानेकी आवश्यकता है। किन्तु वे भूल जाते है कि, भगवान्‌के शक्त्यावेश अवतार, त्रिकालदर्शी श्रीव्यासदेवके द्वारा रचित सभी शास्त्र-ग्रन्थोंमें सभी देशोंके लिए, सभी कालोंके लिए सभी प्रकारके निर्देश है। वे समाजनीति, राजनीति, अर्थनीति सभी विषयोंमें पारङ्गत थे—स्वरचित असंख्य शास्त्र-ग्रन्थोंमें श्रीव्यासदेवने इन विषयों पर प्रचुर चर्चाकी है और इस सम्बन्धमें बहुत उपदेश भी प्रदान किये हैं। वर्तमानमें, ब्रिटिश या भारतीय शासन-तंत्र (Law book) में 'फौजदारी' तथा 'दीवानी' कानून सभी प्राचीन संहिता इत्यादिसे लिये गये हैं। इसके अलावा छन्द, व्याकरण, कल्प, ज्योतिष, विज्ञान, आयुर्वेद आदि हमारे सनातन शास्त्रोंका ही योगदान है। आज भी जिन शास्त्र-ग्रन्थोंके आधारपर हम प्रतिदिन ज्वार-भाँटा, सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण आदिका निर्धारण कर पाते हैं—कई प्रकारकी जड़ी-बूटियोंसे औषधि तैयार कर प्राण-रक्षा कर रहे हैं—ये समस्त तो हमारे आर्य ऋषियोंकी ही देन हैं।

पश्चिमी देशोंमें विज्ञान और वैज्ञानिक-ग्रन्थोंकी जो उन्नति देखी जा रही है, वे केवल श्रीव्यासके पौराणिक ग्रन्थोंका भाषा-अनुवाद हैं। इसमें जो लोग गौरवका अनुभव कर रहे हैं वह केवल प्राचीन बातोंको नये ढङ्गसे प्रस्तुत करनेका जो श्रेय है, वे मात्र उतना ही सम्मान पा सकेंगे। हमारे सनातन धर्मग्रन्थोंमें किसी वस्तुका भी अभाव नहीं है। हमारे शास्त्रकार महर्षि, राजर्षियोंने विशेष दक्षताके साथ राजकार्यका भी पालन किया है, उनमें किसी भी प्रकारकी विद्याका अभाव नहीं था।

पाश्चात्य शिक्षामें शिक्षित लोगोंकी मूर्खता

आजकल पाश्चात्य शिक्षामें शिक्षित सब नास्तिक और पण्डित-अभिमानी लोग, अपने देशकी प्राचीन विरासत और शोभाका सम्मान नहीं कर पानेके कारण ही पाश्चात्य शिक्षाको अधिक महत्व देते हैं—यही उनकी पराधीनता है। वे आजकल कह रहे हैं कि-'धर्म-धर्म' करनेसे नहीं चलेगा और धर्मके द्वारा कोई अभाव भी दूर नहीं होगा—बीसवीं सदीमें धर्मका कोई स्थान नहीं है। वर्तमानमें भारतको स्वतन्त्र करनेके लिए उपयुक्त कर्मवीरोंकी आवश्यकता है, इत्यादि। किन्तु राष्ट्रका नैतिक अधःपतन होने पर वह दुर्नीतिग्रस्त (भ्रष्ट) धर्महीन राष्ट्र कभी नहीं चल सकता हैं, उस राष्ट्रमें सुख-शान्ति कदापि सम्भव नहीं है? ये सब बातें उनके मस्तिष्कसे परे हैं।

सनातन धर्म ही भारतका वैशिष्ट्य

धर्म ही भारतका अस्तित्व है, धर्म ही भारतका गौरव है और धर्म ही भारतका शान्तिदाता है। उस सर्वोत्तम सनातन-धर्म शास्त्रके प्रणेता श्रीव्यासदेव ही हमारे सर्वकालिक (सब समयमें), सर्वविषयक

(सभी विषयोंके) पथप्रदर्शक हैं, यह बात जिस दिन भारतवासी हृदयङ्गम कर लेंगे, उसी दिनसे उनका बन्धनमुक्त होना आरम्भ हो जायेगा और उन्हें परा अर्थात् वास्तविक शान्तिका पथ प्राप्त होगा। धर्म ही भारतका वैशिष्ट्य है, इसलिए ईसाई धर्मके Revered Bishop को यह स्वीकार करनेके लिए बाध्य होना पड़ा कि—"India guided by God can lead the whole world back to sanity." [अर्थात् भगवान्‌के द्वारा निर्देशित भारत, सम्पूर्ण विश्वको शान्ति और विवेक-बुद्धिकी ओर लानेका मार्गदर्शन कर सकता है।]

इसलिए आप सभीसे श्रीव्यासके आनुगत्यमें सनातन धर्मका अनुसरण करनेका अनुरोध और आह्वान कर रहा हूँ। केवल आपको ही क्यों सम्पूर्ण जगत्‌के लोगोंको ही सनातन धर्म ग्रहण करके नित्य-शान्ति प्राप्त करनेके लिए आह्वान कर रहा हूँ।

व्यासपूजाके प्रचारकी आवश्यकता

श्रीव्यासदेव ही इस सनातन धर्म-पद्धतिके मूल संस्थापक हैं। वे समस्त जगत्‌के लिए लाखों-लाखों श्लोकोंकी रचना करके गये हैं। मेरे गुरुपादपद्म—श्रील प्रभुपाद, जिनके जन्मदिवस पर हम सब यहाँ एकत्रित हुए हैं, उन्होंने इस व्यासपूजा पद्धतिको संग्रह किया और बादमें श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने इसमें संशोधन किया है। वर्तमानमें इसके व्यापक प्रचारकी आवश्यकता हैं। जिस किसी कारणसे भी हो श्रील प्रभुपादके प्रकटकालमें, इस व्यासपूजा पद्धतिका प्रचलन और अनुष्ठान नहीं हुआ था। दो साल पहले इसी श्रीउद्धारण गौड़ीय मठमें ही उस पद्धतिके अनुसार सर्वप्रथम 'पूजापञ्चक' एवं 'तत्त्वपञ्चक' की पूजाका प्रचलन आरम्भ हुआ था। हमने इसी श्रीव्यासपूजा-पद्धतिको टीका और अनुवादके साथ सभीके लिए बोधगम्य रूपमें प्रकाशित और प्रचलित करनेका व्रत लिया था। किन्तु आज तक इसे कार्यरूप नहीं दे सके।

श्रीव्यासपूजा-पद्धतिमें 'अधोक्षज'* श्रीभगवान्‌की सेवाका वैशिष्ट्य, सुन्दर रूपसे संरक्षित हुआ है। 'अधोक्षज' श्रीभगवानके सेवकोंकी अन्तरनिष्ठा और मायावादियोंकी अन्तरनिष्ठामें आकाश-पातालका अन्तर है। मायावादियोंके सङ्ग और चङ्गुलसे मुक्ति पाकर जीव 'अधोक्षज' भगवान्‌की सेवा प्राप्त कर सकें, इस उद्देश्यसे ही सनातन व्यासपूजाका अनुष्ठान श्रील प्रभुपादके आचार एवं प्रचारमें प्रकाशित हुआ है। 'प्रत्यक्ष', 'परोक्ष' और 'अपरोक्ष' ज्ञान तक मनोधर्मका राज्य है; और 'अधोक्षज' सिद्धान्तसे ही आत्माका धर्म आरम्भ होता है। 'अधोक्षज-सिद्धान्तमें, जड़-ब्रह्माण्डका विचार और अजड़ निर्विशेष-भाव निरस्त होकर (हटकर) 'परव्योम' वैकुण्ठका राज्य

.....

* श्रील प्रभुपादने 'अधोक्षज' शब्दके अर्थकी व्याख्या श्रीलजीव गोस्वामीकी टीका उद्धृत करके इस प्रकारसे की है—"अधोक्षजः अधःकृतं अतिक्रान्तं अक्षजं जीवानां इन्द्रियजं ज्ञानं येन सः"—(अर्थात्, अधोक्षज=अधःअक्षजं 'अधः' अर्थात् जो अधःकृत या अतिक्रमण किया हुआ है। क्या अतिक्रमण किया हुआ है? —'अक्षज' अर्थात् जीवोंकी इन्द्रियों द्वारा प्राप्त होनेवाला ज्ञान अर्थात् जिनके द्वारा जीवोंकी इन्द्रियों द्वारा उपलब्ध ज्ञान तुच्छ रह जाता है वे ही 'अधोक्षज' हैं।) एवं 'Godhead is He, who has reserved every right of not being exposed to human senses.' (अर्थात् भगवान् वे ही हैं, जिनके पास जीवोंकी इन्द्रियों द्वारा ग्राह्य न होनेका पूर्ण अधिकार सुरक्षित है): अर्थात् विचार यह है कि, श्रीभगवान्‌की नित्य सच्चिदानन्द विशेषताएँ जीवोंकी इन्द्रिय, मन, बुद्धिसे परे हैं—इस प्रकारके धर्म-विशिष्ट भगवान्‌को 'अधोक्षज' कहा गया है। अतएव 'अधोक्षज' वस्तु श्रीभगवान्‌के सम्बन्धमें हम किसी भी अश्रौत-पन्थसे कोई भी idea प्राप्त नही कर सकते है। श्रीभगवान्‌की सेवक-अनुसेवक धारामें ही 'अधोक्षज' भगवान्‌के सम्बन्धमें जीवोंको वास्तविक ज्ञान प्राप्त होता है।

आरम्भ हुआ है। यह अधोक्षज वस्तु पञ्चतत्त्वमें प्रकाशित—१)अर्चा, २)अन्तर्यामी, ३)वैभव, ४)व्यूह, ५)दिव्य; उनकी यह पाँच प्रकारकी क्रमोन्नति है।

'निर्विशेष ब्रह्मके बहुरुप'—ऐसा कहना मायावाद

पञ्च-उपासना करनेवाले सोचते हैं कि—निर्विशेष ब्रह्मके ही बहुत सारे रूपोंकी कल्पनाकी जा सकती है। किन्तु, यदि श्रीगुरुपादपद्मसे श्रवण करनेका सौभाग्य प्राप्त हो तो यह बोध होता है कि निर्विशेष ब्रह्मके बहुरूप नहीं हो सकते हैं। एकमात्र 'अधोक्षज' श्रीकृष्णके ही बहुत 'अधोक्षज' नित्यसिद्ध रूप वर्तमान हैं। अधोक्षज-वस्तु या विष्णुके बहुरूप होनेपर भी 'अधोक्षज' श्रीकृष्णका कृष्णत्व अटूट रहता है। जब निर्विशेष ब्रह्मके बहुतसे रूपोंकी कल्पनाकी जाती है, तभी मायावाद आकर प्रस्तुत हो जाता है—पञ्चोपासना आरम्भ हो जाती है। तब यह अधोक्षज-पूजापञ्चक ही मायावाद और पञ्चोपासनासे जीवकी रक्षा करते हैं।

पूजापञ्चक और पञ्चोपासना एक नहीं

'पूजापञ्चक' शब्दका अर्थ स्मार्त-विचारकी पञ्चोपासना नहीं है। पञ्चोपासना—कर्ममार्गके अन्तर्गत है। ज्ञानमार्गमें भी पञ्चोपासना और पूजापञ्चकको मान्यता दी गयी है। किन्तु भक्ति मार्गमें भगवद्-भक्त केवल पूजापञ्चकको ही श्रीव्यासके आनुगत्यके रूपमें मान्यता देते हैं। पूजापञ्चकमें जिस कृष्णपञ्चककी पूजाकी बात कही गई है, उसके द्वारा पाँच कृष्णकी बात नहीं की गई है, अपितु कृष्ण-तत्त्व-पञ्चकका ही बोध कराया गया है। अर्थात् 'स्वयंरूप' व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण एवं उनके बाद वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—यही चतुर्व्यूह है। ये सभी तत्त्व-विचारसे कृष्ण ही हैं। तत्त्वपञ्चक की पूजाके सम्बन्धमें, श्रीमन्महाप्रभुके सभी अनुगतजन ही पञ्चतत्त्वकी पूजा-पद्धतिसे अवगत हैं; इसलिए इस सम्बन्धमें अधिक कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है।

व्यासपूजामें कृष्णपञ्चककी पूजाके कारण

व्यासपूजा-पद्धतिमें कृष्णपञ्चककी पूजाकी यह विशेषता हैं कि—'सेव्य'-तत्त्वकी पूजा छोड़कर केवलमात्र 'सेवक'-तत्त्व की पूजा शास्त्र-अनुमोदित नहीं है और फिर सेवकतत्त्वको छोड़कर केवल सेव्यकी पूजा भी शास्त्र-विहित नहीं है। श्रीव्यासके उपास्य या सेव्य समझकर शङ्कर-सम्प्रदायमें भी कृष्णपञ्चककी पूजा स्वीकार कर ली गयी है। यद्यपि आचार्य शङ्कर पञ्चोपासनाके प्रचारक हैं, फिर भी व्यासपूजाके विषयमें 'श्रीकृष्ण ही व्यासदेवके उपास्य हैं', यह उन्होंने पूर्णरूपसे स्वीकार कर लिया है। इससे समझा जा सकता है कि, व्यासदेवने श्रीकृष्णको ही स्वयं भगवान् एवं मूलपुरुषके रूपमें प्रचारित किया है—"कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।"

संस्कृत 'मृत-भाषा' नहीं, बल्कि वास्तविक राष्ट्रभाषा है

आजकल हिन्दी ही राष्ट्रभाषा होने जा रही है। किन्तु 'संस्कृत' को राष्ट्रभाषा बनाये जाने पर क्या राजनैतिक, क्या धार्मिक, क्या सामाजिक किसीको भी असुविधा नहीं होती, बल्कि सुविधा ही होती। सभी लोग बाध्य होकर श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासदेव द्वारा रचित समस्त प्राचीन संस्कृत शास्त्रोंकी चर्चा कर पाते—इससे वे अपनी सभी भ्रान्त-धारणाओंका निवारण कर पाते और साथ ही बहुतसे प्राचीन तथ्य और कृतियोंको उजागर करनेका सुयोग प्राप्त

होता। संस्कृत भाषाके विषयमें वास्तविक रूपसे विचार नहीं कर पानेके कारण ही हमने इसे dead language (मृत भाषा) घोषित कर दिया है और इसका फल भी हमें प्रचुर परिमाणमें भोगना पड़ रहा है। पाश्चात्य देशोंके लोग आज संस्कृत शिक्षामें आगे बढ़ रहे है। वे भारतसे समुद्री जहाज पर समस्त संस्कृत ग्रन्थोंको अपने देशमें ले जाकर आज बहुतसे विषयोंमें उन्नत बन गये है, दूसरी और भारतवासी अपनी निज-सम्पदासे दूर रहनेके कारण ही उससे वञ्चित रह गये हैं। हम चाहे तो अभी भी अपनी प्राचीन विरासत, इतिहास, सभ्यता, रचना और गौरवको लौटा सकते है।

हिन्दी भाषामें मायावादियोंकी विपत्ति

यद्यपि राष्ट्रभाषा हिन्दी है, किन्तु हिन्दी भाषा मायावादियोंके लिए विपत्ति स्वरूप है। कारण—हिन्दी व्याकरणमें क्लीव (नपुंसक) लिङ्गका कोई स्थान नहीं है—उसमें केवल पुलिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग ही हैं। इसलिए हिन्दी भाषामें ब्रह्मकी संज्ञा निरुपण करते समय मायावादियोंको बहुत कठिनाईका सामना करना पड़ेगा। निर्विशेष ब्रह्म तो क्लीव लिङ्ग (नपुंसक लिङ्ग) हैं—अब उनके उपासकगण राष्ट्रके दबावमें आकर हिन्दी भाषाके अनुसार ब्रह्मका पुरुष लिङ्ग निर्धारित करनेको बाध्य होंगे। और 'ब्रह्म' के पुरुष होने पर ही मायावादी विपत्तिमें पड़ जायेंगे।

व्यासपूजामें सभीके लिए उपदेश

आज व्यासपूजाके अवसर पर जो लोग श्रीव्यास-गुरुके चरणोंमें उपस्थित हुए हैं, वे बहुत भाग्यवान् हैं। आप सभी लोग व्यासगुरुके आनुगत्यमें सनातन धर्मका अनुसरण करें। अपने-अपने मनोधर्मसे परिचालित न होकर श्रीव्यास-गुरुके अनुगत होइये—सनातन धर्मके अनुसार धर्मका पालन कीजिए। मेरा विश्वास है कि पूरे बङ्गालमें, केवल बङ्गाल ही क्यों, सम्पूर्ण भारतके प्रत्येक गाँवके घर-घरमें जिस दिन श्रीव्यासपूजाका प्रचलन आरम्भ होगा, पूजापञ्चकोंका समादर होगा, उसी दिन भारतवासी अपने खोये हुए गौरवको पुनः प्राप्त कर पायेंगे और फलस्वरूप उन्हें पराशान्ति प्राप्त होगी।

व्यासपूजामें श्रील प्रभुपादकी वाणी

अन्तमें श्रीव्यासपूजाके सम्बन्धमें श्रीलप्रभुपादकी वाणीका उल्लेखकर मैं अपना वक्तव्य समाप्त कर रहा हूँ।—"श्रीव्यासपूजाका अनुष्ठान करना चारों आश्रमोंके लिए ही कर्त्तव्य है। किन्तु तुर्याश्रमिगण (संन्यासीगण) इसे यत्नके साथ सम्पन्न करते हैं। आर्यवर्त (भारत)में श्रीव्यासदेवके अनुगत सम्प्रदायके अन्तर्गत लोग, 'व्यासानुग-सम्प्रदाय'के नामसे प्रसिद्ध हैं। वे सभी प्रति वर्ष अपने-अपने जन्मदिन पर पूर्व गुरुवर्गकी पूजा करते हैं। श्रीगौड़ीय मठके सेवकगण प्रत्येक वर्ष माघी कृष्णा-पञ्चमी तिथिको अपने गौरवका पात्र समझकर उस दिन श्रीव्यासपूजाका अनुष्ठान करते हैं। श्रीव्यासपूजाकी पद्धतिका विभिन्न शाखाओंमें थोड़ा-बहुत अन्तर है। चारों आश्रमोंमें अवस्थित संस्कार-सम्पन्न सभी ब्राह्मण श्रीव्यासगुरुके आश्रित हैं, इसलिए वे प्रतिदिन अपने धर्म-अनुष्ठानमें श्रीव्यासदेवकी थोड़ी-बहुत पूजा किया करते हैं। किन्तु वार्षिक अनुष्ठानके विचारसे यह पूजा सम्पूर्णवर्ष की जानेवाली अपने-अपने गुरुओंकी पूजाका स्मारक दिवस है।"

[श्रीगौड़ीय-पत्रिका, वर्ष-२, संख्या-१ से अनुदित]

श्रीव्यासपूजाके अवसरपर दीन-अकिञ्चनकी श्रीहरि-गुरु-वैष्णवोंके निकट प्रार्थना

(ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री
श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजजी द्वारा लिखित प्रबन्ध)

७ फरवरी, २००२, श्रीकेशव गोस्वामी गौड़ीय मठ, सिलिगुड़ि

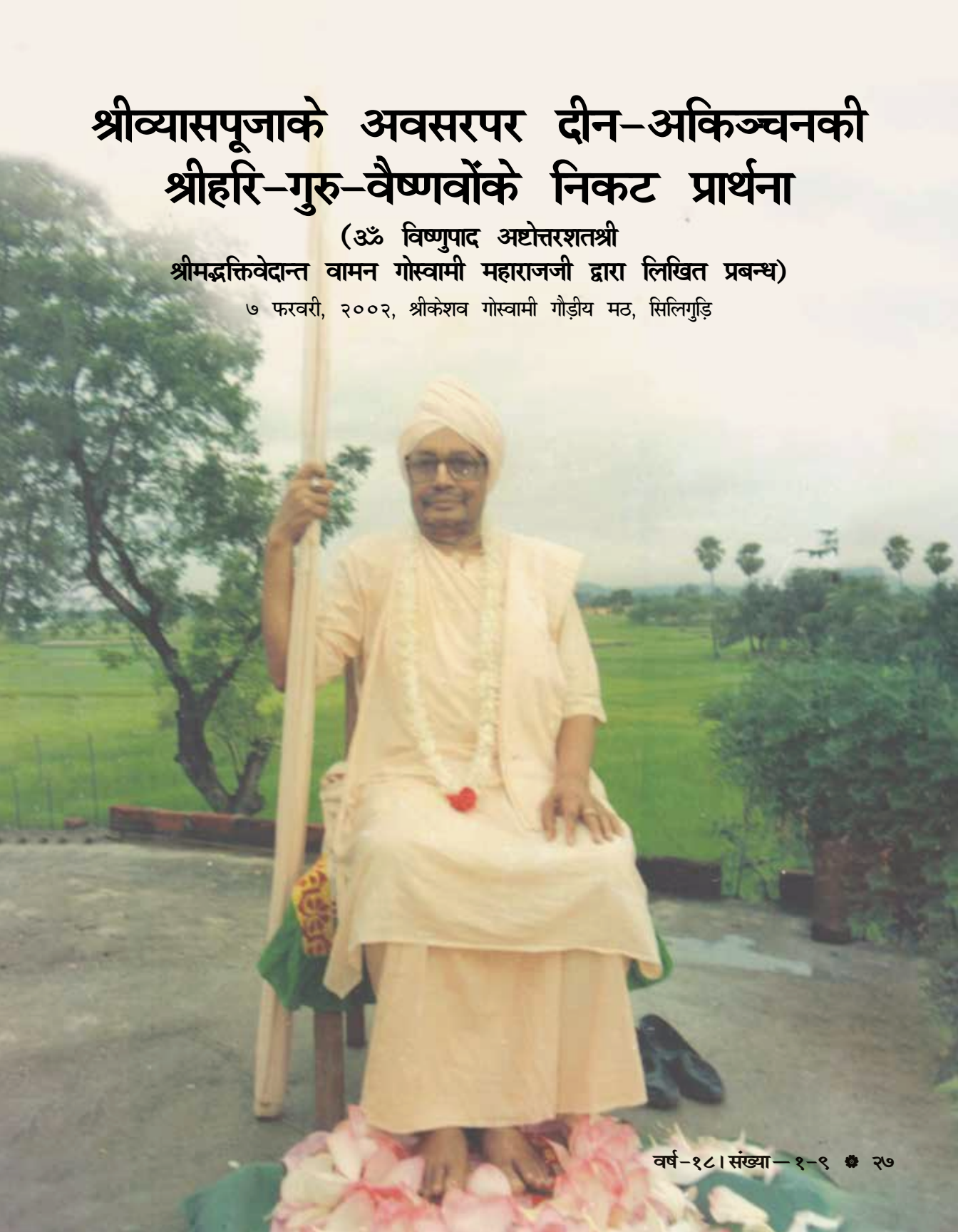

श्रीव्यासदेवके आनुगत्यमें ही गुरुपूजाका वास्तविक फल

आज एक विशेष दिन है। किसीके जन्मदिनके उपलक्ष्यमें गुरु-वैष्णव-भगवान्‌की विशेष पूजाका आयोजन हो रहा है। श्रीव्यासदेवके अनुगत सम्प्रदायके तुर्याश्रमिगण(संन्यासीगण) प्रतिवर्ष अपने-अपने जन्मदिनपर पूर्व गुरुओंकी पूजाका विधान करते हैं। गुरुकी आविर्भाव-तिथिके विचारसे जो व्यासपूजाका आह्वान होता है, उसमें भगवान् श्रीव्यासदेव एवं समग्र वैयासकि(व्यासानुगत)-सम्प्रदायकी ही पूजा विहित होती है। विचार यही है कि व्यासदेवका आनुगत्य छोड़कर गुरुपूजाका कोई वास्तविक फल नहीं है। श्रीव्यासदेव—भगवान्‌की ही अभिन्न मूर्त्ति, प्रकाश विग्रह हैं। भगवान् स्वयं ही स्वयंको प्रकाशित करनेके लिये अक्षरात्मक वेदशास्त्रके रूपमें प्रकटित हुए हैं। पुनः साधारण-भावसे बुद्धिके अगम्य(परे) होनेके कारण जब वेदको भी विस्तारित करनेकी आवश्यकता पड़ती है, तब भगवान् ही व्यासरूपमें वह विस्तार कार्य किया करते हैं। कारण, वे ही स्वयं तत्त्ववस्तु हैं, यदि वे स्वयं ही स्वयंको प्रकाशित न करें तो कोई भी उनको यथार्थरूपसे जान नहीं सकते। "*वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृत् वेदविदेव चाहम्।*" (श्रीगीता १५/१५) श्रीकृष्ण कहते हैं—'मैं ही वेदोंकी प्रतिपाद्य वस्तु हूँ, मैं ही वेदोंके तात्पर्यको जाननेवाला हूँ, मैं ही वेदान्तका प्रकाशक हूँ।' अतः व्यासदेवका आनुगत्य छोड़कर भगवान्‌को जाननेका और कोई सुन्दर उपाय नहीं है। श्रीगुरुदेव उन्हीं व्यासदेवका प्रतिनिधित्व करते हुए भगवत्-तत्त्व प्रकाशित करते हैं। इसीलिये श्रीगुरुपूजाके अर्थसे व्यासपूजाको ही लक्ष्य किया जाता है—यही व्यासानुगत सम्प्रदायका वैशिष्ट्य है। श्रीगुरुतत्त्व और श्रीव्यासतत्त्व—एक ही तत्त्व हैं। इसीलिये श्रीव्यासपूजाका ही नामान्तर—श्रीगुरुपादपद्ममें पाद्यार्पण है; इसके द्वारा श्रीगुरुदेवका मनोऽभीष्ट जो पूर्ण भगवत्सेवा है, वही लक्षित होता है।

श्रीगुरुके निकट अभिगमन करनेकी आवश्यकता

शास्त्र (मुण्डक उपनिषद् १/२/१२)में कहा गया है—"*तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्।*" 'तद्विज्ञानार्थं'—केवल तत्त्वज्ञान नहीं, विज्ञानसे युक्त तत्त्वज्ञान अर्थात् प्रेमभक्तिका तत्त्वज्ञान लाभ करना होगा। केवल तत्त्वज्ञान होनेसे अनेक स्थानपर निर्विशेष-ब्रह्मकी धारणा हो जाती है, इससे जीवको अविद्यासे परित्राण प्राप्त नहीं होता। कारण, निर्विशेष कहनेसे शास्त्रोंमें वास्तवमें जिस वस्तुको लक्ष्य किया जाता है, उसे प्राकृत-विचार-सम्पन्न मनुष्य ग्रहण नहीं कर सकते। उनकी कल्पनामें जो निर्विशेष-धारणा है, 'ब्रह्म' वह वस्तु नहीं हैं। सर्वकारणकारण ब्रह्म यदि निर्विशेष हों, तब जगतमें इतना सब वैशिष्ट्य, वैचित्र्य कहाँसे आया है? अतः तत्त्व जिज्ञासाके प्रारम्भमें ही यदि हमारी त्रुटि हो जाय, तो उसके फलस्वरूप हमें कभी भी आत्मप्रसाद प्राप्त नहीं हो सकता। श्रीव्यासदेवने ब्रह्मसूत्र (१/१/१)के प्रारम्भमें ही यह कहा है—"*अथातो ब्रह्मजिज्ञासा।*" मैं ब्रह्मको नहीं जानता—वे कौन हैं, उनका परिचय क्या है, उनके साथ मेरा क्या सम्बन्ध है?—मैं यह सब जानना चाहता हूँ, समझना चाहता हूँ। यदि मुझमें यह ज्ञान होता, तो मेरे भीतर यह जिज्ञासा उदित नहीं होती। अतः मुझे वैसे ज्ञानप्रद शिक्षककी आवश्यकता है। अतएव यहीं यथार्थ ब्रह्मज्ञ गुरुकी बात अनुस्यूत हुई है। इसीलिए श्रुतियाँ कहती हैं—"गुरुमेवाभिगच्छेत्"। 'गुरुमेव'—निश्चयकर कहा गया है कि गुरुके अतिरिक्त और किसी source से उस ब्रह्मको जाना नहीं जा सकता। अतः उनके निकट ही 'अभिगच्छेत्'—अभिगमन करना होगा। अभिगमन अर्थात् Approaching with service temperament and honest enquiry.

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥

गीता (४/३४) में इस स्थानपर अभिगमनकी व्याख्या है। **'प्रणिपात, परिप्रश्न और सेवा'**—यह विचार लेकर गमन करनेका नाम है **'अभिगमन'**। **'प्रणिपात'** अर्थात् आत्मनिवेदन—सर्वप्रथम इसकी ही आवश्यकता है। उसके बाद **'परिप्रश्न'** honest enquiry—सत्यको जाननेके लिये, समझनेके लिये प्रश्न, केवल तर्कके उद्देश्यसे नहीं। एवं **'सेवा'** serving temperament, यह न होनेपर reciprocation ठीक नहीं होगा।

ददाति प्रतिगृह्णाति गुह्यमाख्याति पृच्छति।
भुङ्क्ते भोजयते चैव षड्विधं प्रीति-लक्षणम्॥

(उपदेशामृत ४)

[अर्थात् विशुद्ध भक्तोंको उनकी आवश्यकतानुसार वस्तु देना, विशुद्ध भक्तोंके द्वारा दी हुई प्रसादस्वरूप वस्तुको स्वीकार करना, भजन सम्बन्धी अपनी गुप्त बातें भक्तोंके निकट कहना, वैसे ही रहस्यमयी गुप्त बातोंको उनसे पूछना, भक्तोंके द्वारा दिए गये प्रसादको प्रीतिपूर्वक भोजन करना और उन्हें प्रीतिपूर्वक भोजन कराना—ये छह प्रकारके सत्सङ्गरूपी प्रीतिके लक्षण हैं।]

सम्प्रीति स्थापित न होनेपर मैं उनके हृदयके आशय(भाव)को समझ नहीं पाऊँगा। अतः अभिगमन न होनेपर तत्त्वज्ञान लाभ नहीं होगा, केवल समय नष्ट होगा।

'ब्रह्म' को एकमात्र श्रौतपन्थासे ही जाना जा सकता है

किन्तु जिनके निकट इस प्रकार अभिगमनका विचार है—वे कैसे होंगे? उनका वैशिष्ट्य क्या होगा? शास्त्र कहते हैं—**'श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्'**—वे श्रौतपन्थी ब्रह्मनिष्ठ-गुरु होंगे। 'ब्रह्म' क्या वस्तु है?—यह एकमात्र श्रौतपन्थासे ही जाना जाता है—वह ब्रह्म किसी प्रकारकी Mental speculation या तर्कपथकी विषय-वस्तु नहीं है।

अचिन्त्या खलु ये भावा न तांस्तर्केण योजयेत्।
प्रकृतिभ्यः परं यच्च तदचिन्त्यस्य लक्षणम्॥

(महाभारत भीष्मपर्व ५/२२)

प्रकृतिसे जो अतीत हैं, उन्हें प्रकृतिके अन्तर्गत युक्तिके द्वारा मापनेसे चलेगा नहीं—वैसी चेष्टासे किसी प्रकारकी बुद्धिमता प्रमाणित नहीं होती। इसीलिये श्रौतपन्था छोड़कर उसे जानने-समझनेका और कोई उपाय नहीं है। श्रौतपन्था अर्थात् अपने मनसे किसीने कहा और उसके बाद वही बात अज्ञ-परम्परामें चलने लगी, ऐसा नहीं है। श्रौतपन्थाके मूल वक्ता—स्वयं भगवान् हैं एवं श्रोता हैं—उनके ही कोई विशेष कृपापात्र। हमारी चर्चामें पहले ही यह विचार आया है—ब्रह्म क्या वस्तु है?—यह स्वयं ब्रह्मके न बतलानेपर कोई भी उन्हें ठीक-रूपमें जान नहीं सकता। इसीलिए जगतस्रष्टा पितामह ब्रह्मा कह रहे हैं—

अथापि ते देव पदाम्बुजद्वय-
प्रसाद-लेशानुगृहीत एव हि।
जानामि तत्त्वं भगवन्महिम्नो
न चान्यं एकोऽपि चिरं विचिन्वन्॥

(श्रीमद्भा॰ १०/१४/२९)

हे प्रभो, हे भगवन्, आपकी कृपालेशको छोड़कर चिरकाल अनुसन्धान करके भी आपको जाना नहीं जा सकता। *"ईश्वरेर कृपालेश हय त जाहारे। सेई से ईश्वर तत्त्व जानिवारे पारे॥"* (श्रीचैतन्यचरितामृत मध्य ६/८४) [अर्थात् ईश्वरकी लेशमात्र भी कृपा जिनपर होती है, वही ईश्वर-तत्त्वको जान सकते हैं, अन्य नहीं] उपनिषद् (मुण्डक॰ ३/२/३) कहते हैं—*"नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन। यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते*

तनुं स्वाम्॥" बहुत पाण्डित्य है, तीक्ष्ण बुद्धि है—इनके द्वारा भगवान्‌को जान लूँगा, समझ लूँगा, अपने मनके अनुसार उनकी रूप-रेखा बना लूँगा—ऐसा होना सम्भव नहीं है। वे जिसको ग्रहण(स्वीकार) करेंगे, 'तेन लभ्यः'—वही उनको प्राप्त कर सकेगा। इसीलिए भगवान्‌ने स्वयं ही ब्रह्माके साथ Communicate किया था। क्यों किया? ब्रह्माकी भगवान्‌को जाननेके लिये विशेष चेष्टा थी। किन्तु समस्त चेष्टाओंको छोड़कर, आरोहपन्थाका त्यागकर वे भगवान्‌के शरणागत हुए। तब भगवान्‌ने उनके निकट वेद प्रकाश किया—

कालेन नष्टा प्रलये वाणीयं वेद-संज्ञिता।
मयादौ ब्रह्मणे प्रोक्ता धर्मो यस्यां मदात्मकः॥

(श्रीमद्भा॰ ११/१४/३)

श्रीकृष्ण कह रहे हैं—सृष्टिके आरम्भमें मैंने शरणागत ब्रह्माको शब्दब्रह्म—वेद प्रदान किया था। उनमें क्या है? *"धर्मो यस्यां मदात्मकः"*—जिससे मेरे प्रति प्रेमभक्ति लाभ होती है, उस भागवत्-धर्मकी कथा है उसमें।

यावानहं यथाभावो यद्रूपगुण-कर्मकः।
तथैव तत्त्वविज्ञानमस्तु ते मदनुग्रहात्॥

(श्रीमद्भा॰ २/९/३२)

हे ब्रह्मा! मैं जो तत्त्व हूँ, मेरा जो भाव, जो रूप, जो कर्म हैं, वह तत्त्वज्ञान मेरे अनुग्रहसे तुम्हें प्राप्त हो। अतः उस स्वयं तत्त्ववस्तुसे ही श्रौतपन्थाका उदय है। इसी भावसे ही चार वैष्णव-सम्प्रदाय प्रकाशित हुए हैं।

सम्प्रदाय विहिना ये मन्त्रास्ते विफला मताः।
श्री-ब्रह्म-रुद्र-सनका वैष्णवाः क्षितिपावनाः॥

(पद्मपुराण)

श्री-सम्प्रदाय, ब्रह्म-सम्प्रदाय, रुद्र-सम्प्रदाय और सनक-सम्प्रदाय—ये चार वैष्णव सम्प्रदाय हैं—यही चार श्रौतपन्था हैं और बाकी सब अश्रौत विचार—स्वकपोलकल्पना हैं। 'ब्रह्म निर्विशेष, निराकार हैं'—इसे छोड़कर जो ब्रह्मके और किसी विचारको नहीं मानते, वे अश्रौतपन्थी हैं।

ब्रह्मनिष्ठ कौन हैं?

जिन श्रुतियोंमें भगवान्‌के निर्विशेषत्वकी बात कही गयी है, उन्हीं श्रुतियोंमें उनके सविशेषत्वके विषयमें भी कहा गया है—

या या श्रुतिर्जल्पति निर्विशेषं
सा साभिधत्ते सविशेषमेव।
विचारयोगे सति हन्त तासां
प्रायो वलीयः सविशेषमेव॥

(श्रीचैतन्यचरितामृत मध्य ६/१४२)

अतः दोनों विचार ही युगपत् हैं। किन्तु, उनमें भी सविशेषत्व ही अधिक बलवान् है। कारण, सविशेषत्व ही ब्रह्मका स्वरूप लक्षण है, निर्विशेषत्व तो केवल तटस्थ-विचार, व्यतिरेक-विचार है। 'निर्विशेष' अर्थात् जिसकी कोई जड़ विशेषता, प्राकृत विशेषता नहीं है। और 'सविशेष' अर्थात् जो अप्राकृत विशेषतासे युक्त, अप्राकृत रूप, अप्राकृत गुण, अप्राकृत विलास समन्वित हैं। दोनों विचार ही एक तात्पर्यपर हैं, इनमें विरोधिता कहाँ है? जो इनमें विरोध दर्शन करते हैं, जो केवल निर्विशेषत्वको ही पारमार्थिक कहते हैं और सविशेषत्वको व्यवहारिक, मिथ्या, बच्चोंको बहलानेवाली, तात्कालिक—इस प्रकार कहकर वेद-वाक्योंमें अर्थवाद करते हैं, वे ब्रह्मनिष्ठ नहीं हैं, वे अपराधी हैं। एक ओर तो ब्रह्मको मानूँगा और दूसरी ओरसे मेरे सुविधानुयायी न होनेके कारण उसका परित्याग करूँगा, उसे व्यवहारिक कहूँगा—इससे ब्रह्मनिष्ठा प्रमाणित नहीं होती। किन्तु, गुरुदेव **"श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठम्"**—वे ब्रह्मनिष्ठ हैं, वे दोनों विचारोंके ही सुसामञ्जस्यकारी हैं।

श्रीगुरुदेव—तत्त्वदर्शी और भगवत्सेवा प्रकाशक

तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासु श्रेय उत्तमम्।
शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम्॥

(श्रीमद्भा॰ ११/३/२१)

उत्तम श्रेयः क्या है, आत्यन्तिक मङ्गल क्या है, वह कैसे प्राप्त हो सकता है?—जो यह जानना चाहते हैं, समझना चाहते हैं, वे शब्दब्रह्म और परब्रह्ममें निष्णात श्रीगुरुके शरणागत होंगे। शब्दब्रह्म अर्थात् नामब्रह्म—वाचकब्रह्म; परब्रह्म अर्थात् नामीब्रह्म—वाच्यब्रह्म। *"शब्दब्रह्म परब्रह्म ममोभे शाश्वती तनुः।"* [अर्थात् शब्दब्रह्म और परब्रह्म—ये मेरे नित्य दो श्रीअङ्ग हैं।] *"वाच्यं वाचकमित्युदेति भवतो नामस्वरूपद्वयम्।"* (श्रीनामाष्टकम् ६) [अर्थात् हे नाम! आपके वाच्य एवं वाचकरूपसे दो स्वरूप संसारमें प्रकट होते हैं।] भगवान्‌के इन दोनों स्वरूपोंमें ही श्रीगुरु निष्णात हैं। वे Realised soul हैं, Professional Priest नहीं हैं अथवा Platform speaker नहीं हैं। वे तत्त्वदर्शी होते हैं—तत्त्ववस्तुका दर्शन, अनुभव करते हैं। तत्त्ववस्तु अर्थात् भगवान्, तत्त्ववस्तु अर्थात् भगवन्नाम्, भगवद्‌गुण, भगवद्‌रूप, भगवद्‌परिकर, भगवल्लीला, भगवद्धाम। यह सब कुछ लेकर ही तो तत्त्ववस्तु है। श्रीगुरुदेव वैसे तत्त्वदर्शी हैं।

श्रीकृष्णने उन्हीं तत्त्वदर्शी गुरुदेवको अपना ही स्वरूप कहा है—

आचार्यं मां विजानीयात् नावमन्येत् कर्हिचत्।
न मर्त्यबुद्ध्यासूयेत सर्वदेवमयो गुरुः॥

(श्रीमद्भा॰ ११/१७/२७)

[अर्थात् भगवान् उद्धवसे बोले—"हे उद्धव! आचार्यको मेरा स्वरूप समझना। गुरुको सामान्य मरणशील व्यक्ति समझकर उनकी अवज्ञा मत करना। गुरु सर्वदेवमय हैं।"]

श्रीगुरुदेव ही स्वयं कृष्ण हैं—यह विचार उचित नहीं है। जो लोग ऐसा विचार करते हैं, उन्हें शास्त्रोंमें पाषण्डी, नारकी कहा गया है। भगवान् एवं भगवत्परिकर अभिन्न वस्तु हैं, किन्तु ऐसा होनेपर भी वे एक ही वस्तु नहीं है। भगवत्परिकर—भगवत्सेवा-विधानकारी होते हैं और गुरुदेव—भगवत्सेवा प्रकाशक होते हैं। अतः भगवत्परिकरमें ही वह गुरुत्व निहित है।

यद्यपि आमार गुरु—चैतन्येर दास।
तथापि जानिये आमि ताँहार प्रकाश॥

(श्रीचैतन्यचरितामृत आदि १/४४)

[अर्थात् यद्यपि मेरे गुरु श्रीचैतन्य महाप्रभुके दास हैं, तथापि मैं उनको श्रीचैतन्य महाप्रभुके प्रकाशके रूपमें दर्शन करता हूँ।]

श्रीगुरु—श्रीकृष्णके अचिन्त्य-भेदाभेद प्रकाश-विग्रह

जिस प्रकार सूर्यसे उसके आलोकको भिन्न करके प्राप्त नहीं किया जा सकता, इसी कारण सूर्य एवं उसका प्रकाश अभिन्न हैं, उसी प्रकार भगवान् और गुरुदेव हैं। पुनः जिस प्रकार सूर्यके अधीन उसका आलोक रहता है, उसी प्रकार श्रीगुरुदेव भगवान्‌के अधीन तत्त्व—भगवान्‌के सेवक तत्त्व हैं। इसीलिये शास्त्रोंमें गुरुदेवको अभिन्न-कृष्ण कहा गया है।

शुद्धभक्ताः श्रीगुरोः श्रीशिवस्य च भगवता सह
अभेददृष्टिं तत्प्रियतमत्वेनैव मन्यन्ते॥

(भक्ति-सन्दर्भ २१६)

[अर्थात् शास्त्रोंमें जिन-जिन स्थलोंपर श्रीगुरुदेव और वैष्णवप्रवर शम्भुको भगवान्‌से अभिन्न कहा गया है, उन-उन स्थलोंपर शुद्धभक्तगण अभिन्नका तात्पर्य कृष्णका प्रियतम ही मानते हैं।]

साक्षाद्धरित्वेन समस्तशास्त्रै-
रुक्तस्तथा भाव्यत एव सद्भिः।
किन्तु प्रभोर्यः प्रिय एव तस्य
वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्॥

(श्रीगुरुदेवाष्टकम् ७)

[अर्थात् निखिल शास्त्रोंने जिनका साक्षात् हरिके अभिन्न विग्रहरूपसे गान किया है एवं साधुजन भी जिनकी उसी प्रकारसे भावना करते हैं, जो भगवान्‌के एकान्त प्रिय हैं, उन्हीं (भगवान्‌के

अचिन्त्य-भेदाभेदप्रकाश विग्रह) श्रीगुरुदेवके चरणकमलोंकी मैं वन्दना करता हूँ।]

गुरुवरं मुकुन्दप्रेष्ठत्वे, स्मर परमजस्रं ननु मनः॥

(मनःशिक्षा २)

अतः सर्वत्र ही कहा गया है—गुरुदेव भगवत् प्रियतमजन हैं—इसी कारण ही उनका भगवदभिन्नत्व है। श्रील प्रभुपाद वही कह रहे हैं—"विषयजातीय कृष्ण आधे-भाग और आश्रयजातीय कृष्ण आधे-भाग हैं। इन दोनोंकी विलास-वैचित्र्यता ही पूर्णता है। विषयजातीयकी पूर्ण-प्रतीति श्रीकृष्ण हैं और आश्रयजातीयकी पूर्ण-प्रतीति मेरे गुरुपादपद्म हैं।" इसीलिये कहा गया है कि गुरुदेव कृष्णस्वरूप हैं, स्वयं कृष्ण नहीं।

श्रीगुरुदेव—कृष्णस्वरूप हैं

गुरुदेव क्यों कृष्ण स्वरूप हैं? कारण, *"कृष्णभक्ते कृष्णेर गुण सकलि सञ्चारे।"* (श्रीचैतन्य-चरितामृत मध्य २२/७५) [अर्थात् श्रीकृष्णके सभी गुण श्रीकृष्णके भक्तमें सञ्चरित होते हैं] *"बृहत्वाद् बृंहत्वाद् ब्रह्म"*—ब्रह्म स्वयं बृहद् तत्त्व हैं। पुनः वे अपने आश्रित तत्त्वको बृहत्व प्रदान करते हैं, इसीलिये वे ब्रह्म हैं। बृहत्के सान्निध्यमें क्षुद्रत्व दूर हो जाता है। जिस प्रकार आलोकके प्रभावसे अन्धकार दूर हो जाता है, उसी प्रकार।

कृष्ण—सूर्यसम, माया—अन्धकार।
याहाँ कृष्ण, ताँहा नाहि मायार अधिकार॥

(श्रीचैतन्यचरितामृत मध्य २२/३१)

[अर्थात् श्रीकृष्ण सूर्यके समान हैं और माया अन्धकारके समान, इसलिए जहाँ कृष्ण हैं, वहाँ मायाका कोई अधिकार नहीं है।]

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि मयि दृष्टेऽखिलात्मनि॥

(श्रीमद्भा॰ १/२/२१)

भगवत् सान्निध्यमें जीवकी समस्त अविद्या-रूपी हृदयग्रन्थि विनष्ट हो जाती है, समस्त संशय छिन्न हो जाते हैं, समस्त कर्म क्षय हो जाते हैं। इस प्रकार जीवके जितने क्षुद्रत्व, लघुत्व होते हैं, वे सब दूर हो जाते हैं और कृष्णमें जो स्वतःसिद्ध गुरुत्व है, वह उस जीवमें सञ्चारित हो जाता है। *"परम दुर्मति छिल, ताँरे गोरा उद्धारिल, ताँ'रा हइल पतित पावन॥"* (प्रार्थना ३७) [अर्थात् जिन अत्यन्त दुर्मति लोगोंको श्रीगौराङ्ग महाप्रभुने उद्धार किया था, वे भी पतितोंको पावन करनेवाले बन गये] तब 'नग्न मातृका' न्यायके समान उसके पुरातन क्षुद्रत्वपर विचार करनेसे अपराध होता है।

स्वरूप-धर्मके प्रकाशसे ही गुरुत्वका प्रकाश

किवा विप्र, किवा न्यासी, शूद्र केने नय।
येई कृष्णतत्त्ववेत्ता, सेई गुरु हय॥

(श्रीचैतन्यचरितामृत मध्य ८/१२८)

[अर्थात् ब्राह्मण, शूद्र, गृहस्थ अथवा संन्यासी किसी भी वर्ण या आश्रममें स्थित व्यक्ति कृष्णतत्त्वका ज्ञाता होनेपर गुरु होनेका अधिकारी है। कृष्णतत्त्वविद् होना ही गुरुका प्रधान लक्षण है।]

आपात दर्शनसे गुरुत्वका निर्णय नहीं होता—स्वरूप-धर्मके प्रकाशसे ही गुरुत्व प्रकाशित होता है। तभी कहा गया है *'शूद्र केने नय'*। भगवद्भक्त क्या शुद्र हो सकते हैं? कदापि नहीं।

न शुद्रो भगवद्भक्ताः ते तु भागवत मताः।
सर्ववर्णेषु ते शूद्राः ये न भक्त जनार्द्दने॥

(पद्मपुराण)

[अर्थात् भगवद्भक्तिपरायण व्यक्ति कभी भी शूद्र नहीं कहलाते, उनको 'भागवत' ही कहा जाता है। जनार्दनके प्रति भक्ति न होनेपर कोई भी जाति क्यों न हो, उनकी 'शूद्र' कहकर ही गणना होती है।]

अत्रि ऋषिने इस विचारको परिष्कृत कर दिया है—भगवद्भक्तोंको कभी भी शूद्र नहीं कहा जा सकता, वे सभी भागवत—पारमार्थिक विप्र हैं। उनमें किसी प्रकारका शोक-धर्म नहीं है, क्योंकि *'शोचनात् इति शूद्रः'* अर्थात् जो शोक करते हैं, वही 'शूद्र' हैं। इसलिए सर्वशोक-परिमुक्त भागवतगणोंको शूद्र कहनेपर महा-अपराध होता है। तब फिर किन्हें शूद्र कहा जायेगा? *"सर्ववर्णेषु ते शूद्रा ये न भक्त जनार्दने।"* जिनकी भगवान्‌के प्रति भक्ति नहीं हुई, मति नहीं हुई, वे सब समय शोक-मोह-भयग्रस्त रहते हैं, अतः वे शूद्र हैं। भगवद्भक्ति ही एकमात्र *'शोक-मोह-भयापहा'* है, उसका अवलम्बन न करनेपर जीवका शूद्रत्व दूर नहीं होता। कृष्णतत्त्ववेत्ता भागवतगणोंमें इस शूद्रत्वका स्थान नहीं है। कृष्णतत्त्ववेत्ता अर्थात् कुछ Theoretical है क्या? समस्त Theory को रट लिया, किन्तु हृदयस्थ कुछ नहीं हुआ या आंशिक हुआ है—कृष्णतत्त्ववेत्ता क्या इस प्रकारके कुछ हैं? नहीं, जो कृष्णतत्त्वमें सुदृढ़ भावसे Practical हैं, केवल Theory मात्र नहीं, सहजभावसे उसमें अभ्यस्त, प्रतिष्ठित हैं—जिनकी कथाओं और आचरणमें कोई विरोध नहीं है, कृष्णैकशरण जिनका स्वरूप लक्षण है, यहाँ उनके विषयमें ही कहा गया है। उनकी समस्त इन्द्रियाँ कृष्णसेवामें निरन्तर नियुक्त Adjusted, dovetailed हैं, इसीलिए वहाँ षड्वेगोंका कोई disturbance नहीं होता है।

जगद्-गुरु

वाचो वेगं मनसः क्रोधवेगं
जिह्वावेगमुदरोपस्थ-वेगम्।
एतान् वेगान यो विषहेत धीरः
सर्वामपीमां पृथ्वीं स शिष्यात्॥

(उपदेशामृत १)

[अर्थात् जो धीर पुरुष अपनी वाणीके वेगको, मनके वेगको, क्रोधके वेगको, जिह्वाके वेगको, उदरके वेगको एवं जननेन्द्रियके वेगको सहन करनेमें समर्थ हो जाता है, वह समस्त पृथ्वीका शासन कर सकता है अर्थात् ऐसे जितेन्द्रिय व्यक्तिके सभी जन शिष्य हो जाते हैं।]

जिन्होंने इन छह वेगोंपर विजय प्राप्त कर ली है, वे ही जगद्गुरु हैं। रेचक, पूरक, कुम्भक, यम, नियम, प्राणायामके द्वारा इन्द्रियोंको Totally disengage कर छह वेगोंको दमन करनेकी बात नहीं कही गयी है, अपितु इन्द्रियोंके द्वारा षड्वेग दमन कराना, यही यथार्थ है।

यमादिभिः योगपथैः कामलोभहतो मुहुः।
मुकुन्दसेवया यद्वद् तथाद्धात्मा न शाम्यति॥

(श्रीमद्भा॰ १/६/३५)

[अर्थात् काम और लोभकी चोटसे बार-बार घायल हुआ हृदय श्रीकृष्णकी सेवासे जैसी प्रत्यक्ष शान्तिका अनुभव करता है, यम, नियम आदि अष्टाङ्ग योग मार्गोंसे वैसी शान्ति प्राप्त नहीं होती है।]

अतः कृष्णभक्त ही यथार्थ षड्वेगविजयी हैं, वे ही वास्तविक जगद्गुरु हैं।

'कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्'—श्रीकृष्ण ही मूल जगद्गुरु हैं, उनके गुरुत्वसे सबका गुरुत्व है। वे अन्यको गुरुत्व प्रदान करते हैं—

या'रे देख, ता'रे कह कृष्ण-उपदेश।
आमार आज्ञा गुरु हइया तार एई देश॥
कभु न बाधिबे तोमाय विषय-तरङ्ग।
पुनरपि एई ठाञि पाबे मोर सङ्ग॥

(श्रीचैतन्यचरितामृत मध्य ७/१२८-१२९)

[अर्थात् श्रीचैतन्य महाप्रभुने कहा—जिनको भी देखो(मिलो), उन्हें श्रीकृष्णके सम्बन्धमें उपदेश प्रदान करो। इस प्रकार मेरी आज्ञासे गुरुका कार्यकर इस देशका उद्धार करो। मेरी

आज्ञाका पालन करनेके कारण तुम्हें कभी भी विषयवासनारूपी तरङ्ग बाधित नहीं करेगी और मेरी आज्ञाका पालन करनेके फलस्वरूप इसी स्थानपर पुनः मेरा सङ्ग प्राप्त करोगे।]

जीवहिंसा

इस प्रकार भगवान् अपने आश्रितगणोंमें शक्ति सञ्चारितकर उन्हें गुरुरूपमें जीव कल्याणके लिये जगत्में भेजते हैं। भगवद्-शक्ति सञ्चरित न होनेपर जीवको गुरुत्व लाभ नहीं होता—लघु-जीव भगवद्-शक्तिके अभावमें विषय-तरङ्गोंमें निमग्न हो जाता है। भगवद्-शक्ति-प्राप्त गुरुका इस प्रकार पतन नहीं होता। इसीलिये कहा गया है—*'कभु न बाधिबे तोमाय विषय तरङ्ग'।* श्रील प्रभुपादने इसलिए इस प्रसङ्गमें कहा है—"हिंसाका परित्यागकर जीवके प्रति दयायुक्त होओ। हिंसा करनेके लिये गुरुगिरि मत करो। स्वयं विषयोंमें डूबनेके लिये गुरुगिरि मत करो। किन्तु यदि तुम मेरे निष्कपट दास बन सकते हो, मेरी शक्ति लाभ करते हो, तब तुम्हें किसी प्रकारका भय नहीं है।" अर्थात् निष्कपट भगवद्भक्तमें ही भगवद्-शक्ति सञ्चरित होती है। वह शक्ति प्राप्त न होनेपर तब जीवके प्रति दयाके बदले जीवहिंसा हो जाती है। जीवहिंसाका क्या अर्थ है? श्रील प्रभुपाद कह रहे हैं—"जीवहिंसा शब्दसे शुद्धभक्ति-प्रचारमें कुण्ठता या कृपणता, मायावादी, कर्मी और अन्याभिलाषीको प्रश्रय देना या उनके मनके अनुरूप बात कहना।" अर्थात् शास्त्रोंकी निरपेक्ष सत्य कथाको गोपनकर मनोधर्मको प्रश्रय देकर जीवकी बुभुक्षुता (भोग कामना) या मुमुक्षुता (मोक्ष कामना) रूपी अग्निमें ईन्धन देना ही जीवहिंसा है। कर्मी, ज्ञानी, योगी—ये सब अन्याभिलाषी, अशरणागत, आरोहवादी हैं। ये गुरुके रूपमें सजकर भीषण जीवहिंसा करते हैं। कर्मप्रयास, ज्ञानप्रयास और योगप्रयाससे जीवके आत्मधर्मके विकसित होनेकी कोई सम्भावना नहीं है। ये सब अवैष्णव हैं। ये अनेक स्थानोंपर जो भगवान् विष्णुको स्वीकार करते हैं, वह केवल सुविधा प्राप्त करनेके लिये है। जो लोग विष्णुको तात्कालिक, सोपाधिक विचार करते हैं, उनके द्वारा विष्णुको स्वीकार करना भी मूल्यहीन ही कहना होगा। पञ्चोपासनामें जो विष्णुकी उपासना देखी जाती है, उसमें कोई नित्यता नहीं है। वे विष्णुके साथ अपने नित्य सम्बन्धको नहीं समझते—नित्य विष्णुदासत्वके परिचयको स्वीकार नहीं करते। अतः उनकी वैष्णवता—विद्ध-वैष्णवता है। सभी पञ्चोपासकगण निर्विशेष ब्रह्मवादी हैं। वे ब्रह्मकी सविशेषताको मायिक गुणोंके अधीन मानते हैं। अतः वे अपराधी हैं—*"प्राकृत करिया माने विष्णु-कलेवर। यमदण्ड नाहि आर इहार ऊपर॥"* (श्रीचैतन्यचरितामृत आदि ७/११५) [अर्थात् मायावादिगण श्रीविष्णुके अप्राकृत कलेवरको प्राकृत मानते हैं, अतएव यमदण्डके अतिरिक्त इन अपराधियोंको और कुछ नहीं मिलता।] उनका जो स्वरूपतः वैष्णव परिचय है, वह आच्छादित रहता है। इसीलिये अमङ्गलसे बचनेका उनके पास कोई उपाय नहीं है। ऐसी स्थितिमें वे अन्य किसीका अमङ्गल किस प्रकार दूर कर सकते हैं? इसीलिये शास्त्रोंमें कहा गया है—

अवैष्णवोपदिष्टेन मन्त्रेण निरयं व्रजेत्।
पुन विधिना सम्यग् ग्राह्येद् वैष्णवाद् गुरोः॥

(श्रीहरिभक्तिविलास ४/१४४)

अवैष्णवके द्वारा प्रदत्त मन्त्रकी गतिका सार नरक ही है। इसीलिये पुनः वैष्णव-गुरुके निकट ही मन्त्र ग्रहण करना चाहिये। और अवैष्णव-गुरुकी क्या गति होती है?

यो वक्ति न्यायरहितमन्यायेन शृणोति यः।
तावुभौ नरकं घोरं व्रजेतः कालमक्षयम्॥

(श्रीहरिभक्तिविलास १/६२)

जो शास्त्रकी कथाओंकी मनगढ़न्त भावसे, अपनी सुविधाके अनुसार व्याख्या करते हैं, और जो उन

कथाओंको सुनते हैं—वे दोनों ही अन्याय करनेके कारण अक्षयकाल तक नरकमें वास करते हैं।

वैष्णव-गुरुकी महिमा स्वयं विष्णुतुल्य है

एकमात्र भगवद्भक्तिसे ही जीवके समस्त अमङ्गलोंका नाश होता है। भगवद्भक्तिसे ही कर्म, ज्ञान, योग सुसामञ्जस्य भावसे एकतात्पर्यपर होकर अवस्थान करते हैं, वहाँ उनमें परस्पर कोई द्वन्द, विवाद नहीं होता।

यत्कर्मभिर्यत्तपसा ज्ञानवैराग्यतश्च यत्।
योगेन दानधर्मेण श्रेयोभिरितरैपि।
सर्वं मद्भक्तियोगेन मद्भक्तो लभतेऽञ्जसा॥

(श्रीमद्भा॰ ११/२०/३२)

कर्म, तपस्या, ज्ञान, वैराग्य, अष्टाङ्गयोग या अन्यान्य व्रतोंके द्वारा जो-जो पृथकरूपसे प्राप्त होता है, वह सब मेरे भक्तगण अनायास ही प्राप्त कर लेते हैं। अतः भक्तिमें ही सब प्रयोजन सिद्ध हुए हैं—यह तो स्वयं भगवान्‌की ही Verdict है—इसमें कोई पक्षपातित्व नहीं है। ऐसी भगवद्भक्तिके प्रकाशक जो वैष्णवगुरु हैं, उनकी महिमा स्वयं विष्णुतुल्य है।

यस्य देवे परा भक्तियर्था देवे तथा गुरौ।
तस्येते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनाः॥

(श्वेताश्वतर उपनिषद् ६/२३)

जिनकी भगवान्‌में जैसी पराभक्ति है, यदि वैसी ही वैष्णव-गुरुके प्रति होती है—वे महात्मा, महाभागवत होते हैं। शास्त्रोंके अर्थ ठीक-ठीक भावसे उनके निकट ही प्रकाशित होते हैं। विषय और आश्रयविग्रहके साथ परस्पर मधुर अङ्गाङ्गी सम्बन्ध है, इसे ही समझना होगा। इसीलिये *'मन्नाथः श्रीजगन्नाथो मद्गुरुः श्रीजगद्गुरुः'* यह बात कही गयी है।

गुरुदेवात्मा

विषय और आश्रय तत्त्वके प्रति निष्ठा न रहनेपर सब गड़बड़ हो जायेगा। विषयविग्रह—भगवान् सर्वेश्वरेश्वर हैं, आश्रयविग्रह—श्रीगुरुदेव कोई जीव नहीं हैं—वे सर्वदेवमय—ईश्वर हैं। यह विचार न रखनेपर गुरुदेवके प्रति मर्त्यबुद्धि होगी। तब महाविपद हो जायेगी। हमारा प्राकृतत्व कभी भी दूर नहीं होगा। इसीलिये कहा गया है—*'गुरुदेवात्मा'* (श्रीमद्भा॰ ११/२/३७)। जो गुरुदेवके प्रति देवता ज्ञान रखते हैं एवं आत्मा अर्थात् अपना प्रिय जानते हैं, वही गुरुदेवात्मा हैं। गुरुदेवात्मा न होनेपर *'विश्रम्भेन गुरोः सेवा'* नहीं होती—गुरुदेवात्मा न होनेपर कृष्ण भजन नहीं होता।

ताते कृष्ण भजे करे गुरुर सेवन।
मायाजाल छुटे पाय श्रीकृष्णचरण॥

(श्रीचैतन्यचरितामृत मध्य २२/२५)

[अर्थात् श्रीगुरु और श्रीकृष्णकी कृपासे भक्तिलताके बीजको प्राप्त जीव गुरुकी सेवा और श्रीकृष्णका भजन करते-करते शीघ्र ही मायाके जालसे मुक्त होकर श्रीकृष्णके चरणोंकी साक्षात् सेवाको प्राप्त कर लेता है।] कृष्णभजन और गुरुसेवा—इनमें परस्पर ओतप्रोत सम्पर्क है।

श्रीगुरुका विभिन्न मूर्त्तियोंमें प्रकाश

शास्त्रोंमें विभिन्न प्रकारके गुरुओंके विषयमें वर्णन है—चैत्यगुरु, वर्त्मप्रदर्शक-गुरु, श्रवणगुरु, भजनशिक्षा-गुरु, मन्त्र-गुरु आदि। चैत्यगुरु—ये भजनके अनुकूल विवेक प्रदाता गुरु हैं। जिनकी प्रीतिपूर्वक निष्कपट भजनकी चित्तवृत्ति है, चैत्यगुरु उन्हें सठीक बुद्धियोग प्रदान करते हैं। *"ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते।"* (श्रीगीता १०/१०) [अर्थात् उन निरन्तर भक्तिके परायण, प्रेमसहित मुझे भजनेवाले भक्तोंको मैं शुद्धज्ञानसे उदित विमल प्रेमयोग दान करता हूँ, जिसके द्वारा वे मेरे परम धामको प्राप्त होते हैं।] दूसरी ओर अन्याभिलाषी जीवके निकट वे मौन अवलम्बन करते हैं। मायाके द्वारा उन्हें कर्मचक्र—जन्म-मृत्युके चक्रमें भ्रमण कराते हैं।

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढ़ानि मायया॥

(श्रीगीता १८/६१)

[अर्थात् हे अर्जुन! सर्वान्तर्यामी परमात्मा सभी जीवोंके हृदयमें अवस्थान करते हैं और अपनी माया द्वारा यन्त्रारूढ़की भाँति जीवको संसार-चक्रमें भ्रमण कराते हैं।]

जिस समय जीव द्वितीय अभिनिवेशका त्याग करनेके लिये प्रस्तुत होता है, उस समय चैत्यगुरु अन्तर्यामीके रूपमें उसके चित्तमें कृष्णभक्तिके प्रति विवेक उदित कराते हैं—और बाहरसे महान्तस्वरूपमें प्रकाशित होते हैं। तभी वर्त्मप्रदर्शक गुरु, श्रवणगुरु, दीक्षागुरु, भजनशिक्षागुरु आदिका क्रमानुसार प्रकाश होता रहता है। श्रील प्रभुपादने कहा है—"आश्रयजातीय गुरुवर्ग विभिन्न मूर्त्तियोंमें मेरे ऊपर दया करनेके लिये उपस्थित हैं। ये दिव्यज्ञानप्रदाता गुरुपादपद्मके ही प्रकाश-विशेष हैं।" वर्त्मप्रदर्शक गुरु, श्रवणगुरु अनेक समय एक ही व्यक्ति होते हैं। यदि शिक्षागुरुदेव हमें यह उपदेश प्रदान न करें कि—किस प्रकार गुरुपादपद्मका आश्रय करना होगा, किस प्रकार गुरुपादपद्मके साथ व्यवहार करना होगा, तो हमारा मङ्गल नहीं होगा। वे दीक्षागुरुकी मर्यादा, दीक्षागुरुकी पूजाकी शिक्षा प्रदान करते हैं। सम्बन्धज्ञान-प्रदाता दीक्षागुरुके निकट मन्त्र-अनुग्रह लाभ करना होगा। भजनशिक्षागुरु भजनप्रणालीकी शिक्षा दान करते हैं। दोनों एक ही व्यक्ति होते हैं, ये कभी भी पृथक् नहीं हैं। किन्तु सभी उन्हीं दिव्यज्ञानप्रदाता गुरुपादपद्मके ही प्रकाश हैं। इनमें किसी प्राकृत-विचारसे भेद-बुद्धि, असम-बुद्धि करनेपर महा-अनर्थ आकर उपस्थित हो जाता है। गुरुदेवके प्रति मर्त्यबुद्धि दूर न होनेपर विभिन्न प्रकारके भेदविचार आकर उत्पात आरम्भ करते हैं। इसलिए विशेष सतर्कताका अवलम्बन न करनेपर दुर्दशा दूर नहीं होती। इसीलिये कहा गया है—*"श्रीगुरु-चरण-पद्म, केवल भक्ति-सद्म, वन्दो मुञि सावधान मते।"* (प्रेमभक्तिचन्द्रिका) [अर्थात् श्रीगुरुदेवके चरणकमल ही भक्तिके एकमात्र भवन(आश्रय) हैं। उनकी मैं अतिशय सावधानीपूर्वक वन्दना करता हूँ।]

इस विशेष दिनपर मेरे गुरुपादपद्मके अतिमर्त्य चरित्रका स्मरण

इस एक विशेष दिनपर मैं अपने गुरुपादपद्मके अतिमर्त्य चरित्रका ही स्मरण कर रहा हूँ। उनका सर्वप्रधान वैशिष्ट्य था—उनकी असमोर्द्ध गुरुनिष्ठा। वे *'गुरुदेवात्मा'* विचारके ज्वलन्त दृष्टान्त थे। प्रतिक्षण उनकी गुरुसेवाके लिये इतनी उन्मुखता थी कि जिसकी एकमात्र सर्वोत्तम पातिव्रत्य धर्मके साथ ही तुलना की जा सकती है। अपने प्राण, देह सबकुछ उन्होंने सम्पूर्णरूपसे श्रील प्रभुपादके चरणोंमें समर्पित किये थे। श्रीरामानुजके शिष्य श्रीकुरेशने जिस प्रकार अपने प्राण-विनिमयसे श्रीगुरुसेवाका अति उज्ज्वल दृष्टान्त रखा था, उसी प्रकार मेरे श्रीगुरुपादपद्म थे। उन्होंने अपने प्राणोंकी जलाञ्जलि देकर आसुर-वृत्तिके गर्वसे प्रभुपादका संरक्षण किया था। और श्रील प्रभुपादने भी इस प्रकारकी एक लीला प्रकाशितकर श्रीगुरुपादपद्मके हृदयकी अतुलनीय गुरुनिष्ठाको सर्वसमक्ष प्रकाशित कर दिया। महामहोपदेशक, महोपदेशक शिष्योंकी जो गुरुनिष्ठा इन निभृतमें निगूढ़ सेवनरत एक उपदेशक पण्डितकी गुरुनिष्ठाके सामने सूर्यके निकट जुगुनुके समान थी, उसे ही प्रकाशितकर प्रभुपादने उन लोगोंके गर्वको ध्वंस किया था। तत्त्व-सिद्धान्तके विचारमें भी उनकी इतनी गुरुनिष्ठा थी कि उससे सभी स्तम्भित हो जाते थे। किसी एक समय किसी तत्त्व-सिद्धान्तको लेकर श्रील प्रभुपादके विचारको अतिक्रम करनेकी चेष्टा होनेपर उन्होंने गर्जन करते हुए कहा था—"मैं पूर्व गोस्वामियोंको नहीं पहचानता, नहीं जानता। मैं जगद्गुरु श्रील प्रभुपादकी विचारधाराको ही अभ्रान्त सत्य मानता हूँ। मैं प्रभुपादके आलोकमें ही पूर्व गोस्वामियोंको जाननेकी, समझनेकी चेष्टा करूँगा।

'आचार्येर येई मत सेई मत सार, आर यत मत सब याउक छारखार॥' [अर्थात् आचार्यका जो मत है, वही मत सार है और अन्य सभी मत नष्ट हो जाएँ।] यही मेरा विचार है।" तब सभी विस्मयसे उनके इस विचारके समक्ष नतमस्तक हुए थे। इस घटनामें उनकी एक विशेष शिक्षा निहित है। 'गुरुनिष्ठा', 'गुरुभक्ति' की बात अनेक क्षेत्रोंमें ही अस्थानमें प्रयोग होती है। गुरुब्रुवके प्रति निष्ठासे अधःपतन अनिवार्य है। 'गुरु' माने ही वास्तववस्तु, कृष्णवस्तु हैं। विभिन्न अपसम्प्रदायोंमें जो सब तथाकथित गुरु हैं, वे कृष्णस्वरूप नहीं हैं। हमने पहले भी यह आलोचना की है। वहाँ जो निष्ठा, भक्ति होती है, वह जीवकी अविद्याके कारण ही होती है। अतः वह आदौ 'गुरुनिष्ठा', 'गुरुभक्ति'-शब्दवाच्य नहीं है। यहाँ श्रील प्रभुपादके प्रति गुरुपादपद्मकी जो निष्ठा है—वह प्रभुपादके साथ उनके अन्तरङ्ग-सम्बन्धका परिचय है—वास्तववस्तुके साथ गाढ़ सम्बन्धका परिचय है। पूर्व-पूर्व गोस्वामियोंके विचारोंमें कोई भ्रान्ति नहीं है, यह गुरुपादपद्म विलक्षण रूपसे जानते थे। किन्तु इन सब विचारोंमें दुर्बुद्धिग्रस्त जीवोंकी अनेक स्थानोंपर भूल हो सकती है। किन्तु प्रभुपादके विचार-आदर्शका अवलम्बन करनेपर फिर विचार-भ्रान्तिमें लिप्त रहनेकी कोई सम्भावना नहीं है।

श्रील प्रभुपादके साथ सम्बन्धित किसी भी व्यक्तिके उपस्थित होनेपर—चाहे वह कोई मठवासी, त्यागी, गृहस्थ अथवा कोई साधारण व्यक्ति ही क्यों न हो, गुरुपादपद्म आनन्दसे गद्गद् हो जाते थे। उनकी आन्तरिकता अकपट भावसे प्रकाशित होती थी। *'गुरुसेवक हय मान्य आपनार।'* [अर्थात् श्रीगुरुका सेवक हमारे लिए सम्माननीय है।] प्रभुपादके साथ किसीका भी किसी प्रकारका सेवासम्बन्ध होनेपर, वे उसके प्रति अपनेको कृतज्ञ बोध करते थे, ऋणी बोध करते थे। उसी बोधसे वे उनको बहुत अर्थानुकुल्य भी प्रदान करते थे। कारण, प्रभुपाद एकमात्र उनके हृदयकी ही वस्तु थे—उनके साथमें सम्बन्धित व्यक्तिके साथ ही गुरुपादपद्मकी समस्त प्रीति थी। दूसरी ओर प्रभुपादकी सेवाके छलसे जिन्होंने उनके प्रति विरोध आचरण किया था, उनके प्रति वे वज्रसे भी कठोर थे। यह सब तो स्वाभाविक है—सम्बन्धबोधसे ही आता है।

श्रीगुरुदेव—श्रीराधा-गोविन्दकी समस्त सेवाके Sole custodian—सर्वसंरक्षक हैं। श्रीराधा-गोविन्दकी जो समस्त सेवा अनुष्ठित होती है, वह गुरुपादपद्मकी ही सेवा है। गुरुदेव कृष्णेन्द्रिय-तोषणके साथ इस प्रकारसे adjusted हैं कि कृष्णके सुख-विधानमें ही गुरुदेवका आनन्दविधान होता है—उनके आनन्द लाभका अन्य कोई source नहीं है। इसीलिये श्रीकृष्णके सेवा-विधानसे श्रीगुरुदेवकी ही सेवा सम्पादित होती है। तभी सब गुरुदेवके ही सेवक हैं। उसी सेवासूत्रमें जो एकक्षणके लिये भी संयुक्त हुए हैं, गुरुपादपद्म उनके प्रति अपनेको ऋणी बोध करते थे, कारण प्रभुपाद मानो एकमात्र उनके ही हृदयके धन थे।

श्रीगुरुपादपद्मकी यह असमोर्द्ध गुरुनिष्ठा ही उनका मुख्य परिचय है। उनके अन्यान्य असंख्य गुण, वैशिष्ट्य, परिचय हैं—वह सब मुख्य परिचयके ही अधीन हैं। समयके अभावमें उन सब अतिमर्त्य-वैशिष्ट्योंकी आलोचना सम्भव नहीं हुई।

व्यासपूजा अर्थात्—गुरुचरणाश्रय, गुरुपादपद्ममें पाद्यापर्ण है। उसको ही मैंने अपनी क्षमताके अनुसार सम्पादन करनेका प्रयास किया है। श्रीगुरुपादपद्म अहैतुकी करुणावशतः मेरे प्रति प्रसन्न हों—उनसे यही निवेदन है। आपलोग मुझे आशीर्वाद करें—जिससे गुरुपादपद्म मेरे प्रति प्रसन्न रहें। अपनी शारीरिक अस्वस्थताके कारण मैं साक्षात्रूपसे आपके सम्मुख उनकी गुणावलीका कीर्त्तन नहीं कर पाया, इस कारण आप सभी मुझे क्षमा करेंगे।

वाञ्छाकल्पतरुभ्यश्च कृपासिन्धुभ्य एव च।
पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः॥

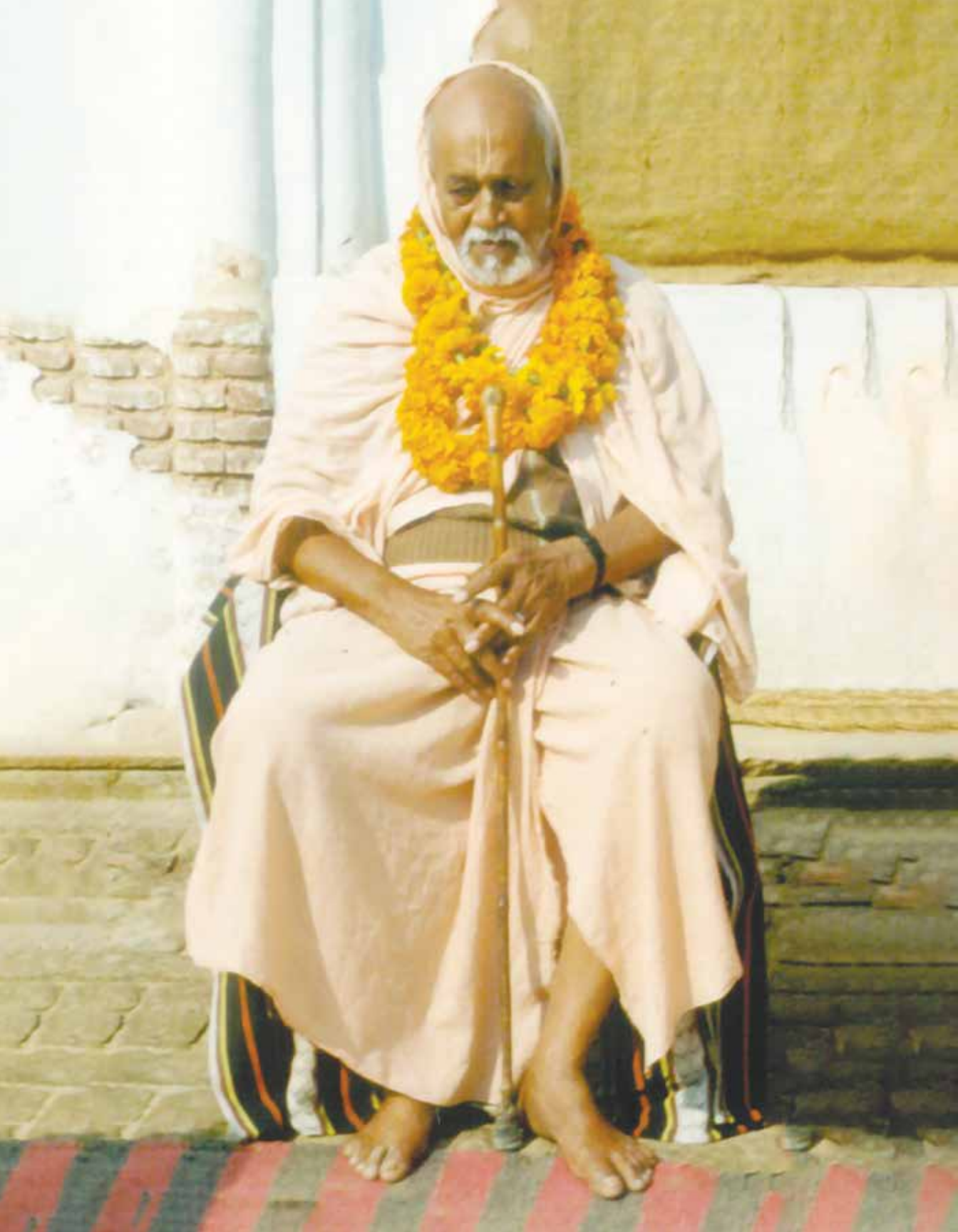

श्रीगुरु-पदाश्रय

—श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम गोस्वामी महाराज

कर्माण्यारभमाणानां दुःखहत्यै सुखाय च।
पश्येत् पाकविपर्यासं मिथुनीचारिणां नृणाम्॥

(श्रीमद्भा. ११/३/१८)

इस श्लोकके द्वारा श्रीप्रबुद्ध ऋषिने हमें बताया है—मनुष्यगण परस्पर मिलित होकर दुःखका नाशकर सुख प्राप्तिके लिए कर्मानुष्ठान करते हैं, किन्तु फल विपरीत हो जाता है। अर्थात् दुःख दूर होकर सुखप्राप्तिके स्थानपर अधिकरूपसे दुःखकी ही प्राप्ति होती है। यह अत्यन्त सत्य बात है। एक-दो उदाहरणोंकी चर्चा करनेसे इसकी उपलब्धि होती है। यथा—अविवाहित युवक विवाहरूप कर्मानुष्ठानके समय सुखप्राप्तिका ही उद्देश्य रखते हैं। इस कर्मके द्वारा दुःख मिले—इस प्रकारका उसका उद्देश्य नहीं रहता। परन्तु हाय! कर्म अपना स्वभाव परित्याग नहीं करता। पूर्णरूपसे स्वस्थ और रूपवती पत्नी विवाहके कुछ दिनों बाद किसी बीमारीसे पीड़ित होकर दुबली-पतली बन गयी, अथवा कुछ समयमें संसार पुत्र-कन्याओंसे परिपूर्ण होकर अर्थाभाव और कन्याका विवाह आदि दुःखोंका कारण बन गया, अथवा नयनमणि-स्वरूपिणी गृहिणी मेरे हृदयमें शूल बिद्धकर अपने स्थान [पिताके घर] पर लौट गयी। इस प्रकारकी कोई-न-कोई बाधा आकर कर्मी व्यक्तिको सुखके बदले दुःखोंमें निमग्न कर देती है। श्रील लोचनदास ठाकुरने गाया है—

सौरभेर आशे, पलाश शुँकिलि (मन),
नाशाते पशिल कीट।
इक्षुदण्ड भावि', काठ चुषिलि (मन),
केमने पाइबि मिठ॥
हार बलिया, गलाय परिलि (मन),
शमन-किङ्कर साप।
शीतल बलिया, आगुन पोहालि (मन),
पाइलि वजर ताप॥
संसार भजिलि, श्रीगौराङ्ग भूलिलि,
ना सुनिलि साधुर कथा।
इह परकाल, दुःकाल खोयालि (मन),
खाइलि आपन माथा॥

[अरे मन! सुगन्ध प्राप्तिकी आशासे तूने कीटयुक्त पलास पुष्पको सूँघा, जिसके फलस्वरूप वे कीट तेरी नाकमें घुस गये तथा ईख जानकर तूने एक सूखी-सी लकड़ीको चूसा, तू स्वयं विचार कर कि तुझे सुमिष्ट रस कैसे मिलेगा? यमदूतके दास रूपी सर्पोंको (मृत्युको) सुन्दर हार समझकर अपने गलेमें लपेट लिया, दहकती हुई आगको शीतल जानकर तू उसमें प्रवेश कर गया और असहनीय तापके कष्टसे बिल-बिलाने लगा। अरे मन! तूने जीवनमें कभी साधुकी बात तो मानी नहीं और श्रीगौरसुन्दरको भूलकर संसारका ही भजन किया। इस प्रकार तूने अपना यह लोक और परलोक दोनोंको ही नष्ट कर दिया।]

कर्मद्वारा प्राप्त सभी वस्तुएँ मायिक हैं, इसलिए वे परिवर्तनशील हैं। उनमें आसक्ति और अनुराग स्थापन करना दुःखका कारण है। कर्मचक्रमें भ्रमण करते-करते जीव जब—

नित्यार्त्तिदेन वित्तेन दुर्ल्लभेनात्म-मृत्युना।
गृहापत्याप्तपशुभिः का प्रीतिः साधितैश्चलैः॥

(श्रीमद्भा. ११/३/१९)

[अर्थात्—नित्यकाल दुःखप्रद, अत्यन्त परिश्रम द्वारा लभ्य, आत्ममृत्युजनक इस वित्त द्वारा गृह, पुत्र, स्वजन, पशु आदि जिन सभी अनित्य वस्तुओंका संग्रह किया जाता है, उनके द्वारा मानवको थोड़ा-सा भी सुख प्राप्त नहीं होता है]—इस भागवतीय श्लोकको यथार्थ रूपसे समझ लेता है, तभी उसे वास्तविक सद्गुरुके पदाश्रयकी योग्यता प्राप्त होती है। तभी वह "*एवं लोकं परं विद्यान्नश्वरं कर्मनिर्मितम्*" वाक्यका तात्पर्य समझ कर—

तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेयः उत्तमम्।
शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम्॥

(श्रीमद्भा. ११/३/२१)

—इस भागवतीय निर्देश पालन करनेके लिए सक्षम होता है। अर्थात् शब्द-ब्रह्म और पर-ब्रह्ममें निष्णात (पारङ्गत) मायिक आसक्तिसे रहित गुरुदेवके चरणकमलोंमें शाश्वत कल्याणको जाननेके लिए शरण लेता है। ब्रह्मसूत्रमें या वेदान्त-दर्शनमें भी चरम कल्याणके जिज्ञासु और अधिकारीका निर्णय करने जाकर यही विचार सबसे पहले कीर्तित हुआ है। यथा—*"अथातो ब्रह्मजिज्ञासा"*। 'अथ' शब्दका अर्थ 'अनन्तर' अर्थात् कर्मके द्वारा यथार्थ मङ्गल या शान्ति प्राप्त करना सम्भव नहीं है—ऐसा विशेष ज्ञान होनेके बाद ब्रह्म-वस्तु या नित्य-वस्तुके अनुशीलनमें जीवकी प्रवृत्ति होती है—

तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्।
समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्॥

(मुण्डक १/२/१२)

जबतक जीवको ऐसा अधिकार प्राप्त नहीं होता, तबतक उसके लिए यथार्थ गुरु-पदाश्रय असम्भव है। गुरुदेवकी कृपासे मैं कन्याके दायित्वसे मुक्त हो जाऊँगा, मैं रोगमुक्त हो जाऊँगा, मुकदमा जीत जाऊँगा, मुझे अर्थका अभाव नहीं रहेगा, मेरे संसारमें सुख आ जायेगा—इत्यादि चिन्ताओंसे युक्त व्यक्ति गुरु-पदाश्रयका वास्तविक फल प्राप्त करनेकी योग्यता अर्जन करनेमें असमर्थ है। यद्यपि श्रीगुरुदेव इन समस्त अभीष्ट वस्तुओंको प्रदान करनेमें सक्षम हैं, तथापि शिष्यके कल्याणके लिए वे उसको इस विषयमें प्रश्रय न देकर "*सन्त एवास्य छिन्दन्ति मनोव्यासङ्गम् उक्तिभिः*"—वाक्यके आचरण-कर्त्ता-स्वरूपमें उसकी विषय-वासनारूपी आसक्ति-ग्रन्थियोंको शास्त्र-वाक्योंकी कुल्हाड़ीके द्वारा छेदनकर उसको निर्मल करके अपने श्रीचरणकमलोंमें स्थान देते हैं। कोई-कोई प्रचुर सुकृतिवान् व्यक्ति इस प्रकारकी चित्तवृत्तिसे युक्त होनेपर भी सद्गुरुकी कृपा प्राप्त कर सकते हैं, परन्तु इस प्रकारके सुकृतिवान् व्यक्ति बहुत विरले हैं। साधारणतः लोग अपनी-अपनी रुचिके अनुसार कामना पूर्ति करनेवाले कर्मी, ज्ञानी या योगी आदि व्यक्तियोंको गुरुपदमें वरणकर (स्वीकारकर) यथार्थ गुरु-पदाश्रयसे वञ्चित हो जाते हैं।

असद् वस्तुमें आसक्तचित्त व्यक्तिगण कहते रहते हैं—"जगत्में क्या सद्गुरु हैं? सद्गुरु अभी और नहीं मिलते।" उनकी यह बात किसी भी प्रकारसे समर्थनयोग्य नहीं है, क्योंकि इस दुःखमय संसारमें जीवोंको सदैव माया द्वारा त्रितापोंका भोग करवाना भगवान्का उद्देश्य नहीं है। परन्तु स्नेहपूर्वक शासन कर उनको अपने श्रीचरणकमलोंमें आकर्षित करना ही उनका उद्देश्य है। इसलिए वे सब समयके लिए ही अपने जनोंको इस जगतमें वर्तमान (प्रकटित) रखते हैं। ऐसा नहीं होनेपर जीवोंके प्रति उनकी निष्ठुरताका परिचय प्राप्त होता है। परन्तु हम असत्ग्राही होनेके कारण सत् वस्तुके प्रति विरुद्ध स्वभावयुक्त हैं, इसलिए सदाश्रय न कर असदाश्रयमें रुचि रखते हैं। किन्तु सद्गुरु-पदाश्रयके बिना नित्य पराशान्ति प्राप्त करनेका अन्य कोई उपाय नहीं है—यही वेद, वेदान्त, उपनिषद, पुराण आदिका सर्वतोमुखी (सार) अभिमत है।

[श्रीगौड़ीय-पत्रिकासे अनुदित]

श्रीव्यास-पूजाका यथार्थ तात्पर्य

श्रीव्यास-पूर्णिमा और श्रील सनातन गोस्वामीके तिरोभावके उपलक्ष्यमें

ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीकी हरिकथाका सार

(दिनांक—१६ जुलाई, २००८; स्थानः श्रीकेशवजी गौडीय मठ

मथुरा; समयः सायं ६-०० बजे)

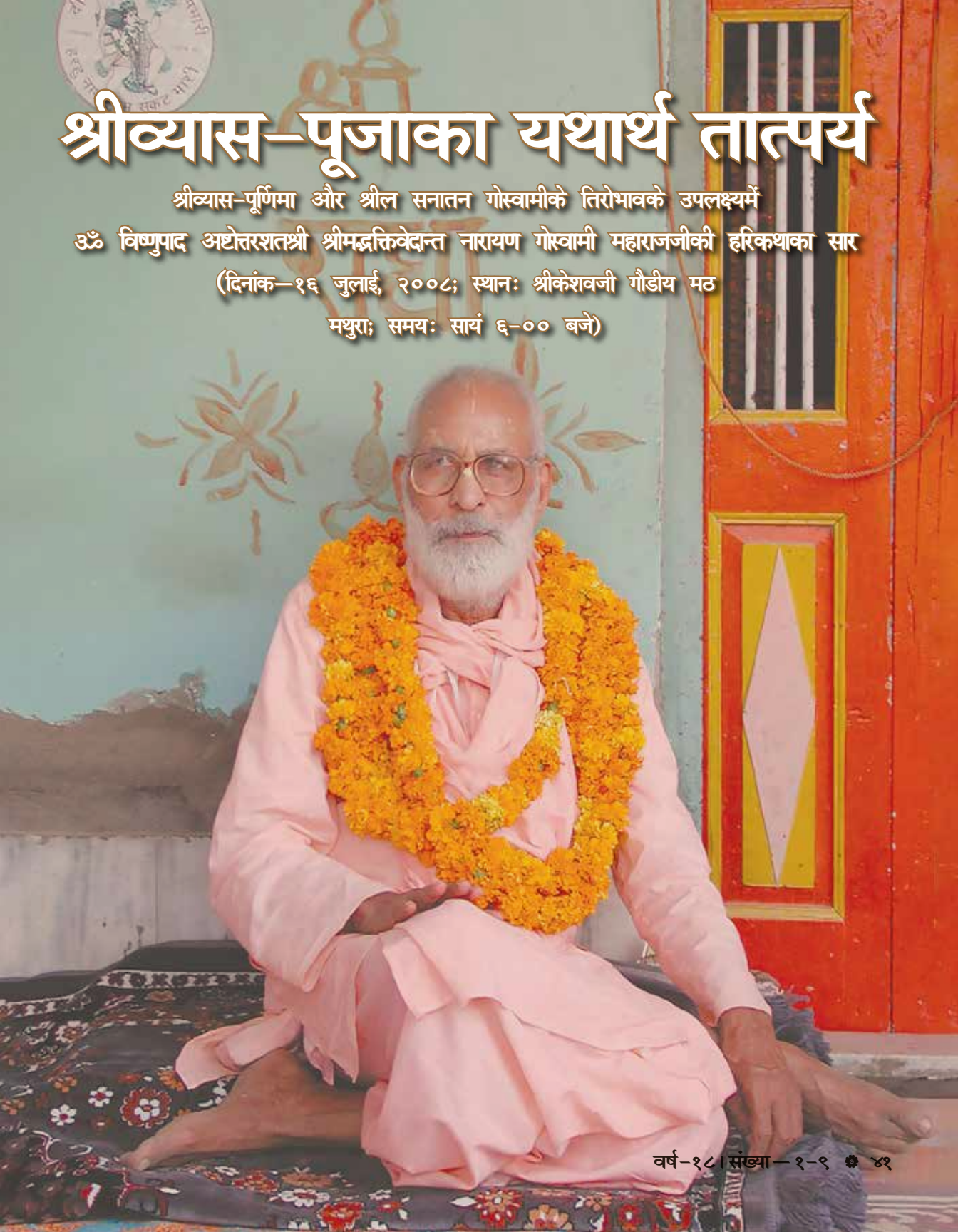

श्रीगुरुके चरणोंमें आत्मसमर्पण ही वास्तविक व्यासपूजा

आषाढ़ मासकी पूर्णिमाके दिनमें श्रीनारायणके अवतार श्रीव्यासदेवजीका जन्म हुआ था। भारतवर्षमें इस तिथिको श्रीव्यासपूजा अथवा गुरुपूजाके रूपमें आदर-सम्मान सहित अनुष्ठित किया जाता है। इस दिन सभी लोग अपने-अपने गुरुओंकी पूजा करते हैं। किन्तु हमें यह अवश्य जानना होगा कि 'व्यासपूजा'का तात्पर्य क्या है? केवल गुरुके चरणोंमें कुछ फल-फूल दे देना, उनको कुछ धन दे देना, कुछ मिठाई-वस्त्र दे देना, गलेमें माला पहना देना, इत्यादि केवल यही व्यासपूजा नहीं है। सब प्रकारसे श्रीगुरुके चरणोंमें आत्मसमर्पण कर, गुरु क्या चाहते हैं, उसको पूर्ण करना ही वास्तविक व्यासपूजा है। अपनी स्वतंत्रताको श्रीगुरुके चरणोंमें सम्पूर्णरूपसे समर्पण कर देना अर्थात् मेरा जो कुछ है, आजसे मैं अपना सर्वस्व श्रीगुरुके चरणोंमें समर्पण कर रहा हूँ। श्रीचैतन्य महाप्रभुने दीक्षाके समय श्रीईश्वरपुरीपादसे कहा था—

एई आमि देह समर्पिलाम तोमारे॥
कृष्णपादपद्मेर अमृतरस पान।
आमारे कराओ तुमि—एइ चाहि दान॥

(श्रीचैतन्य-भागवत आदि-खण्ड १७/५४-५५)

[अर्थात् हे गुरुदेव (ईश्वरपुरीपादजी)! मैंने अपनी देह और सर्वस्व आपके चरणोंमें समर्पण कर दिया। आप जो कुछ कहेंगे, मैं उसका पालन करूँगा। मैं आपसे एकमात्र यही कृपारूपी दान चाहता हूँ कि आप मुझे श्रीकृष्णके चरणकमलोंका अमृतरस पान कराएँ।]

यदि किसी व्यक्तिका ऐसा आत्मसमर्पण हो जाय, तो वह पुष्प आदि द्वारा गुरुकी पूजा करें या न करें, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। पुष्प आदिसे उनकी पूजा करना, यह तो एक प्रतीक मात्र है—साधारण लोगोंको शिक्षा देनेके लिए। किन्तु जबतक यह भाव नहीं होगा कि मैंने अपना सबकुछ श्रीगुरुके चरणोंमें समर्पण कर दिया, तबतक यथार्थरूपमें गुरुपूजा भी नहीं होगी। श्रील सनातन गोस्वामी श्रीमन्महाप्रभुकी इच्छाको पूर्ण करनेके लिए घर-बारकी तो बात ही क्या, प्रधानमन्त्रीका पद, विपुल धन-ऐश्वर्य, नौकर-चाकर आदि सभीको परित्यागकर खाली हाथ श्रीमन्महाप्रभुके चरणोंमें पहुँचे और सम्पूर्ण रूपसे आत्मसमर्पण किया। अर्थात् अब मैं आपका हो गया—यही यथार्थ व्यासपूजा है।

हमारी परम अभीष्ट वस्तु

जगतमें हमारी वास्तविक परम अभीष्ट वस्तु क्या है? श्रीश्रीराधाकृष्ण युगलकी सेवा—हमारे जीवनका एकमात्र यही उद्देश्य है। यह महादुर्लभ है, किन्तु यदि सद्गुरु मिल जायँ, तो महादुर्लभ होनेपर भी यह अभीष्ट सुलभ हो जाता है। अर्थात् यदि हम सद्गुरुके चरणोंमें आत्मसमर्पण कर दें और श्रीश्रीराधाकृष्णकी सेवाके विषयमें शिक्षित होकर आचरण करें, तब बहुत शीघ्र ही हम लोग श्रीश्रीराधाकृष्णकी सेवा प्राप्त कर सकते हैं। इसलिए यद्यपि श्रीकृष्ण ही भक्तिके मूल हैं, किन्तु उन्हींका प्रकाश श्रीगुरु हैं। जबतक श्रीगुरुकी निष्कपट-सेवा नहीं होगी, तबतक लाख चेष्टा करनेपर भी हमें किसी भी स्थितिमें भक्ति प्राप्त नहीं होगी। यदि भगवान् भी कृपा करेंगे, तब भी प्राप्त नहीं होगी। श्रीगुरुको भगवान् ही समझो।

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥

(श्वेताश्वतर उपनिषद् ६/२६)

[अर्थात् जिनकी श्रीभगवान्में पराभक्ति है और श्रीभगवान्के समान ही श्रीगुरुदेवके प्रति भी शुद्धभक्ति है, उसी महात्माके हृदयमें श्रुतियोंके सभी मर्मार्थ प्रकाशित होते हैं।]

व्यासपूजा या गुरुपूजाका प्रचलन

भारतवर्षके जितने भी लोग हैं, सभी श्रीव्यासदेवके द्वारा उपकृत हैं। श्रीव्यासजीने सर्वप्रथम वेदोंका विभाग किया, फिर वेदान्तसूत्ररूप उसका सार सङ्कलन किया, पुराणोंकी रचना की, महाभारतकी रचना की, तथापि उनका मन प्रसन्न नहीं हुआ। तब श्रीनारदजीकी कृपासे उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंके वर्णन रूपी भागवत् पुराणकी रचना की और उसीको अपने पुत्र श्रीशुकदेव गोस्वामीको सुनाया। श्रीशुकदेव गोस्वामीने अपने गुरुकी—पिताजीकी जो पूजा की, वही प्रथम व्यासपूजा है। पुनः श्रीसूतगोस्वामीने अपने गुरु—श्रीशुकदेव गोस्वामीकी जो पूजा—वन्दना की, वह दूसरी व्यासपूजा है। वहींसे व्यासपूजाकी परम्परा आरम्भ हुई है। अतः यह व्यासपूजा या गुरुपूजा अनादिकालसे प्रचलित है। श्रीकृष्णकी पूजा या सेवासे भी पहले यह गुरुपूजा अथवा गुरुसेवा है।

हमारा परम सौभाग्य

हमलोगोंका परम सौभाग्य है कि हम उसी परम्परामें हैं, जिस परम्परामें श्रीचैतन्य महाप्रभु, श्रीस्वरूप दामोदर, श्रीरायरामानन्द, श्रील रूप गोस्वामी, श्रील सनातन गोस्वामी, श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी, श्रील नरोत्तम ठाकुर, श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर, श्रीजगन्नाथदास बाबाजी महाराज, श्रील भक्तिविनोद ठाकुर, श्रील प्रभुपाद और हमारे गुरुदेव—श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज इत्यादि हैं। इस परम्पराके अतिरिक्त अन्य किसी भी परम्परामें श्रीश्रीराधाकृष्णकी, विशेष करके श्रीराधाजीकी [पाल्य]दासीके रूपमें सेवाकी कोई परिपाटी नहीं है। इसी विशेष दानको अर्पण करनेके लिए श्रीराधा-भाव और उनकी कान्तिसे युक्त श्रीकृष्णस्वरूप श्रीशचीनन्दन गौरहरि—श्रीचैतन्य महाप्रभु अवतरित हुए। श्रीमन् महाप्रभुजीने इस विचारका स्वयं प्रचार न करके श्रील रूप गोस्वामीके हृदयमें प्रेरणा दे करके इसको जगतमें प्रकट कराया। श्रीरूपमञ्जरीके भावोंके आनुगत्यमें श्रीयुगलकिशोरकी सेवा करना—इसी भावको देनेके लिए श्रीचैतन्यमहाप्रभु आये थे। और परम सौभाग्यवशतः हम उसी परम्परामें हैं। किन्तु हमें निष्कपटरूपमें श्रीरूप गोस्वामीके विचारोंको ग्रहण करनेकी चेष्टा करनी होगी।

'गौड़ीय मठ' का उद्देश्य

बहुतसे लोग साधन-भजन करने आते तो हैं, किन्तु मायाका जो स्त्रीरूप है—उसमें आसक्त हो करके उसमें ही रम जाते हैं और नरकगति प्राप्त करते हैं। इस विषयमें हमें सावधान रहना होगा। 'गौड़ीय मठ' इसके लिए अखाड़ा नहीं है। 'गौड़ीय मठ' किसलिए है? शुद्धरूपमें श्रील रूप गोस्वामीकी विचारधाराका पालन करनेके लिए। केवलमात्र श्रीमन्महाप्रभु और श्रीरूप गोस्वामीकी शिक्षाओंको पालन करनेके लिए, उन शिक्षाओंसे अवगत होकर वैसा ही भजन करनेके लिए ही 'गौड़ीय मठ' है। यदि कोई इस प्रकार विधि-नियमोंका पालन करते हुए भजन करें, तभी मठमें रहें, अन्यथा असत् विचार परायण लोगोंके लिए 'गौड़ीय मठ' नहीं है। सद्गुरुके आश्रयमें रहकर उक्त प्रकारसे जीवन-यापन करनेसे ही वास्तविक व्यासपूजा होगी। ऐसे आचरणके द्वारा ही श्रील रूप गोस्वामीकी पूजा और हमारी गुरु-परम्पराकी पूजा भी होगी। आपलोग इसको अच्छी प्रकारसे समझें कि मठ-मन्दिर विवाह-शादीके महोत्सवके लिए नहीं है। यदि शुद्धरूपमें भजन करना है, तो गुरु-वैष्णवोंका शासन स्वीकार करके भी मठमें रहकर उनकी सेवा

करो। जिस प्रकार श्रीनारदजीका अभिशाप नल-कूबरके लिए परम मङ्गलदायक हुआ, उसी प्रकार गुरु-वैष्णवोंका शासन भी मङ्गलदायक होता है। यदि कोई इसको सहन करते हुए मठमें रहता है, तभी वह श्रीगुरु-वैष्णवोंकी कृपाको समझ सकता है।

श्रील सनातन गोस्वामी—हमारे लिए श्रीव्यासके अवतार

इसी पूर्णिमाके दिन श्रील सनातन गोस्वामीका भी तिरोभाव महोत्सव है। वे भी एक प्रकारसे हमारे लिए श्रीव्यासके ही अवतार हैं, क्योंकि उन्होंने श्रीमद्भागवतपर टीका की है और श्रीबृहद्भागवतामृत जैसा ग्रन्थरत्न प्रकाशित किया है। यह श्रीबृहद्भागवतामृत ग्रन्थ ही श्रील रूप गोस्वामी, श्रील रघुनाथदास गोस्वामी आदिके ग्रन्थोंका मूल आधार है, अर्थात् इसीके आधारपर गोस्वामियोंके अन्य सब ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। इसलिए श्रील सनातन गोस्वामी—श्रील रूप गोस्वामीके भी गुरु हैं। दूसरी ओर श्रील सनातन गोस्वामीने श्रील रूप गोस्वामीको ही अपना गुरु माना है। यही गुरु-तत्त्वका विचार है। "मैं गुरु हो गया"—यदि किसीमें यह अभिमान है, तो वह कदापि गुरु नहीं है। गुरु किसीको शिष्य नहीं बनाते, वे सभीको गुरु बना देते हैं। यथार्थ गुरु—गुरु बननेकी चेष्टा भी नहीं करते।

भारत-भूमिते हैल मनुष्य-जन्म जार।
जन्म सार्थक करि' कर पर-उपकार॥

(श्रीचैतन्यचरितामृत आदि लीला ९/४१)

[अर्थात् पवित्र भारत भूमिमें मनुष्य योनिमें जिनका जन्म हुआ है, वे अपना जन्म सार्थककर परोपकार करें अर्थात् श्रीगुरुपदाश्रयकर शुद्धभक्तिका साधन करें तथा दूसरोंसे करायें, यही श्रेष्ठ उपकार है।]

प्रत्येक साधकका कर्त्तव्य

श्रीमन्महाप्रभुकी धारामें आनेवाले प्रत्येक साधकको चाहिए कि पहले स्वयं श्रील रूप गोस्वामीके विचार, गुरु-परम्पराके विचारसे अवगत हों और फिर दूसरोंको भी बतलाएँ। आचार और प्रचार दोनों होना चाहिए। इसके लिए गृहस्थ लोग जितना समय गृहस्थीमें लगाते हैं, उसका एक हजार गुणा अधिक परिश्रम ब्रह्मचारी, संन्यासियोंको करना होगा, दिन-रातमें एक क्षण भी इधर-उधर नहीं करना होगा। सब समय कृष्णसेवामें चित्तको लगाकर रहना होगा।

विशेष करके हमारे इस सम्प्रदायमें श्रील रूप गोस्वामीकी क्या देन है? श्रीचैतन्य महाप्रभु किसलिए इस जगतमें आये? इसको अवश्य ही जानना होगा। संक्षेपमें श्रील रूप गोस्वामीके आनुगत्यमें श्रीमती राधिकाजीकी किङ्करी होना, श्रील रूप गोस्वामीके चरणोंकी धूलि होना ही हमारे जीवनका सर्वप्रधान लक्ष्य और गति है। हमारे समस्त गुरुवर्गकी एकमात्र यही अभिलाषा है। आपलोगोंके हृदयमें भी यह विचार आये, आपका जीवन सफल हो। जिस उद्देश्यसे घर-बार छोड़ा है अथवा घर-बारमें रहते हुए भी मठमें आते हैं, आप लोग इन सब उपदेशों और विचारोंसे अवगत होकर श्रीव्यासदेवजीकी पूजा कीजिए। श्रील रूप गोस्वामी और गुरुपादपद्मको प्रसन्न कीजिए। उनके आनुगत्यमें मूल व्यास श्रीकृष्ण या श्रीचैतन्य महाप्रभुको प्रसन्न कीजिए। यही व्यासपूजाका यथार्थ तात्पर्य है।

श्रीसारस्वत-गौड़ीय-वैष्णव एवं सतीर्थजनों द्वारा प्रदत्त पुष्पाञ्जलि

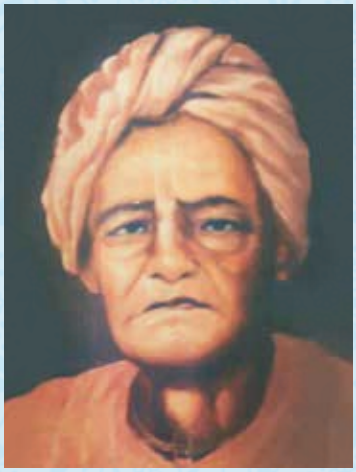

श्रीमत् तुर्याश्रमी महाराजजीका आशीर्वाद-पत्र

[यह कविता श्रीगौड़ीय-पत्रिकाके सप्तम वर्ष, अष्टम संख्या (१८-१०-१९५५)में प्रकाशित हुई थी। आशीर्वादक श्रीश्रीमद्भक्तिसम्बन्ध तुर्याश्रमी गोस्वामी महाराज श्रीश्रील प्रभुपादके चरणाश्रित थे तथा श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजके चाचा परमपूजनीय त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिकुशल नारसिंह गोस्वामी महाराजके बाल्यबन्धु थे।]

श्रीपाद वामन महाराज समीपेषु—

स्नेह, दैन्य, भक्तिपूर्ण प्रीति-पत्र तव।
पड़िया पाषाण-प्राण हैल किछु द्रव॥

सहज सरल मृदु मञ्जुवाणी सब।
वैष्णवे वसति करे मानद स्वभाव॥

तोमार हृदयखानि जानि पत्र-द्वारे।
पत्रखानि सेइ हेतु पड़ि बारे बारे॥

आपके स्नेह, दैन्य और भक्तिसे पूर्ण प्रीति-पत्रको पढ़कर मेरा पाषाण-हृदय भी कुछ द्रवीभूत हुआ है। वैष्णवोंमें सहजता, सरलता, मृदुता, मधुर-भाष्यता, मानद-स्वभाव आदि गुण वास करते हैं। इस प्रकार आपके पत्रके माध्यमसे आपके हृदयको जानकर मैं उस पत्रको बार-बार पढ़ता हूँ।

मित-वाक्ये सार-कथा वर्णिते समर्थ।
सिद्धान्त-सम्मत सब, नाहि किछु व्यर्थ॥

वाग्मीता बलि तारे बले बुधगण।
तोमार वाणीते आछे से सब लक्षण॥

वयसे नवीन तुमि बुद्धिते प्रवीण।
सेवाते सोत्साही सदा अभिमान-हीन॥

आप सिद्धान्त-सम्मत, सार-कथाओंको अल्प वाक्योंमें वर्णन करनेमें समर्थ हैं, जिनमें कुछ भी व्यर्थ नहीं है। पण्डितगण जिसे वाग्मीता कहते हैं, वे सब लक्षण आपकी वाणीमें विद्यमान हैं। आपकी वयस नवीन (युवा आयुके) होनेपर भी आपकी बुद्धि प्रवीण है। आप सेवामें सद्-उत्साही तथा सदैव अभिमान रहित हैं।

दारुण देह-पीड़ा तोमाय ना कैल क्लिष्ट।
अम्लान-वदने सहि सेविले जे इष्ट॥

सेवकेर सेवा-व्रत, देह-मनोधर्म।
ढलाइते नाहि पारे शिखाले से मर्म॥

कृष्णेर जतेक गुण वैष्णवे संचारे।
लेखक-लेखनी ताहा वर्णिते ना पारे॥

असहनीय शारीरिक कष्टसे भी विचलित न होकर अम्लान (मलिनता रहित) मुखसे सब कुछ सहते हुए

आपने जो अपने इष्टकी सेवा की*, इसके द्वारा देह और मनके धर्म सेवकके सेवा-व्रतको विचलित नहीं कर सकते, इस सारमर्मको आपने अपने आचरणसे सिखाया है। वैष्णवोंमें कृष्णके सभी गुण सञ्चारित होते हैं, उन गुणोंको क्या लेखककी लेखनी वर्णन कर सकती है?

गौर-वाणी प्रचारिते मृदङ्ग मुख्याङ्ग।
विष्णु-वार्त्तावह प्रेस बृहत्-मृदङ्ग॥

जीवन्त मृदङ्ग स्वरूप त्रिदण्डि-यति।
एइ कथा शिखाइल प्रभु सरस्वती॥

(सेइ) जीवन्त मृदङ्गेर मूर्त्ति त्रिदण्डीर वेशे।
बृहद् मृदङ्ग मुद्रा यन्त्र अनायासे॥

गौर-वाणीके प्रचारमें मृदङ्ग मुख्य अङ्ग है। वैकुण्ठवार्ताका वहनकारी (प्रचारक)—प्रेस बृहत्-मृदङ्ग है। त्रिदण्डि संन्यासी जीवन्त मृदङ्ग स्वरूप होते हैं—श्रील सरस्वती प्रभुपादकी यही शिक्षा है। आप त्रिदण्डीके वेशमें मूर्त्तिमान जीवन्त मृदङ्ग हैं और बृहद्-मृदङ्गरूपी मुद्रायन्त्रका अनायास सञ्चालन करते हैं।

शब्द-ब्रह्मे रेखा बन्धे (आर) कीर्त्तन प्रबन्धे।
दुइरूपे कृष्ण-कथा जीवेर कर्णरन्ध्रे॥

प्रदानिते पत्रिका पाठाओ द्वारे द्वारे।
सर्व श्रेष्ठ सेवा कार्य जीवेर उद्धारे॥

परोपकारेर एइ महान बारता।
महाप्रभुर वाणी जाहा भोग-मोक्ष-त्राता॥

शब्द-ब्रह्ममय लेखनी एवं कीर्तन और प्रबन्धोंके माध्यमसे कृष्ण-कथाको जीवोंके कर्ण-रन्ध्रों(कानों)में प्रदान करनेके लिए आप पत्रिका (श्रीगौड़ीय-पत्रिका) को द्वार-द्वारपर भेजते हैं। जीवोंके उद्धारके लिए यह सर्वश्रेष्ठ सेवा-कार्य है। भोग और मोक्षसे त्राण करनेवाली श्रीमन्महाप्रभुकी यह वाणी परोपकारकी महान वार्ता है।

नारसिंह महाराज संगामृत हैते।
तोमादेर प्रति स्नेह छिल परोक्षेते॥

(एबे) तोमादेर भक्ति देखि ताहा पुष्ट हइल।
निखुँत आदर्शे ताहा थाके जेन अटल॥

सेबिओ सेइ महाराजे सतत सन्तोषे।
ताँहार सन्तोषे सिद्धि लभिबे विशेषे॥

चैतन्य-मठेर वार्त्ता शुनिनु ताँर मुखे।
दण्डवन्नति आमार जानाइओ ताँके॥

श्रीपाद नारसिंह महाराजके सङ्गरूपी अमृतके कारण आप लोगोंके प्रति परोक्षरूपसे मेरा स्नेह रहा है। अभी आपकी भक्ति देखकर वह स्नेह और बढ़ा है। निष्कलंक आदर्शके प्रति यह स्नेह अटल रहे। प्रसन्नतापूर्वक उन महाराजकी सदैव सेवाकर उनको सन्तुष्ट करनेसे विशेष सिद्धि प्राप्त होगी। उनके मुखसे मैंने श्रीचैतन्य मठके विषयमें सुना। उन्हें मेरा दण्डवत् प्रणाम कहना।

समितिर सर्वमय सेवाध्यक्ष जिनि।
मादृश वराके ताँर कृपा-दृष्टि आनि॥

प्रणति ज्ञापन करि' जानाइओ ताँहाय।
केशवे अचला भक्ति जेन मोर हय॥

सेवावीर युधिष्ठिर श्रीमथुरा धामे।
स्थापिलेन 'केशवजी मठ' केशव-जन्मस्थाने॥

ताँर कृपादेश तुमि पालिछ यतने।
देखिया शुनिया सुख पाइनु बड़ मने॥

समितिके सर्वमय सेवाध्यक्ष (आचार्यकेशरी श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज) की कृपा-दृष्टिको मेरे जैसे वराक (अज्ञ) पर आकर्षित करना। मैं उनके प्रति प्रणाम ज्ञापन कर रहा हूँ—उन्हें सूचित करना, जिससे [उनकी कृपासे] श्रीकेशवमें मेरी

---

* १०३° बुखारमें भी वैष्णवोंके लिए रसोई बनाना और उन्हें परोसना।

अचला भक्ति हो। सेवावीर युधिष्ठिरके समान गुणोंसे युक्त होनेके कारण उन्होंने श्रीमथुरा धाममें अर्थात् केशव-जन्मस्थानमें 'श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ' की स्थापना की है। उनका कृपादेश आप यत्नपूर्वक पालन कर रहे हैं, यह देखकर और सुनकर मुझे बड़ा सुख प्राप्त हुआ।

नीरव सेवा तोमार प्रतिष्ठाशा-हीन।
प्रज्ञावान् संन्यासी तुमि, वयसे नवीन॥

वेदान्तेर प्रतिपाद्य विष्णु भगवान्।
'बलि'रे छलिते प्रभु हइल वामन॥

ताँर पदे प्रतिपदे, बाड़े यदि रति।
तबे त सकल सेवार हैल सद्गति॥

आपकी नीरव-सेवा (चुपचाप की गयी सेवा) प्रतिष्ठाकी आशासे रहित है। आप आयुमें नवीन होनेपर भी प्रज्ञावान् हैं। वेदान्तके प्रतिपाद्य भगवान् श्रीविष्णु (श्रीकृष्ण) बलि महाराजको छलते हुए श्रीवामनदेवके रूपमें परिचित हुए। यदि उनके चरणकमलोंमें प्रति पदपर रति बढ़ती है, तभी तो समस्त सेवाओंकी सद्गति होती है।

वैष्णवेर गुण गाने घुचे सर्वपाप।
सेइ आशे मुइ किछु करिनु प्रलाप॥

पत्रखानि मुद्रित हले हबे मने सुख।
सम्पादक सम्पादने ना हन विमुख॥

वैष्णवोंका गुणगान करनेसे समस्त पाप दूर हो जाते हैं, इस आशासे मैंने कुछ प्रलाप किया है। यद्यपि यह पत्र (श्रीगौड़ीय-पत्रिकामें) प्रकाशित होता है, तो मैं प्रसन्न होऊँगा, तथापि सम्पादक इसके सम्पादनसे विमुख न हों।

[श्रीगौड़ीय-पत्रिकासे अनुदित]

प्रपूज्यचरण अष्टोत्तरशतश्री अतिमर्त्य

जन्मकाल एवं मठवास

मैंने पूज्यपाद वामन महाराजजीकी माता परम साध्वी और विदूषी श्रीमती भगवती देवीके मुखसे बहुत दिन पहले सुना है कि उनका जन्म २३ दिसम्बर १९२१ई. पौष मासमें कृष्णपक्षकी नवमी तिथिको पूर्व बङ्गालके खुलना जिलेके पीलजङ्ग गाँवमें (वर्तमानमें बङ्गलादेशमें) हुआ था। उनके बाल्यकालका नाम 'सन्तोष' था। उनके पिताजीका नाम श्रीसतीशचन्द्र

श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराजके चरित्रकी कतिपय स्मृतियाँ

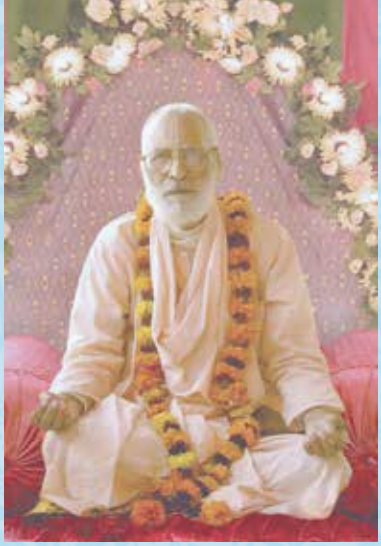

—श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज

(वर्ष २००५ई॰ में लिखित)

था। उन्होंने हमारे परमाराध्यतम श्रीगुरुपादपद्म ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजसे दीक्षा ग्रहण की थी तथा दीक्षाके बाद उनका नाम हुआ श्रीसर्वेश्वर दासाधिकारी। उनकी माता श्रीभगवती देवी विश्व-विख्यात जगद्गुरु नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादकी शिष्या थीं। १९३०ई. में जब सन्तोष प्राय नौ वर्षके थे, वे अपनी माताजीके साथ मायापुरके श्रीचैतन्य मठमें श्रीगौरपूर्णिमा महोत्सवके लिए आये थे। उस समय उनकी माताजीने उन्हें श्रील प्रभुपादके चरणोंमें अर्पण कर दिया तथा प्रभुपादने उनको अपने अन्तरङ्ग परिकर मेरे गुरुदेव ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी देखरेखमें सौंप दिया था। उस समय श्रीगुरुदेवका नाम श्रीविनोदबिहारी ब्रह्मचारी, कृतिरत्न था। हमारे श्रीगुरुदेवने सन्तोषको मायापुर स्थित श्रीभक्तिविनोद इंस्टिट्यूटमें पढ़नेके लिए भर्ती करा दिया। उसी समय [१९३६ ई॰ में] श्रील सरस्वती ठाकुर प्रभुपादने उनको हरिनाम प्रदान किया था।

बाल्यकालसे मेधावी और वैष्णव-सेवाकी वृत्ति

सन्तोष बड़े ही मेधावी, तीक्ष्ण-बुद्धियुक्त, मधुर भाषी और श्रुतिधर थे। एक बार कोई श्लोक या कोई भी पाठ पढ़ या सुन लेने पर उसको सदाके लिए ही मुखस्थ कर लेते थे। श्रील गुरुदेवने उनको आदेश दिया था कि एक श्लोक याद करने पर उन्हें एक लाँजेन्स मिलेगी। सन्तोष प्रतिदिन दस-बीस श्लोकोंको याद करके श्रीगुरुदेवको सुना देते और श्रीगुरुदेव उनको लॉजेन्स देते। अपनी कक्षामें भी वे सब समय प्रथम रहते थे तथा मठकी भी सेवा करते थे। वैष्णवोंके प्रसाद सेवनके लिए केलेके पत्ते लाते तथा धो कर उनको देते। नींबु, नमक और जलपान करनेके लिए ग्लासमें पानी इत्यादि प्रस्तुत करते और उनके प्रसाद पा लेनेके बाद उन पत्तोंको उठाकर फैंक देते और स्थानको साफ-सुथरा कर देते। वे प्रतिदिन नियमित रूपसे हरिनाम जप करते तथा अध्ययन भी करते थे। वे अस्मदीय श्रीगुरुदेव नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके साथ सब समय छायाकी भाँति रहते और उनकी सेवा करते थे।

दीक्षा-ग्रहण

श्रील प्रभुपादके अप्रकट लीलामें प्रवेश करनेके पश्चात् गौड़ीय मठमें कुछ कलह उपस्थित हुआ, जिसमें विरुद्ध पक्षने झूठ-मूठका मुकदमा कर परमाराध्यतम श्रील गुरुदेव और श्रील प्रभुपादके सभी प्राचीन और प्रवीण वैष्णवों, जैसे श्रील नरहरि सेवा-विग्रह प्रभु,

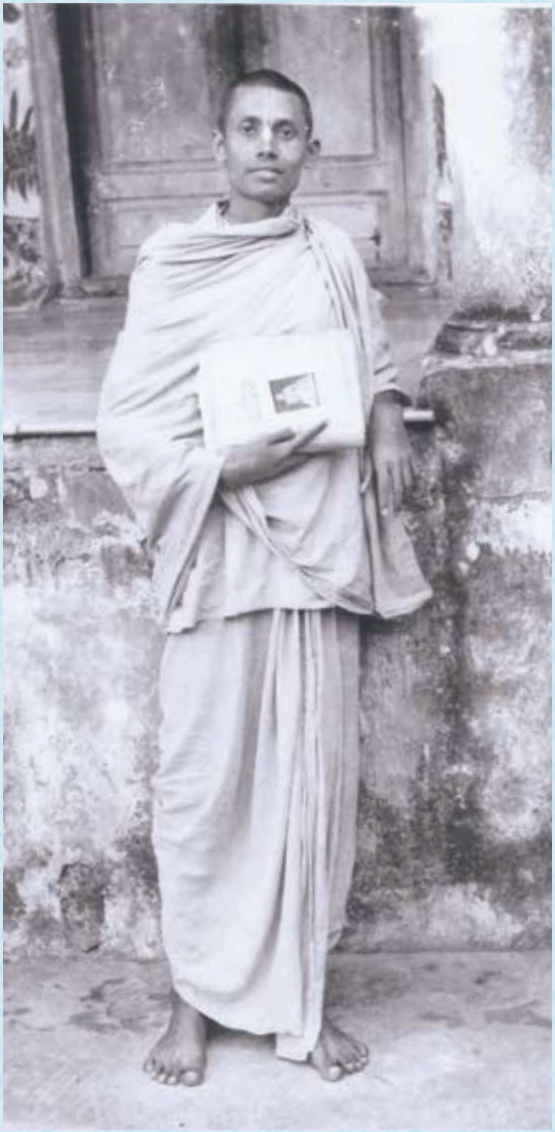

श्रीकृष्णदास बाबाजी महाराज, पूज्यपाद श्रीभक्तिकुशल नारसिंह महाराज, पूज्यपाद परमहंस महाराज, पूज्यपाद ऋषीकेश महाराज इत्यादि ४० वैष्णवोंको कारागारमें बन्द करवा दिया था। उस समय सन्तोष ही वकीलके पास केसकी फाइल ले करके जाते, कोर्टमें जाते तथा उन सब ४० वैष्णवोंके लिए रसोई बना करके कारागारमें भी ले जाते थे। उसी समय श्रील गुरुदेवने उनको दीक्षा-मन्त्र प्रदान करके 'श्रीसज्जनसेवक ब्रह्मचारी' नाम दिया। परन्तु उस समय उनका उपनयन संस्कार नहीं हो सका, वह कुछ समय बादमें हुआ। कुछ लोग कहते हैं कि श्रीसज्जनसेवक ब्रह्मचारीने (श्रीपाद वामन महाराजने) पूज्यपाद भक्तिविचार यायावर महाराजसे हरिनाम और दीक्षा ग्रहण की थी। किन्तु यथार्थमें उनको जगत्गुरु नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामीसे हरिनाम प्राप्त हुआ था और मेरे गुरुदेव श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजसे दीक्षा प्राप्त हुई थी। किन्तु उस समय श्रील गुरुदेवने संन्यास ग्रहण नहीं किया था और वे किसीको शिष्य नहीं करते थे, इसीलिए उन्होंने पूज्यपाद यायावर महाराजजीसे श्रीसज्जनसेवक ब्रह्मचारीका उपनयन संस्कार करवा दिया। किन्तु यथार्थमें श्रीसज्जनसेवक ब्रह्मचारी हमारे गुरुदेवके ही दीक्षा-शिष्य थे।

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिकी स्थापना एवं श्रील गुरु-महाराजके साथ प्रचार

श्रील प्रभुपादके अप्रकटकालके पश्चात् जब अस्मदीय गुरुदेव श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीने कलकत्ता बोसपाड़ा लेनमें श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिकी स्थापना की, उस समय श्रीसज्जनसेवक ब्रह्मचारी (पूज्यपाद वामन महाराजजी) वहाँ उपस्थित थे, उनके साथमें पूज्यपाद ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजजी भी वहाँ उपस्थित थे। यह घटना १९४०ई. की है। तत्पश्चात् १९४२-१९४३ई. के लगभग श्रीनवद्वीप धाममें श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठकी स्थापना हुई तथा वहाँ पर भी श्रीसज्जनसेवक ब्रह्मचारी गुरुदेवके साथ थे। वे श्रील गुरुदेवके लिए रन्धन और अन्यान्य सब प्रकारके सेवा-कार्य करते थे। उस समय श्रील गुरु-महाराजजी भगवती गङ्गाके दोनों तटोंपर बसे हुए शहरोंमें प्रचारके लिए

जाते और श्रीसज्जनसेवक ब्रह्मचारी भी उनके प्रधान सहायक और सेवकके रूपमें उनके साथ जाते थे।

वैष्णव-सेवाका आदर्श

एक समय श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति बोसपाड़ा लेनमें किसी उत्सवके समय बहुतसे वैष्णव लोग आये थे और कोई रसोईया नहीं था। श्रीसज्जनसेवक ब्रह्मचारीको उस समय १०३ डिगरी बुखार था। श्रील गुरु-महाराजजी उनके निकट उपस्थित हुए और उन्हें बोले—"अभी तुरन्त उठो और प्रसाद प्रस्तुत करो।" इस आज्ञाको सुनते ही १०३ डिगरी बुखारमें भी उन्होंने वैष्णवोंके लिये रन्धन किया और सबको प्रसाद परिवेशन किया। कुछ समय पश्चात् उनका बुखार भी उतर गया और वे अच्छे हो गये। इस प्रकारसे गुरुसेवाके लिए वे अपने प्राणोंकी भी चिन्ता नहीं करते थे।

मेरे प्रति स्नेह

लगभग १९४५ई. में श्रील गुरु-महाराजजीके आनुगत्यमें श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादके शिष्य श्रीमद्भागवतके प्रसिद्ध व्याख्याता श्रीनरोत्तमानन्द ब्रह्मचारी (पूज्यपाद श्रीभक्तिकमल मधुसूदन महाराज), श्रीभक्तिकुशल नारसिंह महाराज, पूज्यपाद राधानाथ वनचारी (पूज्यपाद त्रिविक्रम महाराज), प्रेमप्रयोजन ब्रह्मचारी, गोवर्द्धन ब्रह्मचारी आदि बहुतसे वैष्णव बिहारके साहिबगंज नामक स्थानमें प्रचार करनेके लिए गये और वहीं मुझसे उनकी भेंट हुई तथा मैं क्रमशः श्रीमन्महाप्रभुकी विचार-धाराके अनुसार भजन करने लगा। उस समयसे मैं श्रील गुरु-महाराजको पत्र लिखता था, पूज्यपाद श्रीसज्जनसेवक ब्रह्मचारी श्रील गुरुदेवकी ओरसे मुझको पत्र देते और मुझे 'तिवारीजी' कहकर सम्बोधन करते थे।

कुछ दिनोंके बाद ही १९४६ई. में एक दिन मैं घर-बार, परिवार और नौकरी, सब छोड़कर श्रीधाम-नवद्वीपमें पहुँचा। उस समय अर्द्धरात्रि थी तथा स्टेशनपर अन्धकार था। मैंने अपने आनेकी सूचना भी नहीं दी थी, किन्तु देखा कि लालटेन लेकर मुझको कोई 'तिवारीजी', 'तिवारीजी' कहकर पुकार रहा है। वे श्रीसज्जनसेवक ब्रह्मचारी थे। वे मुझे ही ढूँढ़ रहे थे। अपना नाम सुनकर मैं तुरन्त समझ गया कि ये ही श्रीसज्जनसेवक ब्रह्मचारी हैं। मैं जाकर उनसे मिला और उनके साथमें मठमें आ गया। मैंने उनसे पूछा कि मैंने तो आनेकी कोई सूचना नहीं दी, फिर आपने कैसे जान लिया कि मैं इसी ट्रेनसे यहाँ आ रहा हूँ? तब उन्होंने कहा कि श्रील गुरु-महाराजने बतलाया कि आज श्रीमन् नारायण तिवारी अभी इसी गाड़ीसे आयेगा, तुम जाओ और उसे ले आओ। उसी समयसे पूज्यपाद वामन महाराज (श्रीसज्जनसेवक ब्रह्मचारी) मुझे बहुत ही स्नेह करने लगे। मेरी जो कुछ भी आवश्यकता होती वे मेरे लिए व्यवस्था करते, मुझे वस्त्र इत्यादि देते और बहुत स्नेहसे पालन करते। मैं भी शिक्षा-गुरुके रूपमें उनका बहुत ही आदर करता था।

श्रीबृहद्-मृदङ्ग सेवा

श्रीगुरुदेवने श्रीगौड़ीय-पत्रिका और गौड़ीय ग्रन्थोंको प्रकाशित करनेके लिए कोलकाताके निकट चुँचुड़ा नामक स्थानमें श्रीउद्धारण गौड़ीय मठमें प्रेसकी स्थापना की और वहींसे श्रीगौड़ीय-पत्रिका और दूसरे गौड़ीय ग्रन्थोंका प्रकाशन आरम्भ किया। उस समय श्रीसज्जनसेवक ब्रह्मचारी वहाँके मठ रक्षक थे। यथार्थमें वही पत्रिकाके प्रबन्धोंका चयन करते, उनका प्रूफ-संशोधन करते और प्रकाशन सम्बन्धी सब प्रकारकी व्यवस्था करते थे।

एक समय प्रेसमें कार्य करते हुए उनकी अङ्गुली कट गयी और रक्तकी धारा बहने लगी। तब भी वे उसपर कपड़ा बाँधकर सेवा-कार्य करते रहे। उस समय श्रील गुरु-महाराज चुँचुड़ा मठमें ही थे। जब

उन्हें इस घटनाका पता चला तो वे उसी क्षण दौड़े आये और क्रन्दन करने लगे। साथ-ही-साथ किसी प्रकारसे उनको कारमें लेकर कोलकाता मेडिकल कॉलेजमें गये और वहाँ पर उनकी चिकित्सा करवायी। इस घटनासे यह प्रदर्शित होता है कि श्रीसज्जनसेवक ब्रह्मचारी (पूज्यपाद वामन महाराज) श्रील गुरुदेवकी सेवामें कितने समर्पित थे तथा श्रील गुरुदेवका भी उनपर कितना वात्सल्य स्नेह था।

त्रुटि-रहित लेखन

श्रीनवद्वीप-धाम-परिक्रमाके समयमें हजारों लोगोंकी भीड़ होती थी। उस समय भी श्रीगौड़ीय-पत्रिकाका सम्पादकीय इत्यादि लिखवानेके लिए श्रीसज्जनसेवक ब्रह्मचारी श्रीगुरु-महाराजजीके पासमें उपस्थित रहते। असंख्य लोग श्रीगुरु-महाराजजीसे मिलनेके लिए आते। ऐसी व्यस्तताके समयमें भी श्रील गुरु-महाराज गौड़ीय-पत्रिकाका सम्पादकीय प्रबन्ध लिखवाते और श्रीसज्जनसेवक ब्रह्मचारी उसे लिखते। उसे पुनः संशोधनकी आवश्यक्ता नहीं पड़ती तथा उसी समय उस प्रबन्धको प्रेसमें दे दिया जाता और वह एकदम त्रुटि रहित होता। जिस प्रकार गुरु-महाराजजीका बोलना त्रुटि रहित होता था, उसी प्रकार श्रीसज्जनसेवक ब्रह्मचारीका लेखन भी गणेशकी भाँति अत्यन्त शुद्ध होता था, उसमें कोई संशोधनकी आवश्यकता नहीं होती थी।

सम्प्रदायकी सेवाके लिए प्रमाणोंका अनुसन्धान

एक समय श्रीपाद सज्जनसेवक ब्रह्मचारी मेदिनीपुर स्थित श्रीश्यामानन्द गौड़ीय मठमें रह रहे थे। उस समय श्रीपाद अनन्तराम ब्रह्मचारी (पूज्यपाद भक्तिजीवन जनार्दन महाराज) भी वहीं थे। कोई प्रबन्ध लिखनेके लिए दो श्लोकोंको देखकर यह निश्चित करना था कि वे श्लोक किस शास्त्रके किस अध्यायके किस संख्याके हैं। वे श्लोक हैं—

सम्प्रदाय विहीना ये मन्त्रास्ते विफला मताः।
अतः कलौ भविष्यन्ति चत्वारः सम्प्रदायिनः॥

(प्रमेय रत्नावली १.५ धृत पद्मपुराण वाक्य)

जन्मना जायते शूद्रः संस्कारात् द्विजोच्यते।
वेदपाठी भवेद् विप्र ब्रह्म जानाति इति ब्राह्मणः॥

(स्मृतिवाक्य)

श्रीधाम-वृन्दावनके कुछ गोस्वामी लोग और कुछ बाबाजी लोगोंका यह कहना था कि शास्त्रोंमें इन श्लोकोंका उल्लेख नहीं है। केवल चार ही सम्प्रदाय नहीं हैं, श्रीचैतन्य महाप्रभु श्रीमध्वानुगत नहीं हैं, वे स्वयं श्रीगौड़ीय-वैष्णव-सम्प्रदायके प्रवर्तक हैं। श्रीगौड़ीय-वैष्णव-सम्प्रदाय श्रीमध्व-सम्प्रदायके अन्तर्गत नहीं हैं। इसीलिए उक्त दोनों ब्रह्मचारी पश्चिम बङ्गालके मेदिनीपुर शहरके निकट महिषादल नामक स्थानपर अवस्थित राजकीय बृहत्-पुस्तकालयमें गये। श्रीपाद सज्जनसेवक ब्रह्मचारीने कुछ दिन रहकर उन दोनों श्लोकोंको ढूँढ़ निकाला और साथ-ही-साथ उक्त पुस्तकालयके अधिकांश श्रीगौड़ीय-वैष्णव साहित्य, उपनिषद् और पुराणोंका अध्ययन भी किया।

संन्यास ग्रहण

तत्पश्चात् १९५२ई. में श्रीनवद्वीप-धाम-परिक्रमाके समयमें श्रीसज्जनसेवक ब्रह्मचारी, श्रीराधानाथ दासाधिकारी (व्रजवासी) और मुझे (श्रीमन् गौरनारायण दासाधिकारी) तीनोंको श्रील गुरु-महाराजजीने सर्वप्रथम संन्यास प्रदान किया। संन्यासके समय हम लोगोंका नाम क्रमशः श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज, श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज और श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज हुआ।

हम तीनोंमें ऐसा बन्धुत्व था मानो तीन शरीर और एक प्राण हों। यद्यपि मैं सबसे नवागन्तुक था, तो भी पूज्यपाद वामन महाराज और पूज्यपाद त्रिविक्रम महाराज दोनों ही मुझे बहुत स्नेह करते

और कोई भी काम हम तीनों परस्पर परामर्श द्वारा किया करते थे। तथापि पूज्यपाद त्रिविक्रम महाराज और मैं, पूज्यपाद वामन महाराजजीको शिक्षा-गुरुके रूपमें आदर करते थे।

मूर्तिमान गौड़ीय अभिधान

एक समय श्रील गुरु-महाराज पाँच संन्यासियों और दस-बारह ब्रह्मचारियोंको लेकर असाममें प्रचारके लिए गये थे। उस समय बारीपदा नामक एक गाँवमें हम लोग पहुँचे। वहाँ पर असामके श्रीहङ्करदेवके शिष्योंका बहुत ही प्रभाव था। हङ्करदेवने श्रीमद्भागवत्के १३ स्कन्ध लिखे हैं। यद्यपि उनके अनुयायी भगवान् श्रीकृष्णका भजन करते हैं, वे लोग माँस, मछली इत्यादिका भी सेवन करते हैं। श्रील गुरु-महाराजजीने वहाँ एक विराट सभामें कहा कि जो लोग श्रीकृष्णका भजन तो करते हैं, किन्तु माँस, मछली इत्यादि खाते हैं, मदिरा पान करते हैं उनका मुख पैखाना (टट्टी घर) और पेशाबकी नालीकी भाँति है। ऐसा सुनते ही वहाँ उपस्थित हङ्करदेवके शिष्य और उनके अनुगत सभी लोग बड़े क्रोधित होकर पत्थर और लाठियोंसे सभा-मञ्च पर प्रहार करने लगे। सभामें भी कुछ हलचल मच गई और लोग इधर-उधर होने लगे। किन्तु श्रील गुरु-महाराजजी अटल रहे तथा सभामें गर्जन करते हुए कहने लगे—यदि आप लोग यहाँ पर झगड़ा करेंगे तो हम लोग भी पत्थर और लाठीसे तैयार हैं, इसलिए आप लोग शान्त होकरके सुनिये और यदि कुछ वक्तव्य है, तो सभामें बोलिये। तब हङ्करदेवके अनुयायियोंने कहा कि श्रीचैतन्य महाप्रभु तो एक साधारण मनुष्य हैं, भगवदवतार नहीं हैं, यदि कोई प्रमाण है तो आप बतलाइये? उस समय श्रील गुरु-महाराजने श्रीपाद वामन महाराजकी ओर इङ्गित किया। तब पूज्यपाद वामन महाराजने "कृष्ण वर्णं त्विषाऽकृष्णम्" आदि श्रीमद्भागवत्के बहुतसे श्लोक और 'छन्न अवतार' इत्यादिकी बातें तथा उपनिषदसे लगभग पैंतीस-छत्तीस प्रमाणोंको बतलाया। यह सुनकर वे लोग स्तब्ध हो गए और उनका मुख बन्द हो गया तथा उसके बाद सभा निर्विघ्न सम्पन्न हुई।

बङ्गालके गाँव-गाँवमें प्रचार

श्रीधाम-नवद्वीपमें श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठका श्रीमन्दिर और नाट्य मन्दिर निर्माण हो जानेके बादमें श्रील गुरु-महाराजजीने पूज्यपाद वामन महाराजजीको प्रचार करनेके लिए बाहरमें भेजा। वे कुछ ब्रह्मचारियोंको साथ लेकर चौबीस-परगनाके बहुतसे कस्बों और गाँवोंमें तथा काकद्वीप और सुन्दरवन इलाकेमें बहुत कठिनाइयोंको सहनकर प्रचार करने जाते थे। प्रचारके समयमें उनकी अद्भुत् सहन शक्ति थी। वे अत्यधिक अमानी अर्थात् स्वयं मानकी इच्छा न करनेवाले और मानद अर्थात् दूसरोंको सब समय मान देनेवाले थे।

वक्तृता एवं खण्डनकी मधुर शैली

पाठ-वक्तृता आदिके समय पूज्यपाद वामन महाराज लगातार ३-४ घण्टे तक बोला करते थे। यदि कभी आवश्यकता होती तो वे अपने भाषणोंमें सहजियावाद, अद्वैतवाद, यत मत, तत पथ (जितने मत हैं, उतने मार्ग हैं) आदि विचारोंका मधुरभाषामें अत्यन्त सुन्दर शैलीसे खण्डन करते थे, जिससे श्रोताओंको, विशेषकर विपक्षके श्रोताओंके हृदयमें ठेस न लगे और वे लोग उस विचारको गम्भीरतासे ग्रहण कर सकें। वे प्रचारके समयमें किसी विशेष मतका खण्डन करनेमें प्रवीण थे।

श्रील गुरु-महाराजका अप्राकृत जीवन चरित्र सङ्कलन एवं अन्यान्य ग्रन्थोंका सम्पादन

श्रील गुरु-महाराजके आदेशानुसार पूज्यपाद वामन महाराजने श्रीजैवधर्म, श्रीनवद्वीप-भावतरङ्ग, श्रीगौड़ीय गीतिगुच्छ, श्रीनवद्वीप-शतकम्, श्रीनवद्वीप-धाम परिक्रमा, श्रीचैतन्य चरितामृत इत्यादि अनेक ग्रन्थोंका प्रकाशन किया है। वे श्रीगौड़ीय-पत्रिकामें अपूर्व एवं अद्भुत प्रबन्ध भी लिखते थे।

उन्होंने परमाराध्यतम श्रील गुरुदेव नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी

महाराजीका अप्राकृत जीवन चरित्र भी सङ्कलित किया था। श्रील गुरु-महाराजके सम्बन्धमें अधिकांशतः वे अपनी नोटबुकमें समय-समय पर नोट किया करते थे। उस ग्रन्थमें उन्होंने श्रील गुरु-महाराजजीके आविर्भाव कालसे लेकर तिरोभाव तक श्रील गुरु-महाराजने जो कुछ भी किया अर्थात् श्रील प्रभुपादका आश्रय ग्रहण करना, गौड़ीय मठकी सेवा करना, प्रभुपादके प्रति उनकी निष्ठा, मायापुरकी उन्नति, श्रील प्रभुपादके अप्रकट होनेके पश्चात् श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिकी स्थापना करना और उसके बाद सारे भारतवर्षमें प्रचार, विभिन्न धामों और तीर्थोंकी परिक्रमा, संन्यास प्रदान करना, इन सबका तथा श्रील गुरु-महाराजके विचारोंका विवरण भी उस जीवनी ग्रन्थमें प्रस्तुत किया है। विशेष रूपसे उस ग्रन्थमें श्रील गुरु-महाराजजी हम लोगोंको लेकर श्रीपुरी धाम, क्षेत्रमण्डलकी परिक्रमा, काशी धाम, अयोध्या धाम, वासुकीनाथ, नैमिषारण्य, वैद्यनाथ धाम, मन्द्राचलम्, प्रयाग, मथुरा, ८४ क्रोस व्रजमण्डलकी परिक्रमा, द्वारका, भेट् द्वारका, गोमती

द्वारका, रणछोड़जी, कूर्माचल, श्रीनृसिंहाचलम्, पक्षीतीर्थ, मद्रास, पाणानृसिंह, तांजोर, रामेश्वर, कन्याकुमारी, अहोबिलम्, त्रिवेन्द्रम्, उडूपी, वेंकटेश्वरम्, श्रीरंगम, केदार, बदरी, मुम्बादेवी, कामाख्यादेवी—आसाम, महाबलीपुरम्, पद्मनाभतीर्थ, विष्णु काञ्ची, शिव काञ्ची, दण्डकारण्य, चित्रकूट, त्रिचिनापल्ली, अजन्ता, एलोराकी गुफाएँ इत्यादि स्थानोंमें गये थे, उन्होंने इसका वृत्तान्त भी लिखा है।

निरपेक्ष आचार-विचार

एक समय उनका कोई उद्दण्ड शिष्य इधर-उधरके लोगोंसे तथा मठके लोगोंसे भी झगड़ा करता था और मठके संन्यासियोंको सम्मान नहीं देता था। पूज्यपाद वामन महाराजने समितिके सदस्योंकी मिटिङ्गमें यह प्रसङ्ग उठने पर कहा कि यदि आवश्यकता हो तो ऐसे उद्दण्ड लोगोंको मठसे बाहर कर देना ही उचित है। बिना शासन किये ये लोग मानेंगे नहीं और मठका वातावरण दूषित हो जायेगा। अन्तमें उसे मठसे बाहर कर दिया गया। अपने शिष्योंके प्रति भी वे ऐसा निरपेक्ष आचरण करते थे।

आचार्य होनेपर भी सतीर्थ आनुगत्य

एक समितिके आचार्य होनेपर भी पूज्यपाद वामन महाराज आचार्य-अभिमानसे पूर्णतः रहित थे। उनके जीवनमें हमने लक्ष्य किया कि वे स्वेच्छापूर्वक अपनी सतीर्थों (गुरु-भाइयों) के आनुगत्यमें रहते थे। नवद्वीप परिक्रमाके समय दीक्षा देनेसे पूर्व वे पूज्यपाद त्रिविक्रम महाराज और मेरे पास स्वयं आते एवं कहते—"महाराज! आपलोग मुझे आदेश दें कि मैं लोगोंको नाम-दीक्षा प्रदान करूँ।"

एक समय पूज्यपाद वामन महाराजजी पुरी धाममें अत्यन्त अस्वस्थ हो गये। वहाँ पर Homoeopathic और Ayurvedic चिकित्सा किये जाने पर भी उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं हुआ। लोगोंने उनसे अनुरोध किया कि कोलकातामें चलकर आप अपनी चिकित्सा कराइये, किन्तु उन्होंने किसीकी बात नहीं मानी। वे अपनी चिकित्साके लिए स्वतन्त्र रूपमें धन खर्च नहीं करना चाहते थे। अन्तमें मैं श्रीमान् नवीनकृष्ण ब्रह्मचारीको साथ लेकर श्रीजगन्नाथ पुरी स्थित श्रीनीलाचल गौड़ीय मठमें पहुँचा और उनसे निवेदन किया कि हम आपको अब यहाँपर नहीं रहने देंगे, आप कृपापूर्वक हम लोगोंके साथमें कोलकाता चलें, वहाँपर चिकित्साकी व्यवस्था करेंगे। तब वे हमारी बात सुनकर साथ-ही-साथ चलनेके लिए तैयार हो गये तथा सेवकोंसे बोले "देखो श्रीपाद नारायण महाराज आ गये हैं, अब मुझे जाना ही पड़ेगा।" उस समय हमारे सतीर्थ श्रीभक्तिवेदान्त हरिजन महाराज भी पुरीमें थे, हम दोनों उनको स्लीपिंग बर्थमें रीजर्वेशन करवाकर रेलगाड़ीसे कोलकाता ले आये। वहाँ उनकी चिकित्साकी व्यवस्था की गई और कुछ ही दिनोंमें वे ठीक हो गये।

इसी प्रकार एक समय अस्वस्थ होने पर वे बङ्गालमें आसनसोलके निकट सिधावाड़ी नामक स्थानपर स्थित हमलोगोंके मठमें चले गये। वह स्थान बहुत ही रमणीय और स्वास्थ्यकर है। वहाँका पानी भी बहुत अच्छा है। वहाँ पर Homoeopathic के बहुत ही प्रसिद्ध Doctor थे, उनके द्वारा उनकी चिकित्सा होने पर भी वे ठीक नहीं हुए और रोग बढ़ता गया। उस समय भी श्रीमान् नवीनकृष्ण ब्रह्मचारीको साथ लेकर मैं सिधावाड़ी गया। मुझे देखते ही वे बोले-"अब नारायण महाराज मुझे यहाँ रहने नहीं देंगे। नवीन इधर आओ और बिस्तर बान्धो। मेरे लिए Military order है, अब मुझे लेकरके ही जायेंगे।" उसी दिन रातमें हम लोग उनको लेकर कोलकाता रवाना हो गये और वहाँपर रहकर उनकी चिकित्सा हुई, कुछ समयमें वे स्वस्थ हो गए।

सतीर्थके प्रति विश्वास एवं निर्देश

एक समय मैंने पूज्यपाद वामन महाराजजीको मथुरासे एक पत्र लिखा जिसमें मैंने उनसे अनुरोध किया कि मथुरा और आसपासमें बहुतसे लोग हरिनाम और दीक्षा लेना चाहते हैं, इसलिए कृपा करके आप मथुरामें पधारिये, जिससे यह काम भी सम्पन्न हो सके तथा लोग आपका दर्शन भी प्राप्त कर सकें। उन्होंने इसके उत्तरमें मुझे लिखा—"मैंने बहुत पहले ही आपसे कह दिया है और इस पत्रके द्वारा भी आपको यह लिख रहा हूँ कि आप निःशंक होकर हरिनाम और दीक्षा प्रदान कीजिए, जिससे मुझे अस्वस्थताके कारण यात्रामें होनेवाला कष्ट भी न हो और प्रचारका कार्य भी चलता रहे।" ऐसे वैष्णव आचार्य कम ही मिलते हैं जो अपने सतीर्थके प्रति इस प्रकारसे हरिनाम और दीक्षा देनेके लिए विश्वास

और उदारताके साथ निर्देश दे सकें। किन्तु आजकल इसी कारणसे मठके लोगोंमें परस्पर विवाद होता है।

श्रीराधा-दास्य भजनका समर्थन

कभी-कभी सभाओंमें विशेषतः श्रीनवद्वीप-धाम-परिक्रमाके समय मञ्चपर ही पूज्यपाद त्रिविक्रम महाराज और मेरे बीच भक्ति-तत्त्वके सम्बन्धमें कुछ प्रेम-कलह होता था। वे मेरी युक्तियोंका खण्डन करते और मैं उनकी युक्तियोंका खण्डन करता। एक समय प्रसङ्गवशतः मैंने श्रील रूप गोस्वामीके विचारके अनुसार मधुर-रसके सम्बन्धमें कुछ कहा, जिसमें मैंने यह प्रतिपादित किया कि राधाजीकी दासियाँ श्रीकृष्णकी भी परवाह नहीं करतीं। क्यों नहीं करतीं? श्रीराधिकाजीके दास्यके बल पर। यथा *"न पारयेऽहं निरवद्य संयुजां"*—श्लोकमें श्रीकृष्ण स्वयं कह रहे हैं—"हे गोपियो! मैं ब्रह्मा आदि देवताओंकी आयु पाकर भी तुम्हारा ऋण चुका नहीं सकता।" श्रीगीतगोविन्दमें भी देखा जाता है कि श्रीकृष्ण श्रीराधिकाके मान करने पर उनसे कहते हैं—"हे प्रियतमा राधिके! अबसे मैं ऐसा अपराध नहीं करूँगा। आप मुझे क्षमा कीजिए।" *"स्मरगरल खण्डनम्, मम शिरसि मण्डनम्, देहि पदपल्लवमुदारम्"*। इसलिए तत्त्वकी दृष्टिसे श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् होने पर भी, आश्रय जातीय प्रेमकी उत्कृष्टताके कारण वे श्रीराधाजीके ऋणी बन जाते हैं और उनके चरणोंमें क्षमा भिक्षा भी माँगते हैं। किन्तु पूज्यपाद त्रिविक्रम महाराजजी मेरी इन उक्तियोंका खण्डनकर श्रीकृष्णकी भगवत्ता और उनकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन करने लगे। इस प्रकार मुझमें और उनमें उत्तर और प्रत्युत्तर होता रहा। पूज्यपाद वामन महाराजजी सभापतिके पदपर विराजित थे। उस समय हम दोनोंके परस्पर प्रेम-कलहको देखकर पूज्यपाद वामन महाराजजीने अपने भाषणके उपसंहारमें कहा—*"राधा पक्ष छाडि ये जन से जन, ये भावे से भावे थाके, आमि तो*

राधिका पक्षपाती सदा, कभु नाहि हेरि ताके"। उन्होंने कहा कि मैं तो राधाजीका पक्षपाती हूँ, उनके सुखमें सुखी होता हूँ और उनके दुःखमें दुःखी होता हूँ। यही रूपानुग वैष्णवोंका विचार है। श्रीराधा-पक्षका भजन ही श्रेष्ठ है, कोई भी ऐसा नहीं कह सकता कि जगतमें ऐसे भजनके अधिकारी नहीं हैं। जगतमें सदा ऐसे श्रीरूपानुग वैष्णवगण भजनके अधिकारी रहते हैं, पहले भी थे, अभी भी है, भविष्यमें भी होंगे। कोई अधिकारी ही नहीं है, ऐसी बात नहीं है। यदि अधिकारी नहीं रहेंगे तो जगत ही ध्वंस हो जायेगा। उनके विचारोंका लोगोंपर बहुत प्रभाव पड़ा।

विप्रलम्भ-भजनमें आवेश

पूज्यपाद वामन महाराज प्रारम्भ [श्रील गुरु-महाराजके अप्रकटकालके उपरान्त] से ही विप्रलम्भ भजनमें आविष्ट रहते थे। यदि उनका कोई शिष्य किसी

भी विषय या व्यवस्थाकी बात लेकर उनके पास पहुँचता, तो वे उसे सीधा कह देते कि श्रीपाद नारायण महाराजजीके पासमें जाओ, वे ही इसका समाधान करेंगे।

अपने अप्रकटके लगभग दो-तीन वर्ष पहलेसे ही वे लगभग मौन रहते थे तथा सब समय नाम-भजनमें रत रहते थे। कभी-कभी भावाविष्ट होकर आधी रातके समयमें या दिनमें भी कहते—"ठाकुरानी! दया करो। ठाकुरानी! दया करो। कृपा करो।" कभी कभी निद्रावेशमें भी "ठाकुरानी! दया करो" इस प्रकारसे कह उठते थे।

अप्रकट काल एवं समाधि

अप्रकट होनेसे कुछ दिन पहले पूज्यपाद वामन महाराजजी गङ्गाके तटपर वैद्यवाटी नामक स्थान पर अपने सेवकोंके साथ रह रहे थे। किन्तु शरीर अस्वस्थ होनेपर भी वे कार्तिक-व्रत पालन करनेके लिए श्रीधाम-नवद्वीपमें श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें चले आये और उसी कार्तिक मासकी गौर-तृतीयाके दिन वे श्रीराधाकृष्णकी लीलामें प्रवेश कर गये। मैं उस समय कार्तिक मासमें श्रीव्रज-मण्डलकी परिक्रमा करते हुए गोवर्धनके पड़ाव पर था। लगभग एक हजार यात्री हमारे साथमें थे। मैंने श्रीभक्तिवेदान्त तीर्थ महाराज और श्रीभक्तिवेदान्त वन महाराजको पहले ही गोवर्धनसे श्रीधाम-नवद्वीप भेज दिया था। किन्तु श्रीधाम-नवद्वीपसे श्रीपाद आचार्य महाराज और अन्य लोगोंने हमको सूचित किया कि आप जब तक नहीं आयेंगे पूज्यपाद वामन महाराजकी समाधि नहीं होगी। यह बात सुनकर परिक्रमाका सारा कार्यक्रम स्थगित कर श्रीभक्तिवेदान्त माधव महाराजको साथ लेकर मैं उसी क्षण श्रीधाम-नवद्वीपके लिए रवाना हुआ। किन्तु कोलकाता पहुँचने पर ही मुझे ज्ञात हुआ कि कुछ नवीन मठवासियोंने प्रवीण संन्यासियों और मठवासियोंके परामर्शको ठुकराकर हमारे लिए प्रतीक्षा नहीं की और उनको एक दिन पूर्व रात्रि कालमें अर्थात् नियत समयसे पहले ही समाधि प्रदान कर दी है। इससे मैं और उनके अन्य गुरुभाई अत्यधिक क्षुब्ध हुए, तथापि अन्तमें मैंने श्रीधाम-नवद्वीप पहुँचकर कीर्त्तन इत्यादिके साथमें उनकी समाधि पीठकी पूजा, अर्चना, परिक्रमा की और फिर मैं वहाँसे एक दिनके बाद गोवर्धन लौट आया।

आदर्श-वैष्णव-चरित्र

इस प्रकार पूज्यपाद वामन महाराजजीके साथमें मैं प्रायः ६० वर्ष रहा। मैंने उनके जीवन चरित्रको बहुत निकटसे देखा और समझा है, उनमें वैष्णवोचित सभी लक्षण थे। वे स्वाभावसे ही बड़े सरल, गम्भीर, सहिष्णु, गुरु-निष्ठा सम्पन्न, वैष्णव-सेवा परायण थे। इन्हीं सब गुणोंके कारण वे भक्तिके अति उच्च सोपानपर उपस्थित हो सके। उनकी गुरुनिष्ठा अद्भुत थी। गुरु-सेवाके लिए वे अपने प्राणोंको हाथोंमें लेकर चलते थे। गुरुनिष्ठा भक्तिकी रीढ़ है। हमने बहुत गुरुसेवकोंको देखा है, किन्तु जिस प्रकारसे पूज्यपाद वामन महाराजजीने अपनी ब्रह्मचर्य अवस्था और संन्यासकी अवस्थामें परमाराध्यतम श्रील गुरु-महाराजकी तन, मन, वचन, भावना सब प्रकारसे सेवा की है, ऐसे गुरुसेवक जगतमें विरले ही मिलेंगे। वे श्रील गुरुदेव एवं श्रीश्रीराधाकृष्णकी नित्यसेवामें रत रहते हुए हम सबपर कृपा करें, जिससे हम लोग भी उनकी भाँति गुरु-निष्ठा सम्पन्न हो सके और अपना जीवन गुरु-सेवा और प्रचारमें लगा सके।

[श्रीश्रीभागवत-पत्रिका, वर्ष-२(२००५ई), संख्या-(७-८)से उद्धृत अंश]

श्रील भक्तिवेदान्त वामन महाराजजीके कुछ संस्मरण

—श्रीश्रीमद्भक्तिविज्ञान भारती गोस्वामी महाराज

[वर्ष २००५ई॰ में लिखित]

एक सच्चे और विनम्र वैष्णव

श्रील भक्तिवेदान्त वामन महाराज बहुत ही छोटी आयुमें श्रील प्रभुपादके पास आ गये थे। पढ़ाईके साथ-साथ मठकी सेवा, ठाकुरके बर्तन आदिकी सफाई भी करते थे। इनकी सेवावृत्तिको देखकर पाठ्यावस्थामें ही श्रील प्रभुपादने इनको कृपाकर हरिनाम प्रदान किया था।

श्रील वामन महाराज स्वभावके बहुत ही स्निग्ध थे, कभी भी किसीसे झगड़ा इत्यादि नहीं करते थे। इनको अपने मठ जीवनमें सपरिकर श्रील प्रभुपादकी सेवाका सौभाग्य प्राप्त हुआ। वे सभी वैष्णवोंकी सेवा करते थे। जब वे हमारे गुरु-महाराजजीके साथ प्रचार कार्यमें थे, उस समय उनकी भी रन्धन इत्यादि द्वारा सब प्रकारसे सेवा करते थे।

प्रतिष्ठाशा रहित और पराविद्यानुरागी

श्रील वामन महाराजका अनेक ग्रन्थोंके गूढ़ सिद्धान्तोंमें प्रवेश था। वे गुरु, वैष्णव और शास्त्रोंकी वाणीको अपने हृदयमें स्थान देते थे, अनुशीलन करते थे, सब कुछ जानते थे तथा भागवतके श्लोकोंमें प्रतिष्ठित थे। किन्तु इनके जीवनमें मैंने एक विशेष वस्तु लक्ष्य की है कि वे कभी भी सामने आकर प्रतिष्ठा आदिके लिए कथा सुनानेकी अथवा भाषण इत्यादि देनेकी रुचि नहीं रखते थे, कथा करनेके उपरान्त कभी भी इनको आत्मप्रशंसा करते हुए नहीं सुना। वे पराविद्यानुरागी, भक्तिसिद्धान्तमें निपुण, अद्भुत सहिष्णु, भजनपरायण तथा निरभिमानी थे। ग्रन्थ पढ़नेमें बहुत अधिक रुचि रखते थे। ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होनेपर दूसरोंसे माँगकर पढ़ते थे।

प्रबल निष्ठावान

श्रील प्रभुपादकी अप्रकट लीलाके उपरान्त गौड़ीय मठपर अन्धकारमय घनघोर बादल छा गये थे, अनेक तथाकथित धुरन्धर कहे जानेवाले श्रील प्रभुपादके शिष्य विषयोंमें लिप्त हो गये, अनेक अपने पूर्वाश्रम चले गये, अनेक गृहस्थ हो गये और बहुतसे लोगोंने गेरुए वस्त्रोंको त्यागकर सफेद वस्त्र धारणकर लिए। किन्तु आयुमें छोटे होनेपर भी श्रील वामन महाराजने शरणागत व्यक्तिकी भाँति पर्वतकी उच्चश्रेणीके समान अपनी निष्ठाका परिचय दिया। श्रीमद्भागवतके

न तथा ह्यघवान् राजन् पूयेत तपादिभिः।
यथा कृष्णार्पितप्राणस्तत्पुरुषनिषेवया॥

श्लोकके अनुसार इनमें मैंने प्रबल तत्पुरुष निष्ठा देखी है। इन्होंने श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके साथ-साथ श्रीनरहरि 'सेवाविग्रह' प्रभु तथा अन्यान्य अनेक भक्तोंकी कारागारमें अथाह सेवा की है। वीतश्रद्ध अर्थात् श्रद्धारहित होकर मठसे चले नहीं गये, गृहस्थ नहीं बने, चञ्चल नहीं हुए।

उस समय अनेकोंने इनको समझाया कि भाई! तुम तो हरिभजन करने आये हो, कारागारमें सजा काट रहे लोगोंकी सेवा करनेसे क्या लाभ होगा? परन्तु इनकी एक अद्भुत अनुभूति थी। इन्होंने उत्तर दिया कि मैंने श्रील प्रभुपादके परम आदर्शमय जीवनसे सीखा है—

असत्सङ्ग त्याग—एइ वैष्णव आचार।
स्त्रीसङ्गी—एक असाधु, कृष्णाभक्त आर॥

मैं तो वैष्णव सङ्ग ही करूँगा, वैष्णवोंकी ही सेवा करूँगा, भले ही वह कारागारमें ही क्यों न हों।

तब किसीने प्रश्न किया कि यदि ये वैष्णव हैं तो जेलमें क्यों हैं? तो इन्होंने उत्तर दिया कि सोनेका टुकड़ा यदि भूसीमें पड़ा हो, तो क्या उसका मूल्य कम हो जाता है? किन्तु जब वे इधर-उधरकी बातें करके इनको अस्थिर करनेका प्रयास करने लगे, तब इन्होंने कहा कि *"देखिया ना देखे जत अभक्तेर गण। उल्लूके ना देखे जेन सूर्येर किरण॥"* इनकी ऐसी निष्ठा देखकर फिर कभी किसीने कुछ भी नहीं कहा।

हरि-गुरु-वैष्णव गुणगानमें आसक्ति

श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके अप्रकट होनेके उपरान्त जो विरह-महोत्सव मनाया गया था, उसमें अस्मदीय गुरुपादपद्म नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद श्रीश्रील भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज सभापति थे। उन्होंने उस सभामें श्रील वामन महाराजका आदर्श गुरु-सेवकके रूपमें परिचय दिया था। शुद्धभक्तिके प्रचारमें ये सदैव तत्पर रहते थे। मैंने इनमें भगवान्‌की कथा कहनेकी प्रगाढ़ आसक्तिको लक्ष्य किया है। सन् १९९४ई. में पूज्यपाद श्रील भक्तिजीवन जनार्दन महाराजजीका विरह-महोत्सव खड़गपुरमें सम्पन्न हुआ था। विरह-सभाके लिए श्रील वामन महाराजको सभापति मनोनीत किया गया था। उस समय वे मद्रासमें चिकित्साके लिए गये थे तथा वहाँसे खड़गपुर आना था। गाड़ीके विलम्ब होनेके कारण वे सभामें समय पर उपस्थित नहीं हो सके। तब मुझे सभापति नियुक्त किया गया। जब श्रील वामन महाराज सभामें पहुँचे, तब तक ५-६ वैष्णव वक्तृता दे चुके थे। जब श्रील वामन महाराजजीको बोलनेके लिए कहा गया, तो उन्होंने मुझसे पूछा कि "मुझे कितनी देर बोलना है?" तब मैंने कहा, "महाराज! आप ही तो यथार्थ सभापति हैं, आपके लिए समयकी कोई पाबन्दी नहीं है।" बहुत अस्वस्थ होनेपर भी जब उन्होंने कथा कहनी आरम्भ की, तो रुकनेका नाम ही नहीं लिया। उनका सेवक बार-बार उनको घड़ी दिखाने लगा, किन्तु इन्होंने उसकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। शरीरकी चिन्ता न कर आसक्तिपूर्वक हरिकथाका परिवेशन किया।

कृपाके यथार्थ अधिकारी

कृपा माँगनेसे नहीं आती, सेवा करनेसे अपने आप प्राप्त हो जाती है। अधिकांश लोगोंको कहते सुना जाता है कि "महाराज कृपा करो, महाराज कृपा करो।" परन्तु उनको यह नहीं पता कि माँगनेसे ही कृपा प्राप्त नहीं हो जाती और यदि कृपा करनेवाला कृपा करना भी चाहे, कृपा देना भी चाहे, तो भी आधार नहीं होनेपर कोई भी उसको धारण नहीं कर सकता। जैसे एक व्यक्ति श्रील गौरकिशोरदास बाबाजी महाराजके पास आया और कातर होकर बार-बार कृपाकी भिक्षा माँगने लगा। जब बाबाजी महाराजने कृपाके रूपमें अपना कौपीन खोलकर उसको देना

चाहा, तो वह डरकर भाग गया। दूसरी ओर जो व्यक्ति सेवोन्मुख होता है, उसके नहीं माँगने, नहीं चाहने पर भी श्रेष्ठ व्यक्तिकी कृपा उस पर हो जाती है। जैसे हम इतिहासमें भीलनी शबरीकी कथा सुनते हैं कि छोटी आयुमें जब वह जङ्गलमें लकड़ियाँ तोड़ने जाती थी तो घर लौटते समय उसमेंसे कुछ लकड़ियाँ एक असहाय वृद्ध बाबाजीको दे आती थी। नित्यप्रति इस प्रकार करनेपर एक दिन उस वृद्ध बाबाने उसको रोककर कहा कि "तुम्हारी सेवाके बदलेमें मैं तुम्हें इस जगतकी तो कोई वस्तु देनेमें असमर्थ हूँ। तुम स्नान करके मेरे पास आ जाओ, मैं तुम्हें मन्त्र प्रदान करूँगा जिसके फलस्वरूप तुम्हें भगवान श्रीरामचन्द्रके दर्शन होंगे।" इस उपाख्यानके माध्यमसे हमें पता चलता है कि सेवोन्मुख व्यक्तिपर शुद्धभक्तोंकी कृपा अनायास ही हो जाती है। ऐसा ही कुछ हम श्रील वामन महाराजके जीवन चरित्रमें लक्ष्य करते हैं।

नियन्त्रित वाक्य वेग

श्रील वामन महाराजजीके मुखसे कभी भी कोई हल्की बात नहीं निकलती थी। इनको अनेक बार कहते हुए सुना जाता था कि *'देखिबे, शुनिबे, बलिबे ना'* अर्थात् 'देखो, सुनो, बोलो मत'। इन्होंने अपने जीवनमें इस प्रकारके आदर्शको full extent तक पालन किया। ये कभी भी मर्यादाका उल्लंघन नहीं करते थे।

श्रील प्रभुपादके विचारोंके अनुरूप सभी वैष्णवोंको यहाँ तक कि अपने चरणाश्रित शिष्योंको भी कभी आदेश नहीं देते थे, सर्वदा बहुत ही मधुर भाषाका प्रयोग करके "श्रीमन्महाप्रभुका हमारे लिए ऐसा आदेश है, ऐसा पालन करनेसे हमारा कल्याण होगा, हरि-गुरु-वैष्णव ऐसा कहते हैं।" इत्यादि वचनोंका प्रयोग करते थे। कभी भी इनको "मैं ऐसा चाहता हूँ, मेरे विचारसे सबको ऐसा करना चाहिए" इत्यादि वचनोंका प्रयोग करते नहीं देखा गया।

विरह द्वारा वास्तविक सङ्ग

पूर्ण शरणागति सहित साधुसङ्ग करनेसे हमारा पुराना (निसर्ग) स्वभाव दूर हो सकता है। विरहमें ही वास्तविक सङ्ग होता है। एक बार श्रीजगन्नाथ पुरी स्थित हमारे मठमें परिक्रमाके समय एक माताजी अपने बच्चेको मठमें ही छोड़ गई। उस समय परिक्रमा पार्टी चले जानेके उपरान्त श्रीपाद मदनसेठ मठकी देखभाल करते थे। वे उस बच्चेको मालपुआ, संदेश आदि देने लगे और वह भी सबकुछ बहुत प्रेमसे लेने लगा। कई वस्तुएँ तो वह छीनकर भी खाने लगा। परन्तु जिस समय परिक्रमा पार्टी लौट आई, उसकी माँ बाजारसे कुछ खरीददारी करनेके कारण पार्टीके साथ नहीं आई। अपनी माँको न आये देखकर वह बच्चा इतनी जोर-जोरसे रोने लगा, चिल्लाने लगा कि किसी भी प्रकारसे शान्त नहीं हुआ। वे वस्तुएँ जिनको वह छीनकर भी खा रहा था, अभी प्यारसे देनेपर भी उन वस्तुओंको उठा-उठाकर फेंकने लगा। इसी का नाम है विरह। अच्छी-से-अच्छी वस्तुमें भी मन नहीं गया। जब विरह हुआ, तब केवल माँ ही चाहिए। यह है वास्तविक सङ्ग। इस समय जो 'माँ-माँ' पुकार रहा है—यह है वास्तविक नाम। जो हरि-गुरु-वैष्णवोंकी सेवा, सन्तुष्टिके लिए जितनी अधिक Energy देता है, उसको उतने ही परिमाणमें विरहकी उपलब्धि होती है।

विरह नहीं होनेसे वास्तविक अर्चन, पूजन, हरिनाम इत्यादि नहीं होता। हरि-गुरु-वैष्णवोंके विरहसे ही हमारी उन्नति होगी और यदि हमने जगतके विषयोंके प्रति शोक किया तो हम निम्नगामी हो जायेंगे। वैष्णवोंकी स्मृति ही हमारी सम्पद है तथा जगतकी स्मृति ही विपद है। श्रील वामन महाराजने महत्-सेवाका जो आदर्श प्रस्तुत किया है, वह मेरे लिए वन्दनीय है।

[श्रीश्रीभागवत-पत्रिका, वर्ष-२(२००५ई), संख्या-(७-८)से उद्धृत एवं पुनःव्यवस्थित]

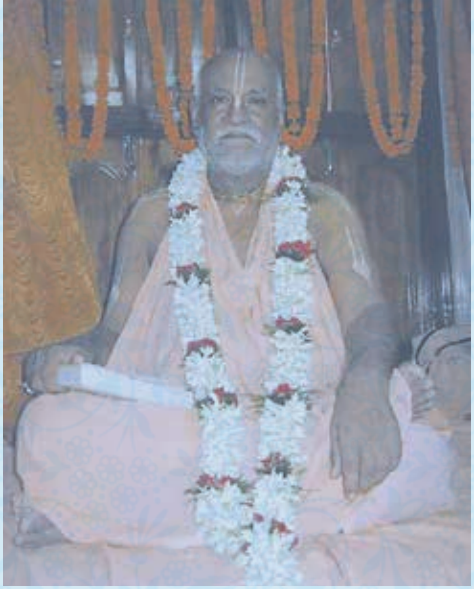

ॐविष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त

शतवर्ष शुभाविर्भाव व्यासपूजा–

–पूज्यपाद श्रीश्रीमद्भक्तिजीवन आचार्य महाराज

[श्रीश्रीमद्भक्तिकमल मधुसूदन गोस्वामी महाराजके द्वारा प्रतिष्ठित श्रीकृष्णचैतन्य गौड़ीय मठ, वर्द्धमान (प. बं.) के वर्तमान आचार्य]

अमृतमयी चरित्रसुधाका आस्वादन करनेके लिए लोभनीय प्रयास

परम पूज्यपाद श्रील वामन गोस्वामी महाराजकी शुभ शतवर्षपूर्त्ति आविर्भाव-तिथिपूजामें उनकी अमृतमयी चरित्रसुधाका समस्त भक्तवृन्दके साथ आस्वादन करनेके लिए मैं अति लोभनीय प्रयास कर रहा हूँ, यद्यपि उनका महत्सङ्ग करनेके लिए विशेष सुयोग प्राप्त करनेका सौभाग्य मुझे नहीं मिला है। बहुत जन्मोंका सौभाग्य होनेपर किसी जन्ममें महत्सङ्ग प्राप्त होता है। तथापि प्रतिमास श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, श्रीधाम-नवद्वीप, नदीयासे प्रकाशित 'श्रीगौड़ीय-पत्रिका' के माध्यमसे उनके श्रीमुख-निःसृत भागवत-वाणी श्रवण करनेका सौभाग्य मुझ प्राप्त हुआ है। मैंने सुना है कि श्रील महाराजका आविर्भाव स्थान वर्तमान बङ्गलादेशके बागेरहाट जिलेके अन्तर्गत पिलजङ्ग ग्राम है। उनकी माता श्रीमती भगवती बाला देवी मदीय परमगुरुदेव नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादकी चरणाश्रिता थीं एवं पिता श्रीसर्वेश्वर दासाधिकारी (श्रीसतीशचन्द्र घोष) श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके चरणाश्रित थे। ऐसे भाग्यवान् पिता-माताका आश्रयकर वे अवतरित हुए थे। ऐसे परम वैष्णव पिता-माताको प्राप्त करना परमभक्तके अतिरिक्त दूसरेके भाग्यमें नहीं होता है। श्रील महाराज जन्म-सम्बन्धसे ही प्रभुपादके कृपाप्राप्त थे। पुनः उन्होंने श्रील प्रभुपादसे हरिनाम प्राप्त किया था। विशेष सौभाग्यके दिन उदित होनेपर उन्होंने बचपनसे ही संसारका परित्यागकर श्रीचैतन्य मठमें योगदान किया। उस समय उन्होंने नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके चरणाश्रयका सौभाग्य प्राप्त किया तथा 'सज्जनसेवक ब्रह्मचारी' नाम प्राप्तकर वैष्णवोंकी निष्कपट सेवासे 'सज्जनसेवक' नामको सार्थक किया।

आचार्य-सिंहके चरणाश्रित श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज

श्रील प्रभुपादकी भाषामें–*"प्राण आछे या'र, से-हेतु प्रचार।"* इस कार्य[वचन]के प्राणपुरुष रूपमें अवतीर्ण हुए थे आचार्य-केसरी श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज। उनके समान भक्तिविरुद्ध-मत-विध्वंसकारी सिंहस्वरूप वक्ता जगत्में अति विरल ही देखनेको मिलते हैं। ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराजके द्वारा कोलकातामें सतीश मुखर्जी रोड, कालीघाट स्थित श्रीचैतन्य गौड़ीय मठकी प्रतिष्ठाके समय श्रील केशव गोस्वामी महाराजने वहाँपर पदार्पण किया था। वहीं ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराज, श्रील भक्तिभूदेव श्रौती गोस्वामी महाराज,

वामन गोस्वामी महाराजके

महामहोत्सवके दिवस पर प्रणति-पुष्पाञ्जलि

श्रील भक्तिविचार यायावर गोस्वामी महाराज, श्रील भक्तिसर्वस्व गिरि गोस्वामी महाराज, श्रील भक्तिसौरभ सार गोस्वामी महाराज, श्रील भक्तिसौध आश्रम गोस्वामी महाराज, श्रील भक्तिप्रपन्न दामोदर गोस्वामी महाराज, श्रील भक्तिविलास भारती गोस्वामी महाराज, श्रील भक्तिकेतन तुर्याश्रमी महाराज, श्रील भक्तिशरण शान्त गोस्वामी महाराज, श्रील भक्तिकुमुद सन्त गोस्वामी महाराज, श्रील भक्ति-आलोक परमहंस गोस्वामी महाराज इत्यादि श्रील प्रभुपादके श्रीचरणाश्रित बहुत महाराजोंके श्रीचरणोंके दर्शनका सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था। उसी दिनकी उक्त धर्मसभामें श्रील केशव गोस्वामी महाराजने कालीघाटके कालीभक्तोंके स्थानपर ही निर्भय-कण्ठसे कहा था—"माँ कालीने अपने भक्तोंके मस्तकोंको काटकर अपने गलेमें मालाके रूपमें धारण किया है। कारण, माता कह रही हैं—जो हरिभजन नहीं करते, मेरे निकट केवल धन दो, विभूति दो, मुक्ति दो, केवल दो-दो कहकर मुझे विरक्त करते रहते हैं, मैं उनका मस्तक काटकर अपने गलेमें धारण करती हूँ। देखो, मैं मृत्यु-स्वरूपिणी काली हूँ। जो लोग जगत्में केवल भोगसुख स्वर्गादि भोगोंकी वासना करते हैं, उनके मस्तक मृत्युरूपी मेरे गलेमें रहते हैं अर्थात् भोगी लोग पुनः-पुनः मृत्युके करालग्रासमें पतित होते हैं।"

उन आचार्य-सिंहरूपी श्रीश्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके चरणाश्रित श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज, श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके नित्यलीलामें प्रविष्ट होनेपर श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके आचार्य-पद पर अभिषिक्त हुए। अपने मठवास कालमें अनेक विघ्न-बाधा और शारीरिक अस्वस्थता रहने पर भी उद्यमके साथ श्रील वामन गोस्वामी महाराजने सर्वत्र हरिनामका एवं भगवत् कथाका निर्भय होकर प्रचार किया तथा श्रीगुरु-गौराङ्ग-महाप्रभुके महान नाम-प्रेमधर्मकी प्रचार-सेवा और पराकाष्ठाका प्रदर्शन किया।

प्रथम साक्षात्कार

मैंने पहली बार चितरञ्जनमें श्रील वामन गोस्वामी महाराजजीका दर्शन प्राप्त किया था। मैं अपने एक गुरुभ्राताके गृह प्रतिष्ठा अनुष्ठानके लिए वहाँ गया था। उन लोगोंने इस उद्देश्यसे एक यज्ञका भी आयोजन किया था। उसी समय श्रील वामन महाराज उस क्षेत्रमें प्रचार कार्यमें रत थे। मेरे गुरुभ्राताने श्रील वामन महाराजजीको भी आमन्त्रित किया था तथा वे वहाँपर आये थे। उनके साथ वार्तालापके समय मैंने उनसे पूछा था—"महाराज! हम देखते हैं कि जब कोई नये व्यक्ति मठवास करनेके लिए आते हैं, तब वे अत्यन्त उत्साह और आग्रहके साथ हरिकथाका श्रवण करते हैं, हरि-भजनका अभ्यास करते हैं, और सेवा भी करते हैं। किन्तु कुछ समयके बाद कुछ असुविधाओंको अनुभव करने लगते हैं और अपने साधन-भजनके नियमोंको ठीकसे पालन नहीं कर पाते। ऐसा क्यों होता है?"

इसके उत्तरमें श्रील वामन महाराजने कहा कि जीव जब मठ-मन्दिरोंमें पहली बार योगदान करता है, उस समय उसकी श्रद्धा लौकिक अर्थात् कोमल होती है। वह जब मठमें कुछ समय रहने लगता है, उसकी लौकिक श्रद्धा क्रमशः नष्ट हो जाती है। साधारण रूपमें ऐसा ही होता है। भक्ति याजनके लिए व्यक्तिको शास्त्रीय श्रद्धाकी ही आवश्यकता होती है। वास्तवमें लौकिक श्रद्धा व्यक्तिको भक्ति याजनमें न तो सहायता करती है, न ही दीर्घ समय तक अवस्थान करती है अर्थात् उसे मठ-मन्दिरमें दीर्घ समय तक रहने नहीं देती है। यदि वह जीव गुरु और साधुओंके मुखारविन्दसे विगलित हरिकथाको दृढ़ विश्वासके साथ श्रवण कर पुनः अपने साधन-भजनके अङ्गोंका अनुष्ठान प्रारम्भ कर देता है, उसकी लौकिक श्रद्धा क्रमशः पारमार्थिक श्रद्धामें परिवर्तित हो जाती है। शास्त्रीय श्रद्धा सर्वदा स्थिर और चिरस्थायी होती है। इस शास्त्रीय श्रद्धा अथवा पारमार्थिक विश्वासके अभावमें नवागत साधक शुद्ध-भक्तिके विषयमें अज्ञ अर्थात उदासीन बना रहता है, और जब उसकी लौकिक श्रद्धा भी धीरे-धीरे नष्ट हो जाती है, तब वह पुनः इन्द्रिय-भोगकी ओर लौट जाता है और अपने मार्गसे भटक जाता है।

उनका व्यवहार-कौशल

एक समय किसी एक भक्तने श्रील महाराजसे कथा-प्रसङ्गमें पूछा—"महाराज! हम कैसे अपने भजनके साथ-साथ संसार-चक्रमें भटक रहे जीवोंको मठमें रखकर उनकी सहायता कर सकते हैं?"

श्रील वामन महाराजने कहा, "देखो! मैं स्वयं पान्ता (पानीमें रातभर भिगोये गये भात) को भी फूँक-फूँक कर खाता हूँ। यदि कोई सेवक अथवा भक्त अत्यन्त शान्त स्वभावका भी हो, तो भी मैं उनके साथ अत्यन्त सावधानीसे और विनम्र होकर बात करता हूँ, जिससे वह क्रोधित न हो जायँ। तो फिर उनके विषयमें मैं क्या कहूँ जो स्वभावसे शान्त नहीं हैं? इसी उपायका अवलम्बन कर मैं इस विशाल संस्थाकी परिचालना करता हूँ—पान्ता (शीतल होनेपर भी) फूँक मारकर उसको खाता हूँ। वर्तमानमें आप किसीको आदेश नहीं दे सकते अथवा शासन नहीं कर सकते, ऐसा करने पर परिणाम विपरीत होंगे तथा ढूँढने पर भी उस व्यक्तिका पुनः मिलना सम्भव नहीं होता।

संस्थान (मठ) का उद्देश्य

श्रील वामन महाराजने आगे कहा कि एक समय एक व्यक्तिने श्रील प्रभुपादसे प्रश्न किया, "आप इन युवकोंको गेरुआ वस्त्र देकर उन्हें ब्रह्मचारी क्यों बना रहे हैं? क्या वे सब समयके लिए ब्रह्मचारी होकर मठमें रहेंगे? वे यदि पुनः संसार मार्गमें लौट जाएँगे तो फिर क्या होगा? यदि ऐसा है, तो इस प्रकारके संस्थानकी स्थापना ही क्यों की जायँ? क्या ये सब वृथा नहीं है?

श्रील प्रभुपादने इसका उत्तर दिया, "देखिए, यदि वे लोग मठमें एक-दो वर्ष ही रहें अथवा एक-दो महीने भी रहें या एक-दो दिन ही रहें, इसमें हानि क्या है? वे महाप्रसादकी सेवा करते हैं, साधुओंके सङ्गमें हरिकथाका श्रवण करते हैं। वे लोग कोई चोरी, डकैती आदि पापकर्म तो नहीं कर रहे हैं। उनकी कोई कुभावना नहीं है। वे किसी पापी व्यक्तिका सङ्ग भी नहीं कर रहे हैं।

"साधारणतः एक व्यक्तिका सोलह आना (सौ प्रतिशत) समय ही व्यर्थ हो जाता है। यदि उसमेंसे हम चार आना (पच्चीस प्रतिशत) अथवा एक आना भी बचा लेते हैं, तो यह वास्तवमें लाभ है। नहीं तो सम्पूर्ण सोलह आना नष्ट हो जाता है। यदि वे कुछ समयके पश्चात् मठमें रहनेमें असमर्थ होता है, तो उसे सांसारिक जीवनमें जाने दीजिए। मैंने कमसे कम कुछ सुकृति बनानेमें तो उसकी सहायता की,

और बादमें वह पुनः उसी स्थानसे प्रारम्भ करेगा। कुछ ही दिन मठमें वास करनेसे भी उसका नित्य कल्याण ही होगा।

"इसीलिए मेरे संस्थानका उद्देश्य अर्थहीन नहीं है। यह विशाल संस्थान बहुत सारे लोगोंको लेकर गठित हुआ है, इसीलिए इसमें विभिन्न प्रकारकी चिन्ताधाराओंके लोगोंका होना स्वाभाविक है। यदि हम सभीके दोषोंको ही देखेंगे, तो किसीको भी मठमें रख नहीं सकते। यह सत्य है कि मठवासियोंके विभिन्न प्रकारके दोष हैं, परन्तु जैसे भी हो साधुसङ्गके प्रति उनका झुकाव है, यही उनका गुण है।

"भारतवर्षमें करोड़ों लोग वास करते हैं, सब भक्तिके मार्गमें नहीं आते, जगतके अन्य देशोंकी तो बात ही क्या कहें? कुछ ही लोग जिन्होंने मठमें साधुओंके सङ्गमें रहनेका निश्चय किया है, वे ही सबसे योग्य हैं। उनका यही गुण हजारों दोषोंसे भी बढ़कर है। यही गुण भविष्यमें उनके सर्वश्रेष्ठ कल्याणका कारण बनेगा। इसलिए जितने दिन भी वे मठमें रह सकते हैं, उसके लिए हम उनकी सहायता करते हैं। यदि वे हमारे साथ रहनेमें अति अक्षम होंगे, तो अपने-आप ही चले जायेंगे। वे लोग अनादि कालसे अत्यन्त दुःख-कष्ट सहन कर रहे हैं। जितने दिन वे मठमें साधुओंके सङ्गमें रहेंगे, उनकी करोड़ों जन्मोंमें हुई क्षतिकी पूर्ति होगी। अतः उन सभीको अपने नित्य कल्याणके लिए एक सुयोग दिया जाए। उनको नित्य कल्याणके मार्गसे वञ्चित करना उचित नहीं है।"

सर्वाकर्षक हरिकथा और असाधारण गुण

श्रील वामन महाराज असाधारण गुणोंसे सम्पन्न थे। गौड़ीय-सम्प्रदायके समस्त शास्त्रोंमें, विशेषतः श्रील प्रभुपादकी धाराके सभी शास्त्रोंमें उनका अखण्ड ज्ञान था। उनकी स्मरण शक्ति इतनी तीव्र थी जिस कारण वे असंख्य शास्त्रोंसे अनगिनत श्लोकोंको याद कर लेते थे। किसी भी विषयकी विश्लेषणात्मक और स्पष्ट रूपसे गम्भीर व्याख्या करते हुए वे हरिकथा कहते थे जिससे साधारण लोग सहज रूपसे कथाके अर्थको समझ सकते थे। एक विषयको समझानेके लिए वे बड़ी दक्षताके साथ शास्त्रोंसे उदाहरण प्रस्तुत करते थे। उनकी यह दक्षता असाधारण थी। हरिकथामें वे अति सूक्ष्म और गूढ़ सिद्धान्तोंको स्थापित करते थे। ऐसी हरिकथाएँ विरल हैं। अनेक वक्ता हरिकथा करते हैं, किन्तु उनकी कथाएँ साधारण होती हैं। परन्तु इनकी हरिकथा गम्भीर और तत्त्वपूर्ण होती थी।

श्रीकृतिरत्न गौड़ीय मठमें श्रीविग्रहोंके प्रतिष्ठा महोत्सवके समय वे दुर्गापुर आये थे और उन्होंने श्रीविग्रह-तत्त्वके सम्बन्धमें एक वक्तृता दी थी। वे सदैव गूढ़ विषयोंका अत्यन्त सूक्ष्म विवेचन स्पष्ट रूपसे करते थे। यह उनकी वक्तृताका एक विशेष गुण था। अधिकांशतः लोग अपनी विद्या, बुद्धि, पाण्डित्यके द्वारा अधिक आड़म्बरपूर्ण वक्तव्य प्रदान करते हैं, कठिन संस्कृत श्लोकोंका प्रयोग करते हैं, सिद्धान्तोंको जटिल रूपसे कहते हैं जो साधारण लोगोंके लिए समझना अत्यन्त कठिन होता है। परन्तु श्रील वामन महाराज सर्वदा गम्भीर और पारमार्थिक विद्या सम्बन्धी विषयोंको जैसे ब्रह्म, परमात्मा एवं कृष्ण-तत्त्व इत्यादिको इतने स्पष्ट और विस्तृत रूपसे वर्णन करते थे कि एक छोटा-सा बालक भी समझ सकता था। उनकी ऐसी असाधारण प्रतिभाके प्रति बहुत लोग आकर्षित हो जाते थे। इस प्रकार हजारों लोग उनके शिष्य हुए हैं। उन्होंने सैकड़ों ब्रह्मचारियोंको आश्रय प्रदान किया है और गृहस्थोंकी तो बात क्या कहें!

श्रीचैतन्य मठ, श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ, श्रीसारस्वत गौड़ीय मठ आदि अनेक मठ प्रत्येक वर्ष श्रीधाम (नवद्वीप) की परिक्रमाका आयोजन करते हैं, बहुत लोग उनमें भाग लेते हैं, परन्तु श्रील वामन गोस्वामी महाराजके मठसे [श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठसे] जो

परिक्रमाका आयोजन होता है, उसके साथ अन्य मठोंकी परिक्रमाकी तुलना नहीं की जा सकती। हमारे गौड़ीय सम्प्रदायने बहुत बड़े-बड़े वक्ताओंको और विश्वविजयी आचार्योंको देखा है, अनेक लोग महाराज (संन्यासी) हुए हैं, और उनमें अनेक आचार्य पदपर भी अभिषिक्त हुए हैं, परन्तु श्रील वामन महाराज जैसे असाधारण गुणोंवाले संन्यासी बहुत कम हैं। वे केवल एक महान् व्यक्तित्व और अद्वितीय सिद्धान्तविद् नहीं थे, अपितु एक असामान्य प्रचारक भी थे। उनके नाम (सज्जनसेवक ब्रह्मचारी) में ही उनके सारे गुण प्रतिफलित होते थे। वे सज्जन स्वभावयुक्त, अत्यन्त सरल और विशुद्ध हृदयके थे, क्योंकि वे अपनी सेवामें सर्वदा निष्कपट थे। मुझे उनका इतना अधिक सङ्ग प्राप्त नहीं हुआ, किन्तु जितना भी सङ्ग प्राप्त हुआ उससे मैं दृढ़ताके साथ कह सकता हूँ कि वे असाधारण वैष्णव थे।

आदर्श वैष्णव-धर्म एवं वैष्णवीय-आचरणमें प्रतिष्ठित

श्रील वामन गोस्वामी महाराज वैष्णवीय आदर्श अथवा आचरण आदिमें भी कठोर थे। श्रीवेदान्त समितिके आश्रित भक्तगण आदर्श वैष्णवीय-आचरण पद्धतिके कट्टर समर्थक हैं। मेरे गुरुदेव नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिकमल मधुसूदन गोस्वामी महाराज, जो श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रचारक थे, पहले जिनका नाम श्रीनरोत्तमानन्द ब्रह्मचारी था, श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपादने आशीर्वाद स्वरूप उनको 'भक्तिकमल' नामसे विदित कराया। वैष्णवीय आदर्श एवं आचरित धर्म निष्ठापूर्वक पालनके लिए श्रील प्रभुपादने अत्यन्त आनन्दित होकर मेरे गुरुदेवको आशीर्वाद दिया था। श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज श्रील प्रभुपादके कृपापात्र थे, वे श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके निडर प्रचारक थे, यह भी श्रील प्रभुपादका आशीर्वाद है।

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके आश्रित भक्तगण विशेषरूपसे चातुर्मास्य व्रत, एकादशी व्रत, प्रति पूर्णिमामें मस्तक-मुण्डन आदि विधियोंका निष्ठापूर्वक पालन करते हैं। हमलोग भी उसी प्रकार विधियोंका आचरण करते हैं। परन्तु दुःखकी बात है कि वर्तमान विभिन्न पारमार्थिक प्रतिष्ठान इन विधियोंका नियमित पालन नहीं करते हैं। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुरके चरणाश्रित अथवा अनुगतजनोंके लिए विशेषरूपसे उक्त आदर्शोंका अनुसरण करना अवश्य कर्तव्य है। गुरुवर्गके जीवनादर्श और आचरणों द्वारा प्रतिष्ठित सदाचार जो लोग ठीक-ठीक पालन नहीं करते, वे भक्तिजगत्में किसी भी दिन प्रतिष्ठित नहीं हो सकते। अतः पारमार्थिक जीवनमें उनके आदर्शोंका एकान्त रूपसे पालन करना उचित है।

आपने आचरे केह, ना करे प्रचार।
प्रचार करेन केह, ना करेन आचार॥
'आचार' 'प्रचार'—नामेर करह 'दुइ' कार्य।
तुमि—सर्वगुरु, तुमि—जगतेर आर्य॥

(श्रीचै॰च॰अ. ४/१०२)

[अर्थात् श्रीचैतन्य महाप्रभु नामाचार्य श्रील हरिदास ठाकुरसे कह रहे हैं—कोई नामभजनका आचरण करते हैं, परन्तु नाम-महिमाका प्रचार नहीं करते; अन्य कोई प्रचार करते हैं, पर आचरण नहीं करते। परन्तु आप आचरण और प्रचार दोनों कार्योंको कर रहे हैं, इसलिए आप सर्वगुरु हो, समस्त जगत्के आचार्य हो।]

इसके अतिरिक्त विभिन्न मठ-मन्दिरोंमें इन विधियोंका विक्षिप्त रूपसे पालन होते देखा जा रहा है। इस कारणसे बहुत प्रश्नोंका सामना करना पड़ता है। नवागत या श्रद्धालु भक्तगण प्रश्न करते रहते हैं—एक ही गौड़ीय मठमें इतने भिन्न-भिन्न नियम क्यों हैं? मेरे गुरुदेव श्रीश्रील भक्तिकमल मधुसूदन गोस्वामी महाराज सिले हुए (Stitch) वस्त्रोंको पहनकर अर्चन, आरती नहीं

करते थे। यहाँतक कि श्रीविग्रहोंका शृङ्गार करते समय भी ऐसे वस्त्र पहननेके लिए निषेध करते थे। प्रचण्ड शीतके समय भी किसी प्रकारके सिले हुए वस्त्रोंको पहननेके लिए निषेध करते थे। हम श्रील गुरुदेवके इस प्रकारके कठोर आदर्शोंका पालन करते आ रहे हैं। साधु-सन्तोंकी साधन-प्रणाली एक ही धारामें चलनी चाहिए, अन्यथा विशृङ्खला आकर शुद्धाभक्तिको लुप्त कर देगी। पारमार्थिक जीवनमें विशेषकर उच्छिष्ट एवं शौचाचार आदिके विषयमें यत्नवान् न होनेपर भगवत् चरणोंमें सेवापराध होता है, जिससे शुद्धाभक्ति ध्वंस होती है एवं सहजिया रूपसे जीवन निर्वाह करना होता है। उच्छिष्टादिमें लिप्त होकर भगवत् सेवा और वैष्णवसेवा करने पर उससे सृष्ट अपराधके फलस्वरूप दुरारोग्य व्याधि भोग करते हुए संसार-दशामें दुःखपूर्ण मुत्युके ग्रासमें ग्रसित होना होगा। विशेषकर स्त्रियोंके सम्बन्धमें यदि साधकगण सावधान नहीं होते हैं, तब अति अल्प आयुमें दुःसाध्य व्याधियोंसे पीड़ित होकर असमयमें विनष्ट हो जाएँगे। श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजकी हरिकथामें भी इन सभी विषयों पर बहुत चर्चा हुई है।

अङ्गार सदृशी नारी घृतकुम्भ समः पुमान्।
तस्मान्नारीषु संसर्ग दूरतः परिवर्जयेत्॥
सर्वथा परिहर्त्तव्य योषित्सङ्ग दूरन्वय।
योगिनामपि सर्वेषां किं चैव ऊर्ध्वरितसाम्॥

[अर्थात् नारी धधकती आगके समान है, पुरुष घीके कलशके समान है। इसलिए नारीका सङ्ग दूरसे ही त्याग करना चाहिए। योगीगण तथा ऊर्ध्वरिता मुनिगण भी इस विषयमें सर्वथा सावधान रहते हैं, तो अन्य साधारण व्यक्तियोंके विषयमें फिर कहना ही क्या?]

अतः समस्त प्रकारके आचरण ही धर्मकी नींव हैं। यदि हम शुद्ध आचरणोंसे उदास रहते हैं, तब साधन-भजनमें भी उदासीनता उपस्थित हो जाती है। अपने इस दुष्ट मनको जिस विषयमें अवसर दे देंगे, उस विषयमें वह हमें नियुक्त करेगा। इसलिए 'साधु सावधान', अपने दुष्ट मनको किसी दुर्बलतायुक्त स्थानपर नियुक्त न करें।

आचिनोति यः शास्त्रार्थमाचारे स्थापयत्यपि।
स्वयमाचरते यस्मादाचार्य स्तेन कीर्त्तितः॥

(वायुपुराण)

[अर्थात् जो व्यक्ति शास्त्रके गूढ़ तत्त्वोंको अपने आचरणोंसे स्थापित करते हैं, उनको आचार्य कहा जाता है।]

श्रील वामन गोस्वामी महाराज इस श्लोकके साक्षात् प्रतिमूर्त्ति स्वरूप थे। उनके द्वारा कथित और आचरित आदर्शमें आज भी बहुत मठवासी, ब्रह्मचारी, संन्यासी, शुद्ध गृहस्थ-भक्त भक्तिराज्यमें अग्रसर हो रहे हैं। वर्तमान पश्चिम बङ्गालके पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण किसी भी प्रान्तमें जाएँ, ग्राम-ग्राममें जाकर ढूँढने पर सुना जाता है कि वहाँपर भी श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिका प्रचार है तथा श्रील वामन गोस्वामी महाराजके बहुत शिष्य-शिष्यादि हैं। वे आचार-प्रचार दोनों कार्योंमें पारङ्गत थे। उनके महान चरित्रके विषयमें मुझे कुछ विशेष ज्ञान नहीं है, परन्तु मैंने जो देखा है और सुना है, उसका किञ्चित् मात्र वर्णन कर मेरे अति क्षुद्र चित्तको पवित्र करनेकी चेष्टा कर रहा हूँ। यह समस्त विश्व भगवत् नैवेद्य है और श्रीभगवद्-भक्त-भागवत-निवेदित प्राण परम वैष्णवप्रवर परमपूज्यपाद श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजके अभयचरणारविन्दको मस्तक पर धारणकर बहुत दुर्गत व्यक्तियोंका उद्धार हुआ है। मेरे समान दीनहीन व्यक्तिके प्रति कृपादृष्टि निक्षेपकर अपने श्रीचरण-सरोजमें स्थान प्रदान करें—यही प्रार्थनाकर मैं अपनी प्रणति-पुष्पाञ्जलि समर्पण कर रहा हूँ।

[श्रीश्रीभागवत-पत्रिका, वर्ष-२(२००५ई), संख्या-(७-८)से संग्रहीत अंशसे भी संयोजित एवं पुनःव्यवस्थित]

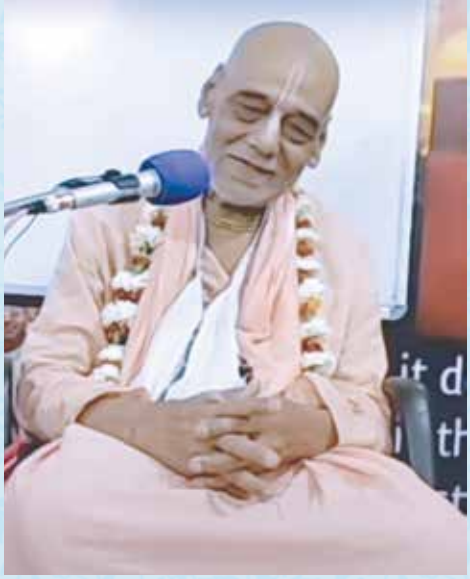

श्रील भक्तिवेदान्त

—पूज्यपाद श्रीश्रीमद्भक्तिरञ्जन सागर महाराज

(श्रीश्रीमद्भक्तिश्रीरूप सिद्धान्ती गोस्वामी महाराजके द्वारा प्रतिष्ठित श्रीसारस्वत गौड़ीय मिशनके वर्तमान आचार्य)

दीनताकी प्रतिमूर्ति

श्रील भक्तिवेदान्त वामन महाराज पैंतीस वर्ष तक श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज द्वारा प्रतिष्ठित श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके आचार्य रहे। वे मेरे प्रति बड़े स्नेहशील थे। वे सदैव कहते थे कि हरिभजन करनेके लिए महाप्रभुकी इस शिक्षाको पालन करना अत्यन्त आवश्यक है—

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥

(शिक्षाष्टकम्)

(सर्वपद-दलित अत्यन्त तुच्छ तृणसे भी अपनेको दीन-हीन नीच समझकर, वृक्षसे भी अधिक सहनशील बनकर, स्वयं अमानी होकर, दूसरोंको यथायोग्य सम्मान देकर निरन्तर श्रीहरिनाम-सङ्कीर्तन करना होगा।)

हमारे गुरुवर्गने इसी उपदेशको दोहराया है एवं श्रील वामन महाराजने इस पर विशेष बल दिया है, चाहे कोई मठमें हो या बाहर हो। उन्होंने कहा है कि हमारे आँख और कान होनेके कारण हम गलत देखनेको और गलत सुननेको बाध्य हैं, फिर भी हमें इन सब विषयोंका मनन नहीं करना चाहिए। यदि किसी भी घटना पर टीका-टिप्पणीसे बचे रहें, तो हम श्रीमन्महाप्रभुकी कृपा पा सकते हैं। यदि हमने कुछ गड़बड़ देखी या सुनी और यदि उसकी चर्चा करने लगे तो बहुत-सी समस्याएँ आ सकती हैं।

एक महान् रत्न

'वैष्णव चरित्र सर्वदा पवित्र'—श्रील वामन महाराजका चरित्र समस्त वैष्णवोचित दिव्य गुणोंसे सम्पन्न निष्कलङ्क था। दूसरोंके प्रति उनके व्यवहारमें सदैव दैन्य-विनय भाव और गम्भीर सम्मान झलकता था। उनके अप्रकटके समय मैं नवद्वीपमें था और कुछ भक्तोंके साथ उनको श्रद्धा पुष्पाञ्जलि अर्पित करनेके लिए गया। उनको जब समाधि दी जा रही थी, तो उनके दर्शनके लिए अनगिनत लोग सम्मिलित हुए थे, जो अति आश्चर्यजनक दृश्य था। वास्तवमें ही लग रहा था कि एक महापुरुष अप्रकट हुए हैं। श्रीरूपानुग गौड़ीय वैष्णव परम्पराके प्रति उनका निसन्देह बड़ा योगदान है। उन्होंने अंसख्य जीवोंको हरिनाम और दीक्षा प्रदान कर इस मार्ग पर आकर्षित किया है। यह कोई साधारण अवदान नहीं है। जब श्रील हरिदास ठाकुर इस जगतसे अप्रकट हो गये, तब श्रीमन्महाप्रभुने भक्तोंसे कहा था—

हरिदास आछिल पृथिवीर 'शिरोमणि'।
ताहा बिना रत्नशून्या हइल मेदिनी॥

हरिदास पृथ्वीके शिरोमणि थे, अभी उनके चले जानेसे धरती रत्नशून्य हो गयी। उसी प्रकारसे श्रील

वामन महाराजकी वैष्णवोचित गुणावली

[वर्ष २००५ई॰ में लिखित]

वामन महाराज भी पृथ्वीके शिरोमणि थे। संसारके लोग इस क्षतिको अनुभव नहीं कर सकते। किन्तु हमें इसकी कुछ अनुभूति है, क्योंकि जब हमारे गुरुदेव इस जगतसे अप्रकट हो गये थे, तब उनके श्रीचरणोंके आश्रय बिना हमने उनके अभावका कुछ अनुभव किया था।

हमारा अपूर्व सौभाग्य

हम इतने सौभाग्यवान् हैं कि हमें सद्गुरुके चरणोंका आश्रय मिला है। जगत्में बहुत गुरु हैं जो चार प्रामाणिक सम्प्रदायोंमें नहीं आते। उनके प्रचुर यशका कोई मूल्य नहीं है। *'सम्प्रदाय विहीना मन्त्रास्ते निष्फला मताः'*, एक प्रामाणिक सम्प्रदायमें आये हुए प्रामाणिक गुरुसे दीक्षाके माध्यमसे मन्त्र नहीं लेनेसे, मन्त्र निष्फल हो जाता है। श्री, ब्रह्म, रुद्र, सनक—इन चारों सम्प्रदायोंके अतिरिक्त किसी दूसरे सम्प्रदायसे मन्त्र लेनेसे उसका कोई मूल्य नहीं है। कलियुगमें ये चार सम्प्रदाय ही प्रामाणिक हैं। इसलिए जो इन चार सम्प्रदायोंका आश्रय ग्रहण करता है, अर्थात् इन सम्प्रदायोंके आचार्योंसे मन्त्र ग्रहणकर भजन करता है, वह कभी भी कृष्णके द्वारा उपेक्षित नहीं होता है।

हमारा सौभाग्य है कि हमने ब्रह्म-माध्व-सम्प्रदायका आश्रय लिया है, जो चारोंमें-से प्रमुख है। श्रीचैतन्य महाप्रभुने इसी सम्प्रदायमें श्रीईश्वर पुरी पादसे दीक्षा ली। यह सम्प्रदाय ब्रह्माजीसे आरम्भ हुआ है। यह सम्प्रदाय असीम शुभ फलोंको प्रदान करनेवाला है, किन्तु यह हमारे साधन-भजन पर निर्भर करता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि कृष्णमें थोड़ा-सा भी पक्षपातित्व है। उन्होंने स्वयं गीतामें घोषणा की है, *'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजयाम्यहम्'*—जो जिस प्रकार मेरा भजन करता है, मैं भी उसी प्रकार उसका भजन करता हूँ। इस बातको समझना आवश्यक है।

वाणीका आश्रय

इसलिए परम सौभाग्यसे जिन गुरुदेवको हमने प्राप्त किया है, उनके प्रति दृढ़ श्रद्धाके साथ हम भजन करें।

गुरु-मुखपद्म-वाक्य, चित्तेते करिया ऐक्य
आर ना करिह मने आशा।
श्रीगुरु-चरणे रति, एइ से उत्तमा गति
जे-प्रसादे पूरे सर्व आशा॥

हमने प्रामाणिक सम्प्रदायमें एक रूपानुग गुरुको प्राप्त किया है, इसलिए हमें बड़े यत्न और चेष्टा पूर्वक उनके उपदेशोंका आश्रय लेना चाहिए। ऐसे महान् गुरुकी सेवा करनेसे हम मायासे पार पा सकते हैं और इस ब्रह्माण्ड, विरजा, वैकुण्ठ, अयोध्या, द्वारका और मथुरा आदिको अतिक्रम कर वृन्दावनमें पहुँच सकते हैं। क्या यह साधारण सौभाग्य है? परन्तु मायाका प्रभाव देखिए! उसके प्रभावसे हम यह भूल जाते हैं कि हमें कैसा सौभाग्य प्राप्त हुआ है और मठवासियोंमें आपसी मतभेदके कारण

शत्रुभावापन्न हो जाते हैं। यही भगवानकी माया है। मेरी तुच्छ बुद्धिसे इसका प्रतिकार यही है कि हम नित्यानन्द प्रभुके चरणकमलोंको दृढ़ रूपसे पकड़ लें (दृढ़ करि धर निताइर पाय)।

गौड़ीय गगनमें सूर्यकी भाँति उदित गौड़ीय-आचार्यगण एकके बाद एक अस्त हो रहे हैं, जिससे गौड़ीय आकाशमें क्रमशः अन्धकार छा रहा है। उन आचार्योंने कहा है कि यदि उनकी शारीरिक अनुपस्थितिमें हम इस गौड़ीय मार्ग पर स्थिर रहना चाहते हैं, तो उनकी वाणी (उपदेशों) का आश्रय लें। यदि हम ऐसा करेंगे, तो कोई समस्या नहीं रहेगी, इस दोषमय कलियुगमें भी हमारे भयका कोई कारण नहीं रहेगा। इसलिए आश्रय लेनेपर बल दिया गया है। श्रीनरोत्तम दास ठाकुरने लिखा है, *"आश्रय लइया भजे, तारे कृष्ण नाहि त्यजे, आर सब मरे अकारण"* [अर्थात् जो आश्रय लेकर भजन करता है, उसको कृष्ण त्याग नहीं करते, जो बिना आश्रयके भजन करते हैं, उनका भजन व्यर्थ हो जाता है।] इसलिए हमें आनुगत्यमें रहकर ही भजन करना होगा।

इसलिए सद्गुरुके उपदेशोंका आश्रय लेना आवश्यक है। यदि धन, स्त्री, पूजा, प्रतिष्ठा, काम, क्रोध आदि मायाके प्रलोभनसे मोहित हो जायेंगे, तो हम अपने महान् सौभाग्यसे वञ्चित हो जायेंगे। मेरे गुरु-महाराज श्रील वामन महाराजकी भाँति ही उपदेश देते थे कि—"देखो, सुनो, परन्तु बोलो मत"। अपने कर्तव्य पथ पर आगे बढ़ते रहो। हमारा लक्ष्य है—वृन्दावन, गोलोक वृन्दावन, गौर-धाम, कृष्ण-धाम।"

श्रील वामन महाराजजीकी महिमा अनन्त है। उनका मेरे प्रति बड़ा स्नेह था, परन्तु सब समय उनके सङ्गमें रहनेका सौभाग्य मुझे नहीं मिला। इसलिए इन वाक्योंके साथ मैं उनके चरणोंमें पुष्पाञ्जलि अर्पित कर उनके अलौकिक आचार-विचारका स्मरण कर रहा हूँ।

[श्रीश्रीभागवत-पत्रिका, वर्ष-२(२००५ई), संख्या-(७-८)से उद्धृत एवं पुनःव्यवस्थित]

गुरुगौरववर्द्धनकृष्टिपरं गुरुकार्यविशारदशिष्यवरम्।
गुरुधर्मधुरन्धर वन्द्यपदं प्रणमामि च वामनदेवपदम्॥

श्रीगुरुपादपद्मके गौरव-वर्द्धनकारी, कृष्टिपरायण (श्रीगुरुके गौरवके प्रति अन्य व्यक्तियोंको निरन्तर आकर्षित करनेवाले), गुरुके अभीष्ट कार्योंको करनेमें निपुण, शिष्यश्रेष्ठ, गुरु-धर्मधुरन्धर(श्रीगुरुके द्वारा आचरित एवं प्रचारित धर्मके निर्वाहमें प्रवीण), वन्दित-चरण श्रील भक्तिवेदान्त वामन महाराजको मैं प्रणाम करता हूँ॥

शतवर्षमहोत्सवपूर्णदिने शतभक्तजनेड़ित-दिव्यगुणम्।
शतकीर्त्तिवरार्चित-दिव्यपदं प्रणमामि च वामन देवपदम्॥

आविर्भाव-शतवर्षपूर्ति महोत्सवके दिवसपर शत-शत भक्तोंकी स्तुति-पुष्पाञ्जलिके द्वारा जिनके दिव्य युगल चरणकमल शतकीर्त्तिपरायण हैं, उन श्रील भक्तिवेदान्त वामन महाराजको मैं प्रणाम करता हूँ॥

के जाने वैष्णव कोन् कुले अवतरे।
के जाने वैष्णवजन महाशक्ति धरे॥

किसी भी कुलमें जन्म लेनेपर भी वैष्णवजन महाशक्तिको धारण करते हैं—यह कौन जानता है?

के जाने गुरुत्व कोथा प्रकाशित हय।
श्रीवामन चरिते ताहा देख महोदय॥

गुरुत्व कहाँ प्रकाशित होगा, कौन जानता है? किन्तु हे महोदय! श्रीवामन गोस्वामीके जीवनचरितमें गुरुत्व प्रकाशित होते देखिये।

श्रीभक्तिवेदान्त-वामन-चरितामृत

—पूज्यपाद श्रीमद्भक्तिसर्वस्व गोविन्द महाराज

विद्यार विलास देख वामन-भाषणे।
सद्गुण वैभव बसे ताँर आचरणे॥

उनके भाषणमें आप विविध विद्याओंका विलास देख सकते हैं। उनके आचरणमें सद्गुणोंके वैभव निवास करते हैं।

गुरु-वैष्णवेर कृपा कि करिते नारे।
पतित तारिते प्रभु नरभाव धरे॥

गुरु-वैष्णवोंकी कृपा क्या नहीं कर सकती? पतितोंके उद्धारके लिए ही भगवान् [एवं उनके निजजन श्रीवामन प्रभु] नरभाव धारण करते हैं।

विष्णु-वैष्णव चरित्र अधोक्षज हय।
सेवोन्मुख जिह्वादिते हय त' उदय॥

विष्णु और वैष्णवोंका चरित्र अधोक्षज [इन्द्रियोंकी पहुँचसे परे] होता है। यह सेवापरायण जीवोंकी जिह्वा पर ही उदित होता है।

तर्के हय तिरोहित वैष्णव महत्त्व।
आध्यक्षिक गम्य नहे ताँहार गुरुत्व॥

तर्कसे वैष्णवोंकी महिमा तिरोहित हो जाती है। आध्यक्षिक [जड़ इन्द्रियोंके] ज्ञानपर निर्भर व्यक्ति उनके गुरुत्वको नहीं जान सकते।

पाण्डित्याद्ये नहे वेद्य वैष्णवेर कृत्य।
वैष्णव-महत्त्व जाने चैतन्येर भृत्य॥

पाण्डित्य आदिसे कोई वैष्णवोंके क्रिया-कलापको नहीं समझ सकता। श्रीचैतन्य महाप्रभुके दास ही वैष्णवोंका महत्त्व जानते हैं।

श्रीवामन-कीर्त्तिकथा अति अद्भुत।
सुकृतिवान् श्रवणे हय आनन्दित॥

श्रीवामन गोस्वामीकी कीर्तिका वर्णन अत्यन्त अद्भुत है। सुकृतिवान् व्यक्ति ही इसे श्रवणकर आनन्द प्राप्त करते हैं।

प्रभुपाद-कृपाधन्य कुले आविर्भूत।
बाल्य हैते वैष्णवेर स्नेहाशीष-युत॥

प्रभुपाद श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुरके कृपापात्रोंके कुलमें इनका आविर्भाव हुआ है। इसलिए बाल्यकालसे ही ये वैष्णवोंके स्नेहाशीषसे युक्त रहे।

प्रथम जीवने 'सन्तोष' नामधारी।
दीक्षाप्राप्त्ये 'सज्जनसेवक ब्रह्मचारी'॥

प्रारम्भिक जीवनमें इनका नाम 'सन्तोष' था। दीक्षाके बाद ये 'सज्जनसेवक ब्रह्मचारी'के नामसे परिचित हुए।

'भक्तिवेदान्त वामन' नाम यतिधर्मे।
ततो अभिषिक्त गुरु-मनोभीष्ट कर्मे॥

संन्यासके बाद इनका नाम हुआ—'श्रीभक्तिवेदान्त वामन'। संन्यासी होकर ये अपने गुरुदेवके मनोऽभीष्ट कार्योंमें निमग्न रहे।

गृहत्यागे नरोत्तमयति गुणवान्।
देहत्यागे धीर संन्यासी गुणायन॥

गृहत्यागमें ये गुणवान् नरोत्तम यतिके समान थे तथा देहत्यागमें धीर गुणोंके आधारस्वरूप संन्यासीके समान।

मायापुरे विद्यालये करि अध्ययन।
गुरुकृष्ण-सेवाव्रत करेन धारण॥

मायापुर स्थित विद्यालय (श्रीभक्तिविनोद इंस्टिट्यूट्) में अध्ययन करते हुए इन्होंने गुरु और कृष्णकी सेवाका व्रत धारण किया था।

श्रीवामन, त्रिविक्रम आर नारायण।
वेदान्त समितिर स्तम्भ—एइ तिन जन॥

श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज, श्रील भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम गोस्वामी महाराज और श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज—ये तीनों श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके तीन स्तम्भस्वरूप थे।

श्रीवामन, नारायण दीक्षा-शिक्षा-दाने।
जगत् वरेण्य इहा जाने विज्ञजने॥

विज्ञ व्यक्ति यह जानते हैं कि लोगोंको दीक्षा और शिक्षा दान करनेमें श्रीवामन गोस्वामी महाराज एवं श्रीनारायण गोस्वामी महाराज जगद्वरेण्य हुए हैं।

वामन-चरित बड़ अलौकिक शुनि।
कृष्णकृपा-प्रभावे सर्वज्ञ गुणमणि॥

मैंने सुना है कि श्रील वामन गोस्वामी महाराजका चरित्र बड़ा अलौकिक है। श्रीकृष्णकी कृपाके प्रभावसे ये सर्वज्ञ तथा गुणोंकी मणिस्वरूप थे।

परिव्राजक आचार्य महान्त चरित।
अकिञ्चन अहैतुकी कृपा सम्वलित॥

वे परिव्राजक थे, महान आचार्य थे, अकिञ्चन थे तथा अहैतुकी कृपा वर्षणकारी थे।

श्रुति-स्मृति-पञ्चरात्र-विधि मर्मचारी।
श्रेयःमार्ग प्रदर्शन कौशल विहारी॥

वे श्रुति, स्मृति और पञ्चरात्रकी विधियोंके मर्मका आचरण करनेवाले थे तथा श्रेयःमार्गका प्रदर्शन करनेमें कुशल थे।

सेवाधर्मे प्रशंसित वैष्णव सुजन।
गुर्वाशीष स्नेहधन्य निर्द्वन्द्वसदन॥

वैष्णव और सज्जन लोग आपके सेवाधर्मकी प्रशंसा करते रहते हैं। अपने गुरुका स्नेह और आशीर्वाद प्राप्त करके आप धन्य हुए हैं। आपके मठमें आप निर्विवादीय रहे हैं।

अमलवैराग्य ताँर स्वभावभूषण।
सुनीति सुरुचिपूर्ण भजन-जीवन॥

अमल वैराग्य आपके स्वभावका भूषणस्वरूप था। आपका भजन-जीवन सुनीति और सुरुचिसे परिपूर्ण था।

वैष्णवीप्रतिष्ठापुरे वसति ताँहार।
सौजन्य सौभाग्य ताँर औदार्ये प्रचार॥

आपका निवास वैष्णवी-प्रतिष्ठा रूपी नगरमें था। आपने सौजन्य और सौभाग्यपूर्वक औदार्ये [श्रीमन्महाप्रभुके उदार धर्म] का प्रचार किया है।

अमानी-मानदगुणे तिनि धन्यधन्य।
धैर्य सहिष्णुतागुणे जगत् वरेण्य॥

आप अमानी-मानद गुणके धनी होनेके कारण धन्यातिधन्य हैं, धैर्य और सहिष्णुता गुणोंसे जगत्पूज्य हैं।

गौरवाणी वितरणे गौड़ीय प्रधान।
राधार कैङ्कर्यरसे सरसजीवन॥

गौरवाणीका वितरण करनेमें आप गौड़ीयजनोंमें प्रधान हैं। श्रीराधाजीकी किङ्करता (दास्य) रूप रससे आपका जीवन सरस है।

बलेते अद्वैत, नित्यानन्द-धने धनी।
गदाधर कुलधर गौर पतिमानी॥

आप श्रीअद्वैताचार्यके बलसे बलवान, श्रीनित्यानन्दरूपी धनसे धनी, श्रीगदाधर पण्डितके कुलको धारण करनेवाले तथा श्रीगौरसुन्दरको पति (पालक) माननेवाले थे।

आदर्श आचार्य धर्मचर्चापरायण।
गोस्वामिकुलगौरव भक्तिरसायन॥

आप धर्म-चर्चापरायण आदर्श आचार्य, गोस्वामी कुलके गौरव तथा भक्तिके रसायन हैं।

रूपानुगभक्तिरस पाने दाने धन्य।
गौरधर्मगाने महाजन अग्रगण्य॥

रूपानुग-भक्तिरसका पान और दान करनेके कारण आप धन्य हैं, गौरधर्मका गान करनेवाले महाजनोंमें आप अग्रगण्य हैं।

ताँर सख्ये धन्य यत सतीर्थेर गण।
दास्ये धन्य सुकृति कुशल नरगण॥

आपके गुरुभ्रातागण आपके सख्यभावको प्राप्तकर धन्य हुए हैं, सुकृतिवान् व्यक्ति आपके दास्यको स्वीकारकर धन्य हुए हैं।

सिद्धान्त-विरोध आर पाषण्ड-दलने।
सुनिपुण श्रुतिधर बले विज्ञजने॥

विज्ञजन कहते हैं कि आप अपसिद्धान्त और पाषण्ड मतोंका दलन करनेमें सुनिपुण थे एवं आप श्रुतिधर भी थे।

'गौड़ीय वैष्णव अभिधान' नाम धरे।
जीवन्त मृदङ्ग फिरे जीव द्वारे द्वारे॥

आप मूर्तिमान 'गौड़ीय वैष्णव अभिधान' थे तथा जीवन्त मृदङ्ग स्वरूपमें जीवोंके द्वार-द्वारपर विचरणकारी थे।

कारुण्यकातरचित्त निन्दादोषशून्य।
अदोषदरशी दैन्यपूर्ण सभ्य मान्य॥

सज्जन लोग यह मानते हैं कि आपका चित्त करुणासे कातर है, आप निन्दादि दोषोंसे रहित, अदोषदर्शी एवं दैन्यसे परिपूर्ण थे।

गौड़व्रजनीलाचले यात्रामहोत्सवे।
भक्तिरङ्गे भक्तसङ्गे राजे कथोत्सवे॥

गौड़धाम, व्रजधाम और नीलाचल जगन्नाथपुरी धाममें यात्रादि महोत्सवोंमें आप कथा-उत्सवके माध्यमसे भक्तिरङ्ग एवं भक्तसङ्गके साथ सुशोभित होते थे।

ताँहार चरणाश्रित धन्य भक्तगण।
गौरकृष्ण-भक्तिरस करे आस्वादन॥

आपके चरणाश्रित भक्तगण धन्य हैं जो आपके आश्रयमें गौरकृष्ण-भक्तिरसका आस्वादन करते हैं।

गुरुकार्य समाधिया लये हरिस्मृति।
नित्यलीला-रसे भजे भागवती-गति॥

आप इस जगतमें अपने गुरुकार्यको सम्पूर्ण करके श्रीहरिके स्मरणमें मग्न रहने लगे, इस प्रकार आपने नित्यलीला-रसका भजन करते हुए भागवती गतिको प्राप्त किया।

हर्षशोके भक्तगण महोत्सव करे।
दिव्यगुण कीर्त्तिगाने आनन्द अन्तरे॥

आपकी आविर्भाव एवं तिरोभाव तिथिके अवसर पर भक्तगण हर्ष और शोकको प्रकट करते हुए महोत्सव करते हैं, आपके दिव्य गुण और महिमाओंका गान करते हुए अन्तरमें आनन्दका अनुभव करते हैं।

शतवर्षपूर्त्ति महोत्सव पूर्णदिने।
प्रणति कुसुमाञ्जलि निवेदि' चरणे॥

आपके आविर्भाव-शतवर्षपूर्ति महोत्सवके दिन मैं आपके श्रीचरणोंमें प्रणति-कुसुमाञ्जलिका निवेदन कर रहा हूँ।

शुभदृष्टि कर प्रभु दीनहीन जने।
जीवन सफल होक गुरु-गौर गाने॥

हे प्रभो! मुझ जैसे दीनहीनजन पर शुभदृष्टि कीजिए, जिससे गुरु और गौरका गुणगान करते हुए मेरा जीवन सफल हो जाए।

श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी

—पूज्यपाद श्रीमद्भक्तिविबुध बोधायन महाराज
(वर्तमान आचार्य, श्रीगोपीनाथ गौड़ीय मठ, श्रीधाम-मायापुर)

नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता-आचार्य नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज द्वारा निर्वाचित आचार्य थे। स्वभावसे ही श्रील वामन गोस्वामी महाराज अत्यन्त सरल थे एवं वे आन्तरिक रूपसे हमारे गुरुवर्गोंके पदाङ्कका अनुसरण करते हुए चलते थे। हमारे गौड़ीय-वैष्णव सम्प्रदायमें वे एक दुर्लभ और असाधारण आचार्य थे।

कोई नया ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है?

सन् १९९१ ई॰ में श्रीनवद्वीप-धाम-परिक्रमाके समय मेरे परमाराध्य गुरुदेव नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी ठाकुर श्रीधाम-मायापुर स्थित श्रीचैतन्य गौड़ीय मठमें अवस्थान कर रहे थे। एक दिन प्रातः काल ६ बजे दो संन्यासी श्रील गुरुदेवके भजन-कुटीरमें प्रवेशकर उनको दण्डवत् प्रणाम करने लगे। तब श्रील गुरुदेव ध्यानस्थ होकर गायन्त्री-मन्त्रका जप कर रहे थे। दो संन्यासियोंको दण्डवत् प्रणाम करते देखकर श्रील गुरुदेवने जिज्ञासा की—"आपलोग कौन हैं?" तब दोनों संन्यासियोंने उत्तर दिया—"हम आपके दास हैं।" वास्तवमें वे थे श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज एवं श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज। श्रील गुरुदेव उनके दर्शन कर अत्यन्त आनन्दित होकर कहने लगे—"आपलोग इतनी सुबह आ गये?" उसके बाद मैंने देखा कि श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठकी परिक्रमा पार्टीके हजार-हजार भक्तगण श्रीचैतन्य गौड़ीय मठमें प्रवेश कर रहे थे। श्रील गुरुदेवने उनसे कहा—"आपलोग दोनों पण्डित हैं। कोई नया ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है?" श्रील वामन गोस्वामी महाराजने कहा—"महाराज, हमारे कुछ नूतन ग्रन्थ अति शीघ्र ही आपके पास भेज दूँगा।" श्रील वामन गोस्वामी महाराजके समान ऐसे एक असाधारण आचार्यकी सरलता, दीनता एवं गुरुवर्गके प्रति श्रद्धा निवेदन दर्शनकर मैं आश्चर्यचकित हो गया था।

हरिकथा श्रवणका सौभाग्य

एक बार श्रील गुरुदेवने मुझे श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठके ग्रन्थ-विभागसे कुछ ग्रन्थ खरीदनेके लिए भेजा था। मठमें प्रवेश कर मैंने देखा कि श्रील वामन गोस्वामी महाराज हरिकथा परिवेशन कर रहे थे एवं असंख्य भक्तगण श्रवण कर रहे थे। मैं भी हरिकथाका श्रवण करनेके लिए आग्रही होकर वहाँपर बैठ गया। तब श्रील महाराज कह रहे थे—"चार प्रकारके भक्त देखे जाते हैं—आर्त्त, अर्थार्थी, जिज्ञासु और ज्ञानी। आर्त्तका अर्थ है जो आर्थिकरूपसे दीन और दरिद्र [जागतिक दुखोंसे पीड़ित] हैं, अर्थार्थी अर्थात् जो लोग जागतिक अर्थकी कामना करते हैं, जिज्ञासु अर्थात् जो लोग

महाराजकी आविर्भाव शतवार्षिकी पर पुष्पाञ्जलि

कौतुहलयुक्त अथवा अनुसन्धानकारी हैं एवं ज्ञानी अर्थात् जो लोग ज्ञानबुद्धिसे सम्पन्न व्यक्ति हैं।" उनसे इस प्रकार शास्त्रीय युक्ति सम्पन्न हरिकथाका श्रवणकर मैं अपनेको सौभाग्यवान् मानने लगा। परन्तु बहुत भक्तोंका समागम होनेके कारण मैं श्रील वामन गोस्वामी महाराजके निकट जानेके सौभाग्यसे वञ्चित रहा। श्रील गुरुदेवके निर्देशानुसार ग्रन्थोंका क्रयकर मैं हमारे मायापुर मठमें लौट आया।

आदर्श-वैष्णवकी प्रतिमूर्त्ति

अन्य एक घटना स्मरण हो रही है। सन् १९९५ई. में श्रीनवद्वीप-धाम-परिक्रमाके कुछ सप्ताह पूर्व एक दिन मैं अपराह्न ४ बजे श्रील वामन गोस्वामी महाराजके दर्शनके लिए श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें गया था। भक्तगण आनन्दपूर्वक मुझे उनकी भजन-कुटीरमें ले गये। मैंने लक्ष्य किया कि श्रील महाराजके सामने एक प्रदर्शन-फलक लगया गया था—'चरणोंका स्पर्श न करें।' श्रील महाराजने मेरे परिचय जाननेकी इच्छा की एवं मैंने अपना परिचय बताया। इसके बाद मैंने कहा—"महाराज, हमलोग अपने मठमें 'विश्व वैष्णव राजसभा' का आयोजन करने जा रहे हैं। क्या आप कृपापूर्वक उस सभामें उपस्थित हो सकेंगे?" इसके उत्तरमें श्रील महाराजने कहा—"हमारी परिचालना समितिमें ११ सदस्य हैं। उनमें-से मैं एक हूँ। अतः मैं अकेले कोई निर्णय नहीं ले सकता। यदि बाकी १० सदस्य अनुमोदन करते हैं, तो मैं अवश्य ही जाऊँगा।" तब मैं समझ सका कि श्रील महाराज मुझे शिक्षा दे रहें हैं कि किस प्रकार सहिष्णु होकर एक बड़ी संस्थाकी परिचालना करनी होती है। इस प्रकार श्रील वामन गोस्वामी महाराजने मुझे शिक्षा दी थी कि एक संस्थाकी परिचालना करनेके लिए संस्थाके प्रत्येक सदस्यके प्रति किस प्रकार दैन्य, नम्रता और सहिष्णु होकर चलना होता है। वे अत्यन्त कोमल एवं गुरुगम्भीर स्वरसे कथा बोलते थे। वे एक आदर्श वैष्णवकी प्रतिमूर्त्ति थे।

एक बार मैं श्रील गुरुदेवके साथ श्रीधाम वृन्दावनसे कोलकाता लौटते समय नई दिल्ली हवाई अड्डेपर गया था। प्रातःकाल हवाई अड्डे पर ही हम दोनोंने भक्तोंके साथ श्रील वामन गोस्वामी महाराजका दर्शन किया। मैंने श्रील महाराजसे पूछा—"आपलोग कहाँ जा रहे हैं?" उन्होंने कहा—"हम गोकुल महावनके दाऊजी मन्दिर जा रहे हैं।" तब मैंने सोचा कि श्रील महाराजके असंख्य शिष्य हैं, पर हवाई अड्डे पर उनकी अभ्यर्थना करनेके लिए कोई भी नहीं आये हैं। श्रील वामन गोस्वामी महाराजकी ऐसी सरलता थी कि वे कहीं भी पहुँचनेसे पहले किसीको भी बताते नहीं थे।

श्रील महाराजकी कथाओंका स्मरण एवं जीवनमें प्रयोग

एक दिन मैंने श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें श्रील वामन गोस्वामी महाराजकी भजनकुटीमें प्रवेशकर देखा कि कोई महिला भक्त उनसे कह रही थीं—"गुरुदेव, मेरे परिवारमें बड़ी समस्या खड़ी हो गयी है, मेरे पति मुझे हरिनाम करनेमें बाधा दे रहे हैं।" श्रील महाराजने मौनभावसे सब कुछ श्रवण करनेके

बाद कहा—"हिरण्यकशिपुने प्रह्लाद महाराजकी हत्या करनेकी चेष्टा की थी, तुम्हारी समस्या क्या उसी प्रकारकी है? वे क्या तुम्हें खौलते तेलमें फेंकनेकी चेष्टा कर रहे हैं? क्या वे तुमको पागल हाथीके पैरके नीचे रौंदनेकी चेष्टा कर रहे हैं? अथवा द्रौपदीके वस्त्रहरणके समान तुम्हारी समस्या है? हरिदास ठाकुरको २२ बाजारोंमें वेत्रसे आघात किया गया था, तुम्हारी समस्या क्या उसी प्रकारकी है?" तब उस महिला भक्तने कहा—"नहीं, नहीं, गुरुदेव।" श्रील महाराजने कहा—"तब क्यों चिन्ता कर रही हो? यदि भगवान्‌ने उस प्रकारकी कठिन परिस्थितियोंमें भी उन-उन भक्तोंकी रक्षा की है, तब वे निश्चय ही तुम्हारी रक्षा भी करेंगे। भगवान्‌के प्रति दृढ़ विश्वास रखकर हरिनाम करो।" आज भी जब मैं किसी समस्याका सामना करता हूँ, तो श्रील महाराजकी इन कथाओंका स्मरण हो जाता है एवं जीवनमें मैं स्वयं उनका प्रयोग करनेकी चेष्टा करता हूँ।

मेरे नित्य शिक्षागुरु

श्रील वामन गोस्वामी महाराजके साथ मेरी विशेष घनिष्ठता नहीं थी, किन्तु जब भी मुझे उनके दर्शनका सौभाग्य मिला है, तब मुझे कुछ नूतन वैष्णवीय अनुशासन सम्बन्धी शिक्षा प्राप्त हुई है। वे मेरे नित्य शिक्षागुरु हैं। वे सदैव हमारे साथ हैं और रहेंगे।

अन्तिम आश्रयसे वञ्चित

श्रीधाम-मायापुर स्थित श्रीगोपीनाथ गौड़ीय मठके नाट्यमन्दिरमें कार्तिक मासमें प्रातःकालीन कीर्तन करते समय मुझे संवाद मिला कि श्रील वामन गोस्वामी महाराज श्रीश्रीराधागोविन्दकी नित्यलीलामें प्रविष्ट हो गये हैं। तत्क्षणात् हमारे मठके कुछ भक्तोंको साथ लेकर मैं श्रील महाराजके दर्शनके लिए श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें गया था। मैंने सोचा था कि शीघ्र ही उनके दिव्य कलेवरको समाधि दी जाएगी। आधे घण्टेकी प्रतीक्षाके बाद श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठके सम्पादक श्रील भक्तिवेदान्त आचार्य महाराजने मुझे अवगत कराया—"हमने समस्त शिष्योंके निकट समाचार भेजा है, सभीके उपस्थित होनेपर कल समाधि कार्य अनुष्ठित होगा।" वहाँ मैंने अनुभव किया था कि एक-एक करके हम सभी आचार्योंको खो रहे हैं। श्रील वामन गोस्वामी महाराजके श्रीमुखनिःसृत शिक्षणीय वाणी हमें और श्रवण करनेको नहीं मिलेगी। श्रील महाराजका समाधिकार्य उसी दिन मध्यरात्रिको सम्पन्न हुआ था। अगले दिन प्रातःकाल इस संवादको श्रवणकर मैंने मन-ही-मन सोचा कि हम उनके दिव्य कलेवरका और दर्शन नहीं कर पायेंगे। उनके समाधि अनुष्ठानमें योगदान न कर पानेके कारण मन भारी हो गया था। श्रील वामन गोस्वामी महाराज हमारे समग्र वैष्णव-सम्प्रदायके अभिभावक थे। मेरे गुरुदेवके अप्रकटके बाद मैं सोचता था कि और एक आश्रयस्थल है, परन्तु उसी दिन बार-बार मुझे यह अनुभव हो रहा था कि मैंने उस शेष (अन्तिम) आश्रयको भी खो दिया।

हृदयके अन्तःस्थलसे प्रार्थना

हृदयके अन्तःस्थलसे मैं श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजके चरणकमलोंमें यह प्रार्थना निवेदित करता हूँ कि वे कृपापूर्वक मुझे आशीर्वाद करें, जिससे मैं उनके समान सर्वदा हरिनाम जप कर सकूँ एवं किसी भी परिस्थितिमें जीवनके अन्तिम क्षण तक श्रीकृष्णलीलाका स्मरण करते-करते हरिनाम करनेकी शक्ति और उत्साह प्राप्त करूँ।

गौड़ीय आचार्य-भास्कर ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री

श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजके स्मरणमें—

—पूज्यपाद श्रीमद्भक्तिवेदान्त साधु महाराज
(श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, श्रीधाम-नवद्वीप)

साधु-सज्जनोंकी सेवा ही जीवनका ध्यान-ज्ञान-व्रत

परमाराध्यतम परमकरुणामय श्रीश्रील गुरुपादपद्म श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता आचार्यकेशरी ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी प्रभुवरके श्रीचरणकमलोंमें असंख्य कोटि दण्डवत् प्रणति ज्ञापन करते हुए आज जिनकी आविर्भाव शतवर्षपूर्तिके उपलक्ष्यमें यह प्रबन्ध लिखने जा रहा हूँ, वे हैं श्रीश्रील गुरुपादपद्मके अन्तरङ्ग प्रिय-पार्षद गौड़ीय आचार्य-भास्कर ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज, जो एकसाथ ही विश्ववन्द्य आचार्य दैव-वर्णाश्रम-धर्मके संस्थापक श्रीगौड़ीय मठोंके आदि-प्रतिष्ठाता जगद्गुरु श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद तथा उनके अन्तरङ्गवर्य श्रीगौर-सारस्वत वाणीके निडर प्रचारक श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके सर्वोत्तम स्नेह-विग्रह हैं।

वैष्णवगण किसी प्राकृत जाति-कुलके अन्तर्गत नहीं हैं, इसलिए इस जगत्में उनकी जाति और कुल आदिका विचार अनावश्यक है। प्रपूज्यचरण श्रील महाराजके बचपनका नाम था सन्तोष, ब्रह्मचारी नाम था श्रीसज्जनसेवक ब्रह्मचारी। वे यथार्थमें सज्जनसेवक थे, साधु-सज्जनोंकी सेवा ही थी उनके जीवनका ध्यान-ज्ञान-व्रत। साधुश्रेष्ठ श्रीगुरुदेवकी सेवामें ही उन्होंने अपने जीवनको उत्सर्ग किया था।

शारीरिक कष्टोंको जलाञ्जलि देकर भी विरल सेवा-निष्ठा

जब वे अपने गुरुदेवके निर्देशसे भक्तिग्रन्थोंके प्रकाशनकी सेवामें व्रती हुए, तब अपने किसी शारीरिक कष्टकी चिन्ता न कर हस्त-पदचालित मुद्रण यन्त्रसे उनके श्रीहस्तकी एक अङ्गुलीके क्षतिग्रस्त होनेपर भी वे सेवासे पीछे नहीं हटे, बल्कि अत्यन्त उत्साहके साथ उन्होंने श्रीगौड़ीय-पत्रिकाके प्रकाशन और श्रीभक्तिग्रन्थोंकी मुद्रण-सेवामें विशेष निष्ठा प्रकाशित की।

एक समय चुँचुड़ा स्थित श्रीउद्धारण गौड़ीय मठमें श्रील महाराज ज्वरसे पीड़ित हुए, उस समय मठमें भोग रन्धन करनेके लिए सेवकका अभाव था। तब श्रील गुरु-महाराजने कहा—"सज्जन, इस समय तुम्हारे अस्वस्थ होनेसे नहीं चलेगा, तुमको स्वस्थ होना होगा, भोग-रन्धन सेवाका दायित्व आज तुमपर है, अन्यथा भगवान् और भक्तगण सभी भूखे रहेंगे।" यह सुनकर वे ज्वर-पीड़ित अवस्थामें भी श्रीभगवान्की रन्धन सेवा करने लगे। शारीरिक कष्टोंको भी जलाञ्जलि देकर इस प्रकारकी सेवा-निष्ठा जगत्में विरल है।

गौड़ीय-वैष्णव-सिद्धान्तकोष एवं वक्तृताका वैशिष्ट्य

वे गौड़ीय वैष्णव जगत्के अभिधान [सिद्धान्तकोष] स्वरूप थे। अपने सेवामय जीवनमें भी वे किस प्रकार शास्त्रोंके विभिन्न तत्त्वसिद्धान्तपूर्ण श्लोकोंको कण्ठस्थ कर लेते थे, सोचने पर अवाक् होना पड़ता है। यह श्रीगुरु-वैष्णव-भगवान्की कृपाके बिना सम्भव नहीं है।

समय-समय पर विशेष-विशेष प्रचार-क्षेत्रोंमें अथवा सभा-समितियोंमें इस अधमको श्रील वामन गोस्वामी महाराजके साथ जानेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उनमेंसे दक्षिण २४ परगणाके काठियाहाट स्कूलके प्रधान शिक्षक महाशयके द्वारा आयोजित सभामें मैंने विशेष आग्रही श्रोताओंको देखा—किस प्रकार उन्होंने हिन्दू तथा मुसलिम श्रोताओंके विविध प्रकारके प्रश्नोंके उत्तर दिये। श्रील महाराजके लिए सभाका निर्धारित समय दो घण्टे था, किन्तु उसके बाद भी श्रोताओंका निवेदन था कुछ और समय देनेके लिए। अन्तमें देखा गया कि श्रील महाराजने एक घण्टा और समय उनके लिए दिया। कुछ वर्षों बाद उस विद्यालयके प्रधान शिक्षक महाशय संसारका त्यागकर आश्रम जीवनमें आये तथा प्रभुपाद श्रील सरस्वती गोस्वामी ठाकुरके पार्षद श्रील भक्तिहृदय वन गोस्वामी महाराजके मठके आचार्य पदपर अभिषिक्त हुए, उनका नाम है श्रीमद् रसिकानन्द वन महाराज। इस प्रकार महाराजने अपने दल-बलके साथ दक्षिण २४ परगणाके पाठानखालि कॉलेज, ज्योतिषपुर उच्च विद्यालय, टेंराखालि कॉलेज, क्यानिं हरिसभामें श्रीराधागोविन्दजीके श्रीविग्रहोंकी प्रतिष्ठाके उपलक्ष्यमें आयोजित धर्मसभामें श्रीविग्रहतत्त्व और सनातन धर्मके सम्बन्धमें विशेष-विशेष वक्तव्य रखा था। कलियुग-पावन अवतारी श्रीचैतन्य महाप्रभुके आविर्भावकी पञ्चशतवर्ष-पूर्ति उत्सवके उपलक्ष्यमें पूर्व मेदिनीपुर जिलेके अन्तर्गत बलाईपाण्डा उच्च विद्यालयमें १०८ मृदङ्ग और १०८ शङ्खोंकी ध्वनिके माध्यमसे उद्बोधन अनुष्ठानका आयोजन हुआ था जिसके अन्तमें उन्होंने सनातन धर्मसभामें श्रीचैतन्य महाप्रभुके प्रेम, मैत्री और करुणाका वैशिष्ट्य स्थापित करते हुए श्रीचैतन्य महाप्रभुका महावदान्य अवतार, जगत्के कल्याणके लिए उनकी अमन्दोदय दया आदिके विषयमें जो भाषण दिया था, उसके द्वारा उन्होंने शिक्षित व्यक्तियों तथा सनातन धर्मानुरागी भक्तोंका हृदय-मन्दिर श्रीचैतन्यानुरागसे रञ्जित किया था।

समस्त सद्गुणोंसे सम्पन्न एवं अकल्पनीय खण्डन-शैली

श्रीमद्भागवतके पञ्चम स्कन्धमें एक श्लोक है—*'यस्यास्ति भक्ति-भगवत्याकिञ्चना सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः'*। श्रीभगवान्के प्रति जिसमें अकिञ्चन भक्तिका उदय हुआ है, वे देव स्वभावके हैं एवं उनमें समस्त सद्गुण प्रकाशित होते हैं। परम पूज्यपाद श्रील महाराजजी सर्वगुण-सम्पन्न थे। वे अत्यन्त शान्त स्वभावके, गम्भीर और मौन व्रतधारी थे, आवश्यकतासे अधिक बात नहीं बोलते थे। सदैव श्रीनाम-ग्रहणमें व्रती रहते थे एवं भक्तिग्रन्थोंका अनुशीलन करते थे। उनकी लेखनी विशेष वैशिष्ट्योंसे युक्त थी। वे किसी एक समय गुरुदेव श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके पत्र-लेखक थे। इसके साथ ही वे प्रभुपाद श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुरके पत्र और पत्रिकाओंके धारावाहिक पर्यालोचक थे।

इसके अतिरिक्त उनमें एक विशेष गुण परिलक्षित होता है कि बाह्यरूपसे अत्यन्त गम्भीर

या मौनव्रतधारी होनेपर भी जब वे श्रीहरिकथाका कीर्तन करते थे, तब घण्टों तक बिना किसी रुकावटके वक्तृता देते थे। जब सेवक आकर समयकी बात बताते थे, तब जाकर वे हरिकथाको विश्राम देते थे। उनके वक्तव्यमें एक विशेषता थी कि वे किसी अपसम्प्रदायके विरुद्ध-मतवादका खण्डन करनेके लिए प्रत्यक्षरूपसे कोई मन्तव्य नहीं देते थे, अपितु परोक्ष (indirect) रूपसे शास्त्रीय सिद्धान्तोंके आधार पर ऐसी शैलीसे खण्डन करते थे, जो अकल्पनीय है।

सतीर्थ-आन्तरिकता एवं आश्रितजनोंके लिए चिन्ता

वे श्रील गुरुदेवके अत्यन्त स्नेहास्पद थे। बचपनसे ही श्रील गुरुदेवके सङ्गमें रहकर वैष्णवोचित आचरणोंमें वे प्रतिष्ठित थे। श्रील महाराजमें असीम धैर्य, सेवानिष्ठा, शास्त्रीय तत्त्व-सिद्धान्तोंमें सुनिपुणता एवं आदर्श वैष्णवता आदि देखकर श्रील गुरुदेवने अपने द्वारा प्रतिष्ठित श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके परवर्ती आचार्य-सभापतिके रूपमें उनको मनोनीत किया था। श्रील गुरुदेवके अप्रकट होनेके बाद इस आचार्य-सभापति पदपर अधिष्ठित होनेपर भी उनमें उस पदका तनिक भी अहङ्कार नहीं था। समितिके किसी विषयपर कुछ निर्णय ग्रहण करनेके लिए उनसे पूछने पर वे कहते थे—"आपलोगोंका जो निर्णय है, मेरा भी वही निर्णय है। इसमें मेरा कोई अलग विचार नहीं है।" समितिके किसी सेवकके द्वारा यदि कुछ अन्याय आचरण हो जाता तो वे उसका मृदु भर्त्सन करते और उसे उपदेश देते—"श्रीपाद नारायण महाराज हैं, उनसे बोलो, वे समाधान करेंगे।" उन दोनों महाराजोंमें एक विशेष प्रकारकी आन्तरिकता थी। श्रील महाराजके द्वारा ऐसा निर्देश देनेका एक कारण था—कि उनके द्वारा आश्रित सेवकोंको उपदेश करने पर यदि वे न सुनें, तो उन (सेवकों) की गुरु-अवज्ञा हो जाएगी। उस अपराधसे उन सेवकोंको मुक्त रखनेकी भी वे चिन्ता करते थे।

स्नेहमय ज्येष्ठ गुरुभ्राता

प्रचार अथवा धर्मसभा आदिके अनुष्ठानमें रहते समय श्रील महाराज जब अपराह्णके समय कुछ मुक्त वातावरणमें नाम-संख्या पूर्ण करते हुए टहलते थे या कहीं बैठते थे, तब हम उनसे पिछले दिनोंकी हरिकथाके विभिन्न श्लोक और तात्पर्य आदिका विवरण जाननेकी चेष्टा करते थे। वे बड़ी सहजतापूर्वक धारावाहिकरूपमें उन समस्त विषयोंको हमें समझाते थे तथा अनुरोध करने पर किन्हीं विशेष श्लोकोंको अपने श्रीहस्तसे हमारी डायरीमें भी लिख देते थे। उनके श्रीहस्तलिखित कुछ श्लोक अब भी मेरी डायरीमें उनकी स्मृतिके रूपमें विद्यमान हैं।

अन्तमें एक-दो बात उल्लेख किये बिना नहीं रह पा रहा हूँ। श्रील गुरुदेवके अप्रकटके बाद हम प्रथमतः अपनेको बहुत असहाय मान रहे थे, परन्तु अगले क्षण सोचने लगे कि ज्येष्ठ गुरुभ्रातागण श्रीगुरुके समान, उनके प्रतीक हैं, उन लोगोंकी छत्रछायामें रहने पर प्रखर मायामय रौद्रताप[ज्वाला]का निवारण होगा। वास्तवमें उन ज्येष्ठ गुरुभ्रातागणोंकी असीम करुणासे पचपन वर्ष बीत गये, जीवनका शेष समय श्रील गुरु-वैष्णव और भगवान्‌की अपार करुणासे सेवोन्मुख स्मरण-मनन आदिके माध्यमसे व्यतीत कर सकने पर इस जीवनको सार्थक मानूँगा। प्रबन्धके उपसंहारमें श्रीहरि-गुरु-वैष्णवोंकी कृपा ही साधन-भजनमय जीवनमें सहायक-सम्बल हो—यही प्रार्थना करते हुए लेखनीको विराम दे रहा हूँ।

निवेदन इति।

—श्रीगुरु-वैष्णव-दासानुदास

श्रीभक्तिवेदान्त साधु

जगद्गुरु नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री

श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजकी

संक्षिप्त जीवनी

ब्रह्माण्ड भ्रमिते कोन भाग्यवान् जीव।
'गुरुकृष्ण'-प्रसादे पाय भक्तिलता-बीज॥
ताते कृष्ण भजे, करे गुरुर सेवन।
मायाजाल छुटे, पाय श्रीकृष्णचरण॥

(श्रीचै॰च॰म १९/१५१)

जिनकी कृपाके एक कणके भी समान मूल्यका वैभव इस ब्रह्माण्डमें नहीं है—जिनके कृपाकणके सामान्य स्पर्शसे चतुर्वर्ग [धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष] का नशा और रात्रि दूरीभूत हो जाती है—चित्कण जीव हृदयाकाशमें ब्रह्मानन्द-धिक्कारी चिदानन्दका सन्धान प्राप्त करता है—ब्रह्माण्डको भेदनेवाली भक्तिकल्पलताका बीज रोपित होकर माधुर्य-कादम्बिनीकी भक्तिविनोद-धारामें अभिषिक्त होता है, वे ही 'गुरुकृष्ण' हैं। *"गुरुरूपे कृष्ण कृपा करेन भक्तगणे"* अर्थात् "श्रीकृष्ण गुरुरूपमें भक्तोंपर कृपा करते हैं"—श्रीकृष्णकी कृपा जिनके माध्यमसे समर्पित जीवोंको प्राप्त होती है, वे ही 'श्रीगुरु' कृष्णवस्तु कहलाते हैं और उनको ही 'गुरुकृष्ण' या 'सेवक-भगवान्' कहा जाता है। जो कृष्णवस्तु नहीं हैं, उनमें कभी भी वैसा गुरुत्व नहीं रह सकता।

कर्मीगुरु, ज्ञानीगुरु या योगीगुरुकी बात तो दूर रहे—'यह तो बाहरकी बात है', केवल शब्दशास्त्रमें पारङ्गत भगवत्-अनुभवहीन 'सराग-वक्ताओं'में अज्ञदृष्टिसे जो गुरुत्व कल्पित होता है, उसे वत्सहीन गायके तुल्य कहकर शास्त्रोंमें घोषणा की गयी है। श्रीगौरकृष्णने जिनको आत्मसात् किया है, वे ही 'कृष्णवस्तु'-रूपमें गिने जाते हैं, वे श्रीगौर-आज्ञा-प्राप्त महाभागवत ही 'गुरुकृष्ण'-रूपमें श्रीगौर-मनोऽभीष्टको जगत्में स्थापित करनेमें समर्थ हैं। सर्वाराध्य-तत्त्व श्रीकृष्णकी अपेक्षा भी उन श्रीगुरुकृष्णकी पूजा अधिक महिमायुक्त होती है—अन्यान्य युगोंमें प्रकाशित गुरुतत्त्वकी अपेक्षा इस धन्य कलियुगमें 'गुरुकृष्ण'-तत्त्वकी महिमा अधिक है, इसमें क्या सन्देह है?

"मायामुग्ध जीवेर नाहि स्वतः कृष्णज्ञान" अर्थात् "मायामुग्ध जीवको स्वतः ही कृष्णज्ञान नहीं होता"—यह देखकर भगवान्‌ने जिस प्रकार कृपा करके जगत्में वेद-पुराणादि समस्त शास्त्रोंका प्रकाश किया है, उसी प्रकारसे शास्त्रीय वाणीके आचार-प्रचार करनेवाले निजगणोंको भी प्रकाशित किया है। अन्यथा शास्त्र-वाणी शास्त्रोंके भीतर ही आबद्ध रह जाती। भगवान्‌के निजजन इसलिये कपट मनुष्य-वेशमें मनुष्य-कुलमें जन्म ग्रहण करते हैं।

प्रारम्भिक जीवन

नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजके परम-पावन जीवनचरित्रकी आलोचना करके देखा जाता है, वे इस प्रकारके ही भगवान्‌के द्वारा प्रेरित एक महापुरुष हैं। उनके कुछ गुरुभाइयोंको अनेक बार बोलते सुना गया है—"हम लोग भी जब इतने दिनोंमें उनको

ठीकसे समझ नहीं पाये, तब तुम[चरणाश्रित] लोग किस प्रकारसे उनको जानोगे?" इसी बातसे मनमें विचार आता है कि श्रीचरितामृतमें कही गयी यह वाणी वास्तवमें ही किस प्रकारसे सत्य है—*"अप्राकृत नहे कभु प्राकृत गोचर।"* अर्थात् "अप्राकृत वस्तु कभी भी प्राकृत इन्द्रियोंके गोचर नहीं होती है।"

इसलिये इस विषयमें उनकी कृपा प्रार्थना ही एकमात्र उपाय है और उन करुणामयकी करुणा ही हमारा एकमात्र सहारा है।

श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज ८ पौष १३२८ बङ्गाब्द (२७/१२/१९२१ ईसवी), शुक्रवार कृष्णा-नवमी तिथिको कृतार्थ करके इस धरतीपर आविर्भूत हुए थे। उस समय अविभक्त भारतवर्षके पूर्व बङ्गालमें खुलना जिलेके (वर्तमानमें बाङ्लादेशके बागेरहाट जिलाके) अन्तर्गत पिलजङ्ग ग्रामके अधिवासी श्रीसतीशचन्द्र घोष महाशय और श्रीमती भगवती बाला देवीको उन्होंने पिता-मातारूपमें अङ्गीकार किया था। उनके नाना श्रीव्रजेन्द्र नारायण रायचौधुरी उस जिलेके अन्तर्गत मौभोग (मघिया) नामक अञ्चलके सुप्रसिद्ध जमींदार थे। शिशुकालमें श्रील वामन गोस्वामी महाराजका नाम था—श्रीसन्तोष। वास्तवमें ही उनका दर्शन और आचरण सभीके लिये अत्यन्त सन्तोषजनक था। वे द्वितीय सन्तान होनेपर भी चारों भाइयोंमें सबसे ज्येष्ठ थे।

श्रील वामन गोस्वामी महाराज जिस पारमार्थिक परिवेशमें आविर्भूत और ललित-पालित हुए थे, वह सम्पूर्णरूपसे शुद्ध-गौड़ीय विचारधारासे परिपूर्ण था। उनकी माता श्रीभगवती देवी जगद्गुरु श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादकी चरणाश्रिता थीं। उनकी बुआ श्रीयुक्ता निर्मला बाला बाल-विधवा होकर अपने पिताके घरमें ही रहती थीं। वे भी श्रीश्रील प्रभुपादकी चरणाश्रिता थीं। श्रील महाराज उनकी बुआके ही अधिक स्नेहके पात्र थे। उनके एकमात्र चाचा श्रीवीरेन्द्र थे, वे भी श्रील प्रभुपादके चरणाश्रित थे और बादमें वे 'श्रीवीरचन्द्र दास ब्रह्मचारी' नामसे मायापुर श्रीचैतन्य मठमें मठवासी हुए थे। परवर्तीकालमें वे ही त्रिदण्डीस्वामी श्रीमद्भक्तिकुशल नारसिंह महाराजके नामसे परिचित हुए। उनके पिता वर्ष १९४८ई. में जगद्गुरु श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजसे हरिनाम और दीक्षामन्त्र ग्रहण करके श्रीसर्वेश्वर दासाधिकारीके नामसे परिचित हुए थे। श्रील महाराजके अन्य तीन भाइयोंमें-से तीसरे और चौथे भाई श्रीनिमाइचरण ब्रह्मचारी और श्रीसुबलसखा दासाधिकारी, दोनों ही जगद्गुरु श्रील केशव गोस्वामी महाराजके ही चरणाश्रित थे। इस प्रकार श्रील वामन गोस्वामी महाराजका आविर्भाव पारमार्थिक विचारसे ओत-प्रोत वंशमें हुआ था।

श्रीधाम-मायापुर आगमन

श्रील वामन गोस्वामी महाराजने अपने क्षेत्रके एकमात्र विद्यालय 'टाउन नोयापाड़ा इंग्लिश हाईस्कूल'में बाल्यकालमें अध्ययन किया था। शिशुकालसे ही वे अत्यन्त शान्त, विनयी, अनुगत और अत्यन्त मेधावी होनेके कारण सहजरूपसे ही सबके विशेष स्नेहके पात्र थे। पाँचवीं श्रेणीसे उत्तीर्ण होनेके बाद जब उन्होंने सुना कि उनके क्षेत्रसे प्रति वर्षकी भाँति उस वर्ष भी श्रीगौरजयन्तीके उपलक्षमें भक्तगण श्रीनवद्वीप-धाम-परिक्रमामें सम्मिलित होने जा रहे हैं, तब उन्होंने भी अपने भीतरमें उस नित्य आकर्षणको अनुभव करके उन भक्तोंके साथ श्रीमायापुर धाममें जानेकी अभिलाषा व्यक्त की। उनके घरमें तो इस प्रकारका पारमार्थिक वातावरण विद्यमान था ही, और उसके ऊपर वे सभीके स्नेहके धन(पात्र) थे और ऐसी बालहठ प्रकाशित करनेपर भला कौन उनको मना कर सकता था? मात्र थोड़े दिनोंकी ही तो यात्रा थी। किन्तु कौन जानता था कि यह बालक पुनः कभी भी उस घरमें लौटकर नहीं आयेगा। यह निश्चित किया गया कि बुआके साथ ही बालक

सन्तोष यात्रियोंके परिचालक श्रीविष्णुपद दासाधिकारी 'भक्तिसिन्धु' प्रभुके आनुगत्यमें श्रीमायापुरमें जायेंगे। तब बङ्गाब्द १३३८, १९३१ई. में बालक सन्तोषने केवल नौ वर्षकी आयु पार की थी। उनके चाचा तब सरकारी सर्वे-ऑफिसके सर्वे-सम्बन्धी कार्यको छोड़कर मठवासी होकर श्रीमायापुरमें अवस्थान कर रहे थे। चाचा और बुआके साथ बालकने समस्त नौ-द्वीपोंकी परिक्रमा की और श्रील सरस्वती प्रभुपाद और उनके गणोंसे प्रचुर हरिकथा श्रवण की। साथ-ही-साथ उन्होंने उस समयके श्रीचैतन्य मठके मठरक्षक तथा 'माँ' कहलानेवाले सुपरिचित श्रील नरहरि सेवाविग्रह प्रभु एवं मठके Estate Manager (भूसम्पदा प्रबन्धक) श्रीविनोदविहारी कृतिरत्न प्रभुका स्नेहमय सान्निध्य और उनका प्रचुर स्नेहाशीर्वाद प्राप्त किया। उसी वर्षकी फाल्गुनी पूर्णिमाके दिन ही श्रीमायापुरमें श्रीविनोदबिहारी ब्रह्मचारी प्रभुके प्रयाससे श्रीभक्तिविनोद इंस्टिट्यूट आरम्भ हुआ था—श्रील सरस्वती प्रभुपादने उसका उद्घाटन किया था। यह सबकुछ देखकर बालक सन्तोषने मन-ही-मन पुनः घर न लौटनेका सङ्कल्प किया। वे अब अपने निज-स्थानमें और निज-अभिभावकोंके पास आ गये थे, तब फिर साधारण व्यवहारिक जीवनमें पुनः लौटनेका प्रश्न ही नहीं रहा। पारमार्थिकता ही उनका नित्यसिद्ध स्वभाव और श्रीगौरजनोंका आनुगत्य ही उनका स्वधर्म था।

मठवासका सङ्कल्प

श्रीनवद्वीप-धाम परिक्रमा समाप्त होनेपर सभी जब अपने-अपने स्थानको लौट रहे थे, तब बालक सन्तोष वहीं रहनेके लिये अटल हो गये। 'यह क्या!'—बुआके सिरपर मानो वज्रका आघात हो गया हो। उन्होंने कितनी बार ही उनसे विनम्र विनती की, कितना ही उनको 'बाबा, प्रिय-बच्चा' कहकर समझानेका प्रयास किया, किन्तु सब कुछ निष्फल हो गया। अन्तमें चाचा श्रीवीरेन्द्र प्रभुने ही बालकके पक्षमें होकर अपनी बहनको समझा-बुझाकर घरमें वापस भेज दिया। इसके बाद सन्तोषके माता-पिता व्याकुल होकर तुरन्त वहाँ आये, किन्तु बालकके पर्वतके समान दृढ़ सङ्कल्पको उनकी समस्त आर्त्ति, अश्रुपात, तनिक भी हिला नहीं सके। कोई और उपाय न देखकर श्रीवीरचन्द्र प्रभुने उनको सान्त्वना दी—"सन्तोष यहाँ रहकर पढ़ाई-लिखाई करेगा। यहाँ एक नया उच्च विद्यालय आरम्भ हुआ है, उसमें वह पारमार्थिक विद्या भी लाभ कर सकेगा। आप बीच-बीचमें आकर उससे मिलते रहना। यहाँपर उसको कोई भी असुविधा नहीं होगी। विद्यालयमें शिक्षा समाप्त होनेपर मैं समझाकर उसे घर वापस भेज दूँगा।" एक तो उनके पिता-माता अत्यन्त धार्मिक स्वभावके थे, उसके ऊपर उनके अपने भ्राता और साथमें श्रीनरहरि प्रभु, श्रीविनोदबिहारी प्रभु आदिके बहुत समझानेपर उन्होने सोचा कि उनका सन्तोष अभी इनके निकट रहकर ही सुखी रहेगा, इसमें चिन्ताकी कोई बात नहीं है।

श्रीसन्तोष बहुत आनन्दसे मूल मठराज श्रीचैतन्य-मठमें वास करने लगे। वे अपने जन्मस्थानके लिये कुछ भी आकर्षण अनुभव नहीं करते थे। उनके माता-पिता, स्नेहमयी बुआ, खेलकूदके साथीगण, खेलकी सामग्री, उनके लिये ही उनके आङ्गनमें बँधा एक छोटा घोड़ा जिसकी पीठपर बैठकर वे बड़े आनन्दसे घूमते थे—ऐसी कोई भी स्मृति उनको एक क्षणके लिये भी दुर्बल नहीं कर पायी थी। श्रीगौरसुन्दरका आविर्भाव-स्थान श्रीमायापुर ही अब उनका आदिस्थान था एवं श्रीभक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपाद और उनके गण ही उनके वास्तविक माता-पिता सब-कुछ थे। इसके द्वारा ही जाना जाता है कि ये बालक कोई साधारण बालक नहीं थे, अपितु श्रीमन्महाप्रभुके ही निजगणोंके एक जन थे।

श्रीभक्तिविनोद इंस्टिट्यूटमें अध्ययन, समस्त वैष्णवोंकी सेवा एवं हरिनाम प्राप्ति

उसके बाद यथा-समयमें सन्तोष श्रीविनोदबिहारी प्रभुकी व्यवस्थासे श्रीभक्तिविनोद इंस्टिट्यूटमें भर्ती हो गये। अति तीक्ष्ण बुद्धिके कारण वे शीघ्र ही समस्त शिक्षक-मण्डलीके अति प्रिय हो गये। शिक्षकगण विद्यालयमें पुस्तकसे जब जो पाठ करते थे, उसे श्रवण करनेमात्रसे ही वे उसे हृदयङ्गम कर लेते थे—पुनः उनको उन सब पुस्तकोंको देखनेकी कोई भी आवश्यकता नहीं होती थी। उनके इस असाधारण गुणको देखकर सभी अत्यन्त विस्मित हो गये। श्रील प्रभुपादके श्रीमुखसे हरिकथा श्रवण करके वे वैसे-का-वैसा ही अन्योंको सुनाते थे। श्रील प्रभुपाद भी अपनी वक्तृता इस प्रकार नेत्र-प्रिय बालकके मुखसे जैसे-के-तैसे श्रवण करके अति आनन्दित होते थे। विद्वान व्यक्तियोंके निकट एक मेधावी बालक स्वाभाविकरूपसे ही अन्य सभी बालकोंकी अपेक्षा विशेषरूपसे प्रिय हो जाता है, इसलिये बालक सन्तोष श्रील प्रभुपाद एवं उनके सभी विद्वान शिष्योंके अत्यन्त स्नेहके पात्र हो गये। किन्तु बालक सन्तोषका एक और विशेष गुण था—उनकी अकपट सेवा-प्रवृत्ति—इसी गुणके कारण ही उन्होंने विशेषरूपसे उन सभीके हृदयको जय कर लिया था। ब्राह्म-मुहूर्तमें सबके उठनेसे पहले ही प्रतिदिन वे श्रील नरहरि प्रभुके साथ उठकर सभी पैखाना-घरोंको साफ करनेसे आरम्भ करके बगीचेसे पुष्पचयन, सब्जी काटकर प्रस्तुत करना, संन्यासी-ब्रह्मचारी आदिके कमरोंको साफ करना, उनके कपड़ोंको धोना और धूपमें सुखाना तथा उनको तय करके कक्ष-कक्षमें यथास्थान अच्छेसे रखना, सभी कमरोंमें घड़ेमें पीनेका जल भरकर रखना, उनके आचमन पात्रको घिसकर माँजकर चमकाकर रखना—आदि सेवाकार्योंको अकेले ही सभीसे अज्ञातरूपसे किन्तु अति सुन्दररूपसे समापन करते। उस समयमें श्रीचैतन्यमठमें वास करनेवाले ऐसे कोई संन्यासी या ब्रह्मचारी नहीं थे, जिनकी उन्होंने सेवा न की हो। जिन्होंने गृहमें रहते हुए स्नेहमय पिता, स्नेहमयी माता-बुआके अतिशय स्नेहके कारण कोई कार्य नहीं किया था, उनको यह सब सेवाकार्य किसने कब सिखाया, अथवा यह क्या उनके प्राचीन किसी अभ्यासकी ही अविच्छिन्न धारा है? वस्तुतः इससे ही श्रील प्रभुपाद और उस समयके श्रीचैतन्यमठकी चेतनमयी वाणीके धारक-वाहक सेवकगणोंने उनके नित्यसिद्ध सेवामय स्वरूपका परिचय पाकर उन्हें अपने ही गणोंमें एक समझा। यहाँ तक कि एक बालकके मुखमें सम्पूर्ण गीता, वेदान्त-सूत्र आदि कण्ठस्थ देखकर, और उसके ऊपर उसकी अकपट सेवावृत्तिको देखकर श्रील प्रभुपादने मायापुरमें रहनेके समयमें सन्तोषको अपने निकट रहनेका अधिकार दिया था। श्रीसन्तोष श्रील प्रभुपादके वस्त्रोंको धोना, अङ्ग-सम्वाहन करना, ज़मीनसे ताजे इकट्ठे किये हरे चने छीलकर प्रभुपादको खिलाना—ये सब सेवा करते थे। वर्ष १९३६ ई. के अगस्त महीनेमें श्रील प्रभुपादने परम सन्तुष्ट होकर श्रीसन्तोषको हरिनाम-महामन्त्र प्रदान किया। श्रील वामन गोस्वामी महाराजके वचनमें—"श्रील प्रभुपादसे हरिनाम प्राप्त व्यक्तियोंके मध्य सम्भवतः मैं ही सबसे अन्तिम व्यक्ति हूँ।"

जागतिक शिक्षामें अरुचि एवं श्रीगुरु-वैष्णवोंका आनुगत्यमय जीवन

१ जनवरी १९३७ई. को श्रीचैतन्य-मठ और विश्वव्यापी सभी गौड़ीय-मठोंके मूल प्राणपुरुष परमहंसकुलगुरु श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपादने श्रीश्रीगान्धर्विका-गिरिधारीकी निशान्तलीलामें प्रवेश किया। श्रील प्रभुपादके द्वारा निर्मित ट्रस्टी-बोर्डने उस समय समस्त मठोंके सेवाकार्योंकी निरन्तरता बनाए रखते हुए आचार्य-पद आदि विभिन्न पदोंपर

उपयुक्त व्यक्तियोंको अभिषिक्त किया। श्रीविनोदबिहारी कृतिरत्न प्रभु उस समय General Superintendent के पदपर नियुक्त हुए थे। उस वर्ष श्रीसन्तोषने 'श्रीभक्तिविनोद इंस्टिट्यूट' से कृष्णनगरमें अनुष्ठित माध्यमिक परीक्षामें भाग लिया और यथारीति प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण हुए। इसके बाद उन्होंने और किसी अभक्ति [जड़विद्या] परक महाविद्यालयमें जाकर अथवा जागतिक विद्याका अनर्थक अनुशीलन करनेकी इच्छा नहीं की। वस्तुतः नित्य अभिभावकगणोंके आनुगत्यको छोड़कर भगवद्भजनमें बाधास्वरूप मायाके वैभवरूपा जड़विद्याके अनुशीलनके द्वारा संसारमें एक भारवाही गधेकी भूमिकाका अवलम्बन करना चैतन्यवाणीके नित्यसेवकके द्वारा कैसे सम्भव है? ब्रह्मा-शिवादि देवतागण नित्यकालसे जिस विद्याके अनुशीलनमें रत हैं, उन सब विद्याओंकी भी जो पराकाष्ठा—श्रीमद्भागवत ही जिनका सर्वस्व है, उनकी तो किसी भी प्रकारकी चर्चा-वार्ता अथवा अन्य किसी शिक्षामें रुचि ही उत्पन्न नहीं होती है। श्रीसन्तोषने जड़विद्या-अनुशीलनसे छुट्टी लेनेकी बात अपने उस समयके एकमात्र अभिभावक श्रीविनोदबिहारी कृतिरत्न प्रभुसे कही और वे भी इस विचारसे अत्यन्त सन्तुष्ट हुए।

स्वयं श्रील वामन गोस्वामी महाराजजीके श्रीमुखसे इस सम्बन्धमें सुना जाता है—"श्रीचैतन्य मठमें उस समय मेरे जैसे अनेक बालक रहते थे। हमारे उस दलमें-से एकमात्र मैं ही गुरु-वैष्णवोंकी कृपासे मठमें बचा रह गया था। और अन्य सभी कहाँ-कहाँ बह गये।" श्रील महाराजजीके सतीर्थ कोई-कोई बाल्यबन्धु वृद्धावस्थासे जर्जरित होकर अन्तमें उनके निकट आकर स्वीकार करते हुए देखे गये हैं—"भाई, आपको अब 'तुम' कहकर बुलानेमें लज्जा आती है। आप अब एक महाजन हैं और हम सभी संसारकूपमें कैसे डुबकियाँ खा रहे हैं। इसलिये भाई आप ही हमारा उद्धार करो।" वास्तवमें जिनके समस्त प्रकारके जागतिक मनोरथ समाप्त हो गये हैं, श्रीचैतन्य-वाणीके नित्य कैंकर्य(दास्य) में जिनका प्रगाढ़ लोभ उदित हुआ है, उनके लिये ही एकमात्र श्रीगुरु-वैष्णवोंका आनुगत्य एकान्तिक-रूपमें करना सम्भव है, एवं ऐसे आनुगत्यकारी जन जगत्में अत्यन्त दुर्लभ हैं—इसके द्वारा यही प्रमाणित हुआ है।

इधर श्रीवीरचन्द्र ब्रह्मचारीने अपने भतीजेके माध्यमिक परीक्षामें प्रथम विभागमें उत्तीर्ण होनेका संवाद घरमें भेजा। तब माता श्रीमती भगवती देवी पुत्रको घरमें ले जानेके लिये मायापुरमें श्रीचैतन्यमठमें आकर उपस्थित हुईं। किन्तु उनके आनेसे पहले ही श्रीविनोदबिहारी ब्रह्मचारीने श्रीसन्तोषको अन्यत्र स्थानमें भेज दिया और भगवती देवी मठमें पुत्रको न देखकर उन्हें ढूँढ़ने लगीं। अन्तमें उन्होंने श्रीविनोदबिहारी ब्रह्मचारीके मुखसे यह जाना कि उनका सन्तोष अब घरमें लौटकर नहीं जायेगा, इसलिये वह गेरुआ वस्त्र धारण करके अन्य मठमें सेवाकार्यमें नियुक्त हुआ है। वे वास्तवमें ही परम भाग्यवती हैं जिन्होंने ऐसे पुत्ररत्नको अपने गर्भमें धारण किया है। किन्तु ऐसी प्रशंसा सुनकर भी भगवती देवी पुत्रविरहमें कातर हो गयीं। अन्तमें उन्होंने भी घर न लौटकर कुछ कालके लिए वृन्दावनकी यात्रा की।

निष्ठापूर्वक सेवा एवं दीक्षा प्राप्ति

कालक्रमसे आचार्य-पदाभिषिक्त ब्रह्मचारीजीके द्वारा श्रील प्रभुपादकी विचारधाराके किसी-किसी अंशका लङ्घन करना आरम्भ करनेपर श्रील प्रभुपादके एकनिष्ठ सेवकगण उसे स्वीकार नहीं कर पाये। फलस्वरूप दलबाजी और प्रबल अन्तर्द्वन्द्व आरम्भ हो गया। अन्तमें षड़यन्त्र करके उस समयके अधिकारियोंने श्रीविनोदबिहारी ब्रह्मचारी, श्रीमहानन्द ब्रह्मचारी, श्रीनरहरि सेवाविग्रह प्रभु प्रमुख कुछ एकनिष्ठ श्रील प्रभुपाद-सेवकोंके विरुद्धमें एक मिथ्या हत्याका मामला दायर किया जिसके फलस्वरूप

उनको तब कुछ दिनोंके लिए कारागारमें रहना पड़ा। मिशनमें इस प्रकार अधर्म-भावको देखकर अनेक व्यक्ति उस समयमें अश्रद्धालु होकर घरोंमें लौट गये और कोमल श्रद्धावाले व्यक्ति साधनभजन-मार्गको छोड़कर संसार-धर्ममें प्रविष्ट हो गये। किन्तु 'सन्तोष' इन सब कुछसे पृथक् थे। वे स्थितप्रज्ञ महापुरुष—श्रील प्रभुपादके एकनिष्ठ नित्य पार्षदगणोंमें-से एक होनेके कारण किञ्चित् भी विचलित नहीं हुए। अपितु वे अपने अभिभावकोंको इस प्रकार षड़यन्त्रका शिकार होते देखकर उनके बचाव-कार्यमें कूद पड़े। कारागारमें रहते हुए श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारीने सन्तोषको सब प्रकारके निर्देश दिये, उनके अनुसार वे मेदिनीपुर स्थित प्रख्यात वकील श्रीमन्मथ मुखोपाध्यायसे मिलने गये। कृष्णनगरमें एक घरमें रहकर श्रीसन्तोष 'फाइल' लेकर मन्मथ-बाबूके परामर्शके अनुसार अपने अभिभावकोंको छुड़वानेका प्रयास करने लगे। विरोधी-गुटके किसी व्यक्तिने उनको इस प्रकार चेष्टारत देखकर उनको अनेक प्रकारसे इस कार्यसे निवृत्त होनेके लिये समझाया, परन्तु उन्होंने कहा—"सेवक कभी भी घूसखोर नहीं होता।" ऐसा कहकर उन्होंने अपनी अचल निष्ठाको उनके सामने प्रकट किया। श्रीदीनदयाल व्रजवासी उस घरमें रहकर कारागारमें बन्द सभीके लिये रन्धन करते थे। श्रीसन्तोष प्रतिदिन कारागारमें प्रसाद पहुँचा देते और श्रीविनोदबिहारी ब्रह्मचारी प्रभुको प्रतिदिन समाचार देकर उनसे विभिन्न निर्देश लेते थे। श्रुतिधर, बुद्धिमान एवं एकान्त अनुगत श्रीसन्तोष उन निर्देशोंका यथायथ पालन करते।

इस बीचमें एकदिन श्रीदीनदयाल व्रजवासी प्रभु अत्यन्त बीमार हो गये और उनके लिये रसोई बनानेका कार्य सर्वथा असम्भव हो गया। श्रीसन्तोषने जब अपने अभिभावकोंको यह बतलाया तब वे सभी चिन्तित हो गये। श्रीनरहरि सेवाविग्रह प्रभुने ऐसी स्थितिमें श्रीविनोदबिहारी ब्रह्मचारी प्रभुको श्रीसन्तोषको दीक्षामन्त्र प्रदान करनेको कहा। वास्तवमें श्रीविनोदबिहारी प्रभुके साथ श्रीसन्तोषका नित्य सम्बन्ध है—उसी सम्बन्धको प्रकाशित करनेके लिये जैसे भगवत्-इच्छासे ऐसी घटना हुई। श्रीसन्तोषने भी उनसे दीक्षा-मन्त्रको सुनने मात्रसे ही अपने हृदयमें बाँध लिया—साधु-सज्जनोंके प्रति उनकी नित्य सेवावृत्तिके अनुसारसे तब उनका नाम 'श्रीसज्जनसेवक ब्रह्मचारी' हुआ। उस दिनसे वे स्वयं रसोई बनाकर अपने अभिभावकोंके लिए प्रसाद ले जाने लगे। बादमें मेदिनीपुर-शहरमें स्थित श्रीश्यामानन्द गौड़ीय मठमें श्रील प्रभुपादके सबसे अन्तिम संन्यासी-शिष्य श्रीश्रीमद्भक्तिविचार यायावर गोस्वामी महाराजके द्वारा कृत उपनयन-यज्ञमें उनके अन्य शिष्योंके साथ श्रीसज्जनसेवक ब्रह्मचारीका भी उपनयन-संस्कार सम्पन्न हुआ।

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति की स्थापना एवं ग्रन्थ प्रकाशन सेवा

अन्तमें अदालतके आदेशसे कारागारमें बन्द सभी वैष्णव ज़मानतपर मुक्त हुए और बादमें सब सम्पूर्ण निर्दोष प्रमाणित हुए। तब वर्ष १९४०ई. में श्रीविनोदबिहारी ब्रह्मचारी, श्रीनरहरि सेवाविग्रह प्रभु, श्रीमहानन्द ब्रह्मचारी, श्रीवीरचन्द्र ब्रह्मचारी, श्रीनरोत्तमानन्द ब्रह्मचारी आदिके सहित श्रीसज्जनसेवक कोलद्वीपमें (वर्तमानमें नवद्वीप शहरमें) तेघरीपाड़ामें एक किरायेके मकानमें आ गये। बादमें सभीके साथ वे भी मेदिनीपुर शहरके माणिकपुरमें श्रीश्यामानन्द गौड़ीय मठमें गये और कुछ समय तक वहाँपर रहे। उस समय उन्होंने अपने अभिभावकोंके निर्देशसे परमपूज्यपाद श्रीश्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती गोस्वामी महाराज, परम पूजनीय श्रीहयग्रीव ब्रह्मचारी (त्रिदण्डीस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज) आदिके साथ रहकर बङ्गलादेशके अनेक स्थानोंपर प्रचार किया। श्रील प्रभुपादकी विचारधाराकी रक्षा और उसके पुनः संस्थापनके उद्देश्यसे श्रीविनोदबिहारी

ब्रह्मचारीने अपने गुरु-भ्राताओंको लेकर १९४० ईस्वीमें अप्रैल(वैशाख) मासमें पवित्र अक्षय-तृतीया तिथिमें कलकत्ताके बागबाजारमें ३२/२ बोसपाड़ा लेनमें किरायेके एक घरमें "श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति" की स्थापना की। उस समय श्रीअभयचरण भक्तिवेदान्त प्रभु, श्रीनरोत्तमानन्द ब्रह्मचारी आदिके साथ श्रीसज्जनसेवक भी वहाँ उपस्थित थे।

श्रील प्रभुपादके स्वप्नादेशके अनुसार श्रीविनोदबिहारी ब्रह्मचारीने १९४१ ईस्वीमें भाद्रपूर्णिमा (विश्वरूप पूर्णिमा) तिथिमें परमपूजनीय त्रिदण्डीस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिभक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराजसे श्रीगौरसुन्दरके संन्यास-ग्रहण क्षेत्र कटवामें संन्यास ग्रहण किया और सभीके निकट "त्रिदण्डीस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव महाराज" नामसे परिचित हुए। उसके बाद उन्होंने विपुल उत्साहसे सर्वत्र श्रीश्रीगुरु-गौराङ्ग-वाणीका प्रचार करना आरम्भ किया। उनके एकमात्र शिष्य श्रीसज्जनसेवक ब्रह्मचारी उस समय उनके साथ छायाकी भाँति रहकर उनकी सेवा करते थे। जगद्गुरु श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज कलकत्तामें 'Gouranga Printing Works' स्थापित करके श्रीश्रील भक्तिविनोद ठाकुर कृत ग्रन्थावलियोंको प्रकाशित करने लगे—उस समयमें श्रीसज्जनसेवक ब्रह्मचारी उनके दाहिने हाथ थे। उन्होंने छापाखानेके समस्त कार्योंको सीखकर ग्रन्थ-प्रकाशन कार्योंमें अपने आपको सम्पूर्ण रूपसे नियोजित कर दिया।

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिने १९४७ ईस्वीमें हुगली जिलाके प्रधान शहर चुँचुड़ामें एक प्राचीन ठाकुर मन्दिरमें श्रीगौरनित्यानन्द (पञ्चतत्त्वके अन्तर्गत श्रीवास प्रभुके द्वारा सेवित) विग्रहकी सेवाका दायित्व ग्रहण किया। उक्त ठाकुर मन्दिर ही "श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ"के नामसे परिचित हुआ और उस समय श्रीसमितिके प्रधान कार्यालय-रूपमें उसका व्यवहार किया गया। समितिके प्रतिष्ठाता—श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके निर्देशके अनुसार श्रीसज्जनसेवक ब्रह्मचारी कलकत्तासे छापाखानेको उक्त मठमें स्थान्तरित करके ग्रन्थ प्रकाशन करने लगे और वे उक्त छापाखानेके द्वारा उपार्जित धनसे श्रीगुरु-गौराङ्गकी विविध प्रकारकी सेवाओंकी उज्ज्वलताका विधान करने लगे। १९४८ ईस्वीमें श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके मुखपत्र रूपमें श्रीगौड़ीय-पत्रिकाकी रजिस्ट्री हुई। श्रीसज्जनसेवक ब्रह्मचारी उसके प्रथम 'प्रकाशक और मुद्रक'के रूपमें नियुक्त हुए। तबसे वे एक साथमें विभिन्न गौड़ीय ग्रन्थों और प्रतिमासमें श्रीगौड़ीय-पत्रिकाका अत्यन्त सुन्दर रूपसे और त्रुटिरहित प्रकाशन करके सबके प्रशंसाके पात्र हुए।

संन्यास ग्रहण

१९५२ ईस्वीमें परमपुण्या फाल्गुनी-पूर्णिमा श्रीगौराविर्भाव-तिथिपर जगद्गुरु श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजने अपने प्रियतम सेवक श्रीसज्जनसेवकको संन्यास प्रदान करके "त्रिदण्डीस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज" नामसे विभूषित किया। इसी एक ही दिनमें श्रीसज्जनसेवक ब्रह्मचारीके साथ ही उनके दो गुरु-भ्राताओं श्रीराधानाथ व्रजवासी एवं श्रीगौर-नारायण व्रजवासीने ने भी संन्यास ग्रहण किया तथा संन्यासके उपरान्त इन दोनों गुरु-भ्राताओंके क्रमशः नाम हुए परमपूजनीय श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज और परमपूजनीय श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज। परवर्ती कालमें ये तीनों ही श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके तीन स्तम्भोंके रूपमें प्रसिद्ध हुए।

श्रीसमितिके आचार्य पदपर अभिषिक्त एवं सुन्दररूपसे परिचालना

श्रीचैतन्य महाप्रभुके अन्तरङ्गतम सेवकरूपमें जैसे श्रीस्वरूपदामोदर प्रभु सुपरिचित हैं, श्रीरामानुजाचार्यके जिस प्रकार श्रीकुरेश, श्रीरामचन्द्रके जैसे श्रीहनुमान, ठीक वैसे ही श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके दाहिने हाथ और हृदयवेत्ता सेवक श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त

वामन गोस्वामी महाराज हैं। *"कृष्णभक्ते कृष्णेर गुण सकलि सञ्चारे"*—सेव्य-वस्तुकी गुणावली सेवकमें सञ्चारित होती है; इसके अनुसार ही श्रील वामन गोस्वामी महाराज अपने नित्य अभिभावक श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी समस्त अप्राकृत गुणावलियोंके अधिकारी हुए थे। इसलिये ही श्रील केशव गोस्वामी महाराज, श्रील प्रभुपादके विशेष-विशेष संन्यासी और गृहस्थ शिष्यगण, एवं विशेष निर्दिष्ट श्रील केशव गोस्वामी महाराजके आश्रितगणोंमें प्राय सभीने श्रीसमितिके परवर्ती आचार्य और सभापतिके रूपमें श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजको मनोनीत किया। श्रील केशव गोस्वामी महाराजने उन सबकी इच्छाके अनुकूल ही उन सबकी सम्मति जानकर 'इच्छापत्र'में इसे व्यक्त किया—"मेरी एकान्त इच्छा है कि मेरे परलोक गमनके बाद मेरे स्नेहास्पद श्रीमान् भक्तिवेदान्त वामन महाराज गौड़ीय वेदान्त समितिके प्रेसिडेन्ट-आचार्य होकर श्रद्धालुजनोंको श्रीहरिनाम-दीक्षादि प्रदान करेंगे।"

श्रील वामन गोस्वामी महाराजके ऊपर ग्रन्थप्रकाश और मासिक पत्रिकाका दायित्व रहनेपर भी बीच-बीचमें उनको विभिन्न प्रचार-क्षेत्रोंमें जाना होता था। किन्तु श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजने अपने व्रजविजयके विषयमें चिन्ता करके परवर्ती कर्णधारको सभीके निकट परिचय करवाते हुए १९६६ ईस्वीमें ग्रन्थ-प्रकाशन और पत्रिकाके दायित्वसे हटाकर श्रील वामन गोस्वामी महाराजको सम्पूर्ण रूपसे प्रचारकार्यमें नियुक्त किया। उस समय वे अविश्रान्त रूपसे बङ्गाल, बिहार और आसामके विभिन्न क्षेत्रोंमें श्रीगुरु-गौराङ्ग-वाणीका प्रचार करने लगे। उसके बाद १९६८ ईस्वीमें दामोदर-व्रतके प्रारम्भमें शारदीय रास-पूर्णिमाके समय श्रीजगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजने श्रीश्रीगौर-राधा-विनोदबिहारीकी नित्यलीलामें उनकी नित्यसेवाके उद्देश्यसे यात्रा की। उसके बाद उनकी इच्छाके अनुसार परमपूजनीय श्रीश्रीमद्भक्तिश्रीरूप सिद्धान्ती गोस्वामी महाराज, श्रीश्रीमद्भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज, श्रीश्रीमद्भक्तिप्रकाश ऋषिकेश गोस्वामी महाराज, श्रीश्रीमद्भक्तिप्रापण दामोदर गोस्वामी महाराज आदि श्रील प्रभुपादके आश्रित सभी संन्यासियोंने उनके अति परिचित एवं परम स्नेहके पात्र सन्तोष-रूप "श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज"को श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके सभापति और आचार्यरूपमें अभिषिक्त किया। इस सम्बन्धमें उनके द्वारा लिखित एक पत्रमें देखा जाता है—"मैं अपने सतीर्थगणोंके द्वारा elected या selected होकर आचार्य-पदपर नहीं बैठा हूँ। स्वयं श्रील गुरुपादपद्मके द्वारा निर्वाचित होकर अनिच्छा होनेपर भी रोते-रोते उक्त दायित्वको ग्रहण करनेके लिये बाध्य हुआ था। आचार्य होनेकी वासना मेरे अन्दर कभी नहीं थी और अब भी नहीं है।"

श्रीसमितिके सभापतिरूपमें श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजने अपने सभी गुरु-भ्राताओंको लेकर सभीको यथायोग्य मर्यादा प्रदान करते हुए इस प्रकार सुन्दररूपसे श्रीसमितिकी परिचालना की, जो इस कलहमय युगमें वास्तवमें एक दृष्टान्तस्वरूप है। साधारण रूपमें किसी प्रतिष्ठानके प्रतिष्ठाता-महोदयके परलोक गमनके बाद जैसी भीषण अन्तर्द्वन्द्वकी सूचना होती है, किन्तु श्रील वामन गोस्वामी महाराजके श्रीसमितिके मूल परिचालक पदपर अधिष्ठित होनेके बाद वह उत्पन्न नहीं हो पायी। उनके अनेक गुरु-भ्राताओंको उनके सम्बन्धमें यह कहते हुए सुना गया है—"उनकी छत्रछायामें रहकर हम श्रील गुरुपादपद्मके (नित्यलीलाप्रविष्ट श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके) अभाव या विरहको अनुभव नहीं कर पाये हैं। श्रील गुरुपादपद्मके सान्निध्यमें रहनेसे हम जो-जो पारमार्थिक लाभ प्राप्त करके समृद्ध हुए थे, उसे पूर्णरूपमें हम अपने सर्वज्येष्ठ गुरुभ्राताके निकट प्राप्तकर कृतार्थ हुए हैं। वे वास्तवमें ही अभिन्न श्रीकेशव हैं।"

वैष्णवोचित गुणावलीसे परिमण्डित

श्रील वामन गोस्वामी महाराजकी दिव्य गुणावलीकी आलोचना करनेपर हम यह जान पाते हैं कि भगवान्‌के निजजनका अप्राकृत स्वरूप वास्तवमें किस प्रकारका होता है। श्रीचैतन्य महाप्रभु जो स्वयं भक्तोंका गुणगान करनेमें सर्वदा पञ्चमुख होते थे, उन्होंने वैष्णवोंके लक्षण वर्णन करते हुए वैष्णवोंके अनन्त महागुणोंमें-से दिग्दर्शन-रूपमें २६ गुणोंका विशेष रूपसे उल्लेख किया है। वह समस्त गुणावली श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजमें पूर्णरूपमें और अकृत्रिमरूपमें अवस्थित है—ऐसा देखा जाता है। वास्तवमें ये सब गुण सम्पूर्णरूपमें ही अप्राकृत हैं, श्रीकृष्ण ही एकमात्र उनके मूल स्रोत हैं—प्राकृत जगत्‌में उन गुणोंका अवस्थान या उदय कभी भी सम्भव नहीं है। केवल श्रीकृष्ण ही जिनको अपना कहकर अङ्गीकार करते हैं, मात्र उनमें ही वे समस्त गुणावलीको सञ्चारित करके उनको अपने समानरूपमें प्रतिष्ठित करते हैं— *"सर्वमहागुणगण वैष्णव-शरीरे। कृष्णभक्ते कृष्णगुण सकलि सञ्चारे॥"* अर्थात् "वैष्णवके शरीरमें समस्त प्रकारके महान गुण वास करते हैं। कृष्णभक्तमें समस्त कृष्णगुण सञ्चारित होते हैं।"

१) कृपालु—जिस प्रकार भगवान् दीनबन्धु हैं, उसी प्रकार वैष्णवगण भी परदुःख-दुखी होते हैं। जीवोंके समस्त दुःखोंका मूल कारण है—भगवान्‌की विस्मृति। विस्मृति अर्थात् भगवान्‌के प्रति जीवोंकी स्वाभाविक अहैतुक सेवामय धर्ममें उदासीनता। जिस धर्मका पालन करनेपर ही जीवको केवलमात्र आनन्द, नित्य आनन्द, परानन्द प्राप्त होता है, उस धर्मको भूलनेके कारण ही जीवको परानन्दके स्थानपर 'परदुःख' (अत्यन्त दुःख) प्राप्त हो रहा है। परमात्मासे जीवका सम्बन्ध नित्य है, परन्तु अनादिकालसे जीवका विच्छेद हुआ है। यह विच्छेद ही 'परदुःख' है, जो वर्तमानमें आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक—तीन प्रकारके दुःखोंका रूप लेकर जीवोंको प्रतिक्षण व्याकुल किये हुए है। श्रीवैष्णव परदुःख-दुःखी हैं—वे जीवोंके केवल बाह्यिक खाद्य-अभाव, वस्त्र-अभाव या धन-अभाव-जनित दुःखोंसे दुःखी नहीं होते।

परदुःख-दुःखी श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज वर्षमें प्रायः बारह महिने ही बङ्गाल, बिहार तथा आसाममें गाँव-गाँव, घर-घर जाकर श्रीचैतन्यवाणीका प्रचारकर सभीको कृष्णोन्मुख करनेमें व्यस्त रहते थे। विशेषरूपसे उस समय ग्रामीण-क्षेत्रोंमें यातायातकी व्यवस्था तनिक भी सुविधाजनक नहीं थी, लोगोंके पास धन भी नहीं था। कई मील पैदल ही जाना पड़ता था, मार्गमें कभी-कभी घुटनों तक कीचड़में चलना पड़ता था, कभी घनघोर वर्षा-आँधी-तुफानमें कई मील कीचड़मय मार्गसे होते हुए जाना पड़ता था तथा कभी नदीके तटपर नाव उपलब्ध न होनेके कारण तैरकर ही नदीको पार करना पड़ता था। किन्तु समस्त प्रकारके कष्टोंको सहकर भी श्रील वामन गोस्वामी महाराज प्रतिवर्ष उन समस्त गाँवोंमें जाते थे, जहाँपर जानेमें अन्यान्य धर्म-प्रचारक लोग सङ्कोच करते थे, उन स्थानोंमें जाकर वे स्नेहपूर्ण हृदयसे वहाँके लोगोंके बीच श्रीमन्महाप्रभुकी वाणीका प्रचार करते थे। आज भी वहाँके निवासी अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे उनका स्मरण करते हैं। इतनी असुविधाओंको सहकर जब वे उन गाँवोंमें पहुँचते थे, तो वहाँके लोग उनका दर्शनकर आनन्द-उत्सवमें प्रमत्त हो जाते थे। श्रील वामन गोस्वामी महाराजकी एक विशेषता यह थी कि वे गाँवमें सभीके घरोंमें जाया करते थे। गरीबसे गरीब व्यक्ति जिसके घरमें एकबार खानेके लिए भी बहुत कष्टसे भोजन जुट पाता था, वे उस व्यक्तिके घरमें भी आनन्दपूर्वक जाया करते थे। वह व्यक्ति अपने सामर्थ्यानुसार जो कुछ भी उन्हें अर्पण करता था, उसे वे बड़े ही आदरपूर्वक

ग्रहण करते थे। प्रतिवर्ष उन लोगोंको श्रीगौरधाममें ले जाकर धाम-परिक्रमा कराते थे तथा एक पिताकी भाँति पारमार्थिकरूपमें श्रीगुरु-गौराङ्गकी वाणी सुनाकर सबका पालन-पोषण करते थे। इसलिए लोग उन्हें पिताकी भाँति सम्मान दिया करते थे।

जगद्गुरु श्रील प्रभुपाद कहते थे—"हम मनुष्य समाजके एक व्यक्तिको भगवान्‌के उन्मुख करनेके लिए दो सौ गैलन रक्त खर्च करनेके लिए तैयार हैं। अनन्त कोटि जीव भगवान्‌से सिरसे पाँवतक विमुख होकर इस महामायाके दुर्गमें बद्ध हुए हैं। इनमें-से यदि किसी एक व्यक्तिको भी बचाया जा सके, तो अनन्तकोटि अस्पताल बनानेसे कई गुणा अधिक परोपकारका कार्य होगा। वास्तविक सत्य दया—अमन्दोदय-दया पाँच-दस दिनके लिए दया नहीं होती। इस दयाको प्राप्त करनेपर जीव चिरकालके लिए दुःखोंसे मुक्त हो जाता है।" महामायाके दुर्गसे जीवोंको उद्धार करनेके लिए श्रील वामन गोस्वामी महाराजने वास्तवमें ही कई गैलन रक्त खर्च किया है।

श्रील वामन गोस्वामी महाराजके मुखसे वीर्यवती हरिकथा श्रवणकर सैकड़ों-हजारों व्यक्ति सद्गुरुके अभावमय इस जगतमें उन्हें ही सद्गुरु मानकर समस्त प्रकारका अनाचार, कदाचार तथा व्यभिचारका परित्यागकर हरिभजनमें लग गये। उनके उच्च भजनके आदर्शसे प्रेरित होकर उनके सान्निध्यमें रहकर भजन करनेके उद्देश्यसे सैकड़ों लोगोंने गृहकार्य, व्यवसाय, नौकरी-चाकरी छोड़कर मठवासको वरण किया। केवल शरीरधारी जीवोंका ही नहीं, अपितु कितने ही अशरीरी प्रेतात्माओंका भी उन्होंने उद्धार किया, कितनी ही प्रेतात्माएँ उनसे अपना उद्धार करवानेके लिए व्याकुल रहती थीं।

२) अकृतद्रोह—महाभागवत-वैष्णवगण समस्त जीवोंका उद्धार करनेके लिए उत्कण्ठित रहते हैं। इसलिए वे स्वप्नमें भी किसीके प्रति यहाँतक कि मनुष्योंके अतिरिक्त पशु-पक्षी-कीट आदिके प्रति भी द्रोहाचरण नहीं करते—*"हरिभक्तौ प्रवृत्ता य न ते स्युः परतापिनः॥"* अकृतद्रोह-स्वभावके साक्षात् प्रतिमूर्ति श्रील वामन गोस्वामी महाराज किसीके प्रति भी द्रोहाचरण तो दूर रहे, बल्कि वे तो सदा ही सतर्क रहते थे कि कहीं स्वयं उनके द्वारा किसी प्राणीको उद्वेग न मिले। उनके मुखसे प्रायः सुना जाता था—*"जीवन निर्वाहि आने उद्वेग ना दिबे। पर-उपकारे निज सुख पासरिबे।"* वास्तवमें ही वे इस वाक्यके ज्वलन्त उदाहरण थे। अपने किसी व्यक्तिगत कार्यके लिए अपने सेवकको भी आदेश देनेमें सङ्कोच करते थे। किसीको आदेश देनेसे पहले "वैष्णवोंको उद्वेग नहीं देना चाहिए"—ऐसा कहकर कितना अनुतप्त भाव प्रकाशित करते थे।

प्रचार-कार्यमें जब वे लोगोंके घर-घर जाते थे, तो कोई कितना ही परिचित क्यों न हो, वे सर्वदा ही सावधान रहते थे कि उनके कारण किसीको भी किसी प्रकारका उद्वेग प्राप्त न हो। यहाँतक कि वे अपने सेवकोंको भी इस विषयमें सतर्क करते रहते थे। प्रचारके समय किसीके घरमें विशेष कारणसे देरीसे पहुँचनेपर घरवालोंको कहते—"तुम लोग चिन्ता मत करो, हम प्रसाद पाकर ही आये हैं।" इस प्रकार मिथ्या वचनोंके द्वारा उन्हें सान्त्वना देकर रातभर भूखे ही रहते थे। उन्हें प्रायः यह कहते सुना जाता था—"मैं पान्ता (पानीमें रातभर भीगे हुए भात)को भी फूँक मारकर ही खाता हूँ। अर्थात् भूलसे भी वे किसीको यहाँ तक कि अपने शिष्योंको भी उद्वेगदायक बात नहीं कहते थे। और यदि कोई उन्हें उद्वेग देना भी चाहता था, तो वे कभी भी उद्विग्न नहीं होते थे—वे इतने सहिष्णु थे। उनके इस स्वभावसे गौड़ीय-वैष्णव समाजके सभी लोग परिचित थे।

३) सत्यसार—जगद्गुरु श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी, श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर तथा श्रील भक्तिविनोद ठाकुरकी विचारधारामें जो परम

सत्य प्रकाशित हुआ है, उसीको उन्होंने सार-रूपमें ग्रहण किया था। वे स्वप्नमें भी क्षणकालके लिए भी सत्यके प्रचारसे विचलित नहीं हुए। किसी प्रकारका अनुरोध या विरोध कुछ भी उन्हें उनकी इस सत्यनिष्ठासे लेशमात्र भी विचलित नहीं कर सका। केशवानुगत्य, प्रभुपादानुगत्य, भक्तिविनोदानुगत्यमें पूर्ण रूपानुगत्य विराजमान है, इसी बातको उन्होंने अपने सत्यसार स्वभाव द्वारा प्रकाशित किया है। वे प्रायः कहा करते थे—*"आचार्येर जेइ मत, सेइ मत सार। आर जत मत सब, जाउक छारखार।"* अर्थात् पूर्व-पूर्व गौड़ीय आचार्यों विशेषरूपसे श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज एवं श्रील सरस्वती ठाकुर प्रभुपादने जो कुछ कहा है, वही सत्यसार है, इसके अतिरिक्त जो कुछ है वह ध्वंस हो जाए।

४) **सम**—सुख-दुःख, शत्रु-मित्र, मान-अपमान—सब प्रकारकी परिस्थितियोंमें उनकी सम-बुद्धि अद्भुत थी। *"समः शत्रो च मित्रे च मानापमानयोः।"* (गीता १२/१८)। उनकी ऐसी समबुद्धि होनेके कारण सहनशीलता-धर्म उनमें इतने स्वाभाविक रूपमें विद्यमान था, कि उसे देखकर बहुत ही आश्चर्य होता था। अत्यन्त दुर्गन्धमय स्थानमें भी उन्हें निर्विकार देखा जाता था। पूछनेपर हँसते हुए उत्तर देते—*"सम-लोष्टाश्म-काञ्चनः"* (गीता ६/८)। अत्यन्त कोलाहलमय स्थानमें भी निर्विघ्नरूपसे ग्रन्थ-अध्ययन तथा ग्रन्थ-लेखन एवं विश्राम आदि कार्य करते रहते थे। अत्यन्त अपमानजनक परिस्थितियोंमें भी शान्त रहकर अपने शिष्ट स्वभावका परिचय देते थे। सभी कृष्णदास हैं, मेरे शिक्षक हैं—इस बुद्धिसे जैसे एक शिशुको भी, उसी प्रकारसे एक उद्धत(उद्दण्ड) व्यक्तिको भी सम्मान प्रदान करनेका उनका कौशल अत्यन्त विस्मयकारी था। ईश्वरसे प्रेम, शुद्धभक्तके प्रति मैत्री, अज्ञलोगोंपर कृपा तथा द्वेषी व्यक्तियोंकी उपेक्षा—ऐसे समदर्शनकी साधारण प्राकृत-बुद्धिसम्पन्न व्यक्ति कल्पना भी नहीं कर सकते। 'जीवमात्र ही कृष्णदास हैं'—इसकी वास्तव अनुभूति ही मध्यमाधिकारोचित उक्त समदर्शनका आधार है। किन्तु श्रील वामन गोस्वामी महाराज शिष्य तथा शिष्यतुल्य व्यक्तियोंको भी 'प्रभु' सम्बोधनकर जिस प्रकारसे प्रणाम करते थे, उससे उनका महाभागवतोचित समदर्शन ही प्रमाणित होता है।

५) **निर्दोष**—श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने इस सम्बन्धमें कहा है—"वैष्णवगण जिस प्रकारसे उच्चपदस्थ जीव होते हैं, उसी प्रकार उनका चरित्र भी उच्च तथा अनुसरण-योग्य होना आवश्यक है। वैष्णवोंका चरित्र यदि दुर्बल होगा, तो अन्यान्य दुर्बल जीवोंको सच्चरित्रताकी शिक्षा कैसे मिलेगी? इन सब बातोंकी भलीभाँति विवेचनाकर सर्वप्रथम मन्त्राचार्य महोदयगण अपने-अपने चरित्रको निर्दोष रखनेकी विशेष चेष्टा करेंगे।" श्रील वामन गोस्वामी महाराज स्वभावतः ही उस निर्दोष व्यक्तित्वके अधिकारी थे। परीक्षित महाराजने कलिको जिन द्युत, पान, स्त्री, जीव-हिंसा तथा स्वर्ण, इन पाँच स्थानोंमें निवास स्थान दिया था, इनका प्रभाव उनको लेशमात्र भी स्पर्श नहीं कर पाया। केवल नौ वर्षकी आयुमें गृहत्यागपूर्वक गौड़ीय-परमहंस वैष्णवोंका पूर्ण आनुगत्य ही जिनके जीवनका एकमात्र धर्म था, कलिके उक्त दोषोंकी क्या क्षमता कि उनको स्पर्श करने की अभिलाषा भी करें?

एक प्रतिष्ठानके सभापति होकर भी उनका व्यक्तिगत कोई बैंक अकाउंट नहीं था। वे कहते थे—"मेरे कुर्त्तेकी जेब ही मेरा बैंक है। हरि-गुरु-वैष्णवोंकी सेवाके लिए जो कुछ भी है, वह इसी जेबमें ही है।" अपने अप्रकट होनेके १५ वर्ष पूर्वसे तो उन्होंने उस धनको भी स्पर्श करना बन्द कर दिया था। उनके सेवकगण ही धनका आदान-प्रदान करते थे। बीच-बीचमें वे अपने सेवकोंको प्रयोजनानुसार विशेष-विशेष स्थानमें भगवान्‌की सेवाके लिए धन प्रदान करनेका आदेश दिया करते थे, किन्तु जमा हुए धनका कभी भी हिसाब नहीं लेते थे।

विलासिताका लेशमात्र चिह्न भी उनमें दिखाई नहीं देता था। जीवनभर उन्होंने साधारण साबुन तथा एक विशेष आकृतिके रबरके जूते ही व्यवहार किये। जबतक उनके पहने हुए वस्त्र फट नहीं जाते थे, तबतक उनका परित्याग नहीं करते थे। यदि कोई उन्हें नये वस्त्र देता था, तो सेवकको उन वस्त्रोंको वैष्णवसेवामें लगानेका आदेश देते। एकबार कोई व्यक्ति उनके लिए चन्दनका साबुन ले आया। साबुनको देखते ही वे श्रीमन्महाप्रभुके आदर्श अनुसार क्रोध प्रकाशित करते हुए कहने लगे—"क्या भोगोंका लाइसेंस प्राप्त करनेके लिए मुझसे विषय-भोग करवाना चाहते हो? जाओ इसे श्रीविनोदबिहारीजीकी सेवामें लगा दो। समस्त विषयोंको भोग करनेका अधिकार एकमात्र उनका ही है।" इस प्रकार श्रील वामन गोस्वामी महाराजके निर्दोष-जीवनके दृष्टान्तोंका अन्त नहीं है।

६) वदान्य—वदान्य कहनेसे साधारण रूढि-वृत्तिसे जो लक्षित होता है, उसको धिक्कार देकर श्रील रूप गोस्वामी प्रभुने श्रीगौरसुन्दरको ही 'महावदान्य' कहकर प्रणाम और प्रमाणित किया है। श्रीकृष्णचैतन्यकी दयाकी चमत्कारितामें वास्तवमें ही जो निष्णात हुए हैं, उनमें भी 'महावदान्य'-गुण सञ्चारित हुआ है। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर, श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपाद, श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी जैसे महावदान्यगणोंकी हार्दिक प्रचेष्टाओंके फल-स्वरूप समस्त अधर्म, उपधर्म, छलधर्म, ३९ प्रकारके अपसम्प्रदायों आदिके चङ्गुलसे मुक्त जीवात्माके परमशुद्ध नित्यधर्मका पराकाष्ठामय शिक्षा-प्रवाह जो भूलोकमें संरक्षित हुआ है, श्रील वामन गोस्वामी महाराजने उसी सात्वत-धाराको यथायथरूपमें ही प्रतिष्ठित रखकर अपने 'महावदान्य'-गुणका ही परिचय दिया है। उनके गुरुवर्गने आराध्यरूपमें व्रजवधूगण-सेवित व्रजेन्द्रनन्दनकी जो उपासना पद्धतिका प्रदर्शन किया है, उन्होंने जीवोंको यथायथ उसी उपासनामें ही प्रेरित किया है।

वे चातुर्मास्यव्रत, पुरुषोत्तम-व्रत, एकादशी, श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी, श्रीराम-नवमी, श्रीनृसिंह-चतुर्दशी, श्रीबलदेव-पूर्णिमा, श्रीअद्वैत-सप्तमी, श्रीनित्यानन्द-त्रयोदशी, श्रीगौर-पूर्णिमा आदि व्रतोपवास-पालन, चातुर्मास्यके अतिरिक्त प्रत्येक पूर्णिमाके दिन मठवासियोंके लिए मुण्डनकार्य तथा दीक्षित व्यक्तिमात्रके लिए अन्यान्य देवी-देवताओंकी पूजा, चाय, पान, धूम्रपान तथा आमिष-स्पर्शन आदिके त्यागका विधान जो शास्त्रोंमें है, उसके पालनमें लेशमात्र भी छूट नहीं देते थे। श्रील वामन गोस्वामी महाराजके श्रीमुखसे हरिकथा श्रवणकर एक सदाचारी महिलाकी बहुत ही तीव्र इच्छा थी कि श्रील महाराज कृपापूर्वक उसे हरिनाम तथा दीक्षा प्रदान करें, जिससे कि वह साधन-भजनकर अपने जीवनका उद्धार कर सके। परन्तु उसका पति नास्तिक था। उसके लिए उस महिलाको माँस रन्धन करना पड़ता था। अतः उसे ज्ञात था कि श्रीगुरुदेव कभी भी उसे हरिनाम-दीक्षा प्रदान नहीं करेंगे, इसलिए दुःखी होकर वह रोती रहती थी। एकदिन वह साहसकर श्रील महाराजके पास एक लकड़ीकी माला लेकर गयी तथा उनसे प्रार्थना की—"गुरुदेव! आप कृपा करके बिना जपे ही अपने हाथसे यह माला मुझे दे दीजिए। इसीसे मैं अपने जीवनको धन्य मानुँगी" यद्यपि श्रील महाराजका भी उस महिलाके प्रति बहुत स्नेह था। तथापि उन्होंने उससे कहा—"माँ, मुझे स्वतन्त्ररूपसे कुछ भी करनेका अधिकार नहीं है। मैं सम्पूर्णरूपसे अपने ऊपरवालोंके अधीन हूँ। तुम तो मेरी माँ हो, क्या तुम माँ होकर भी अपने इस पुत्रको ऐसा नियमविरुद्ध कार्य करनेके लिए बाध्य करोगी?" इस प्रकार उन्होंने *"निरपेक्ष ना हइले धर्म ना जाय रक्षणे"*—इस नीतिके अनुसार इस दोषोंसे परिपूर्ण कलियुगमें जिस प्रकारसे निर्मल वैष्णवधर्मकी मर्यादाकी रक्षा की, उसी प्रकारसे

अपने आश्रितजनोंको भी अपने आदर्श आचरणसे धर्मकी मर्यादाके संरक्षणकी शिक्षा दी—यही उनकी महावदान्यता है।

७) मृदु—मृदु अर्थात् कोमलता। भक्तिलता अत्यन्त कोमल होनेके कारण वह कठोर हृदयरूपी क्षेत्रमें अङ्कुरित नहीं हो सकती। कुतर्क तथा विषयवासना-रूप रुक्षताका त्याग किए बिना हृदय कभी भी कोमल नहीं हो सकता तथा हृदय कोमल हुए बिना वहाँपर भक्तिदेवी कदापि आविर्भूत नहीं हो सकती। भगवत्-विषयिनी रुचिके उदित होनेपर चित्त ऐसा मसृण (कोमल) हो जाता है कि सर्वदा ही द्रवित रहता है। श्रील वामन गोस्वामी महाराजका स्वभाव भी इतना मृदु था कि उनके सान्निध्यमें आने मात्रसे ही लोग इसका अनुभवकर भावविभोर हो जाया करते थे। उनके कोमल हृदयमें जो स्नेहामृतका समुद्र था, उसमें हजारों व्यक्ति एकसाथ अवगाहनकर कृतार्थ हो जाया करते थे। प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने अधिकारके अनुसार स्वयंको उनका विशेष कृपापात्र जानकर सन्तुष्ट रहता था। उनके इस शिशुके समान कोमल स्वभावको देखकर उनके साथ बातचीत करते समय किसीके मनमें किसी प्रकारका सङ्कोच नहीं होता था, सबको ऐसा लगता था कि जैसे वे एक बालकसे बातें कर रहे हैं। वे स्वयं भी कहते थे—"मैं एक बच्चा हूँ तथा आप सबलोग मेरे अभिभावक हैं।" वे प्रायः कहते थे—"भगवान्के पास हम सब बच्चे हैं। शिशुके समान सरल हुए बिना वैष्णव नहीं हुआ जा सकता। जिस प्रकार एक शिशुके पास रोनेके अतिरिक्त अन्य काई भाषा नहीं होती, उसी प्रकारसे भगवान्के निकट रोते-रोते हरिनाम करनेके अतिरिक्त हमारे कल्याणका अन्य उपाय नहीं है। परन्तु यदि बच्चा न रोये, तो माँ भी दूध नहीं पिलाती, यह जानकर कि रोये बिना भगवान्की कृपा नहीं मिलेगी, यदि कोई कपटतापूर्वक अर्थात् दिखानेके लिए रोता है, तो हृदय-निवासी भगवान् इसे अच्छी प्रकारसे जान जाते हैं। बालकका रोना सुनकर क्या अभिभावक कभी स्थिर रह सकते हैं?

८) शुचि—*"गङ्गार परश हइले पश्चाते पावन। दर्शने पवित्र कर एइ तोमार गुण॥"* श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज वास्तवमें ही ऐसी पतित-पावन मूर्ति हैं कि उनके दर्शनकी तो बात ही क्या, उनके स्मरण-मात्रसे ही हृदय परम पवित्र हो जाया करता है। इसीलिए ग्रन्थराज श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—*"तीर्थी कुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तःस्थेन गदाभृता॥"* (भाः१/३/१०)। अर्थात् श्रीकृष्ण जिसके हृदयमें प्रणय-रज्जुके द्वारा आबद्ध हैं, वे महाभागवत केवल स्वयं ही पवित्र होते हैं, ऐसा नहीं, अपितु वे ऐसे पवित्रकारक होते हैं कि तीर्थोंको भी पवित्र कर देते हैं। ऐसे महाभागवतके दुर्लभ दर्शनसे ही जीव पवित्र होकर पापबुद्धिशून्य हो जाते हैं। तथा उनके मुखनिःसृत वाणीको श्रवणकर जीव हरिभजनमें अग्रसर हो सकते हैं। पापबुद्धि दूर न होनेपर हरिभजनमें कोई भी प्रेरित नहीं हो सकता। श्रील वामन गोस्वामी महाराजके दर्शनसे अनेकों सौभाग्यवान् व्यक्ति आकृष्ट होकर हरिभजनमें नियुक्त हुए हैं।

श्रील महाराज शुचिताके सम्बन्धमें कहते थे—"पुण्डरीकाक्ष श्रीहरिके स्मरणमात्रसे ही अन्तः बाह्य सब प्रकारकी पवित्रता आ जाती है। इसलिए पवित्र-अपवित्र किसी भी अवस्थामें श्रीनामभजन परित्यज्य नहीं है, क्योंकि यही जीवका नित्य कृत्य है। निष्ठापूर्वक श्रीनाम तथा नाम-अभिन्न श्रीविग्रहकी सेवापूजा साधक-साधिकाका एकमात्र कर्तव्य है। इसलिए स्मार्तविचारगत शुचिताकी आवश्यकता नहीं है।"

९) अकिञ्चन—जन्म, ऐश्वर्य, विद्या तथा रूपके अहङ्कारसे शून्य होना ही अकिञ्चनता है। अकिञ्चन व्यक्ति ही 'तृणादपि सुनीच' हो सकता है। श्रील वामन गोस्वामी महाराजके जीवनमें पग-पगपर अकिञ्चन-भाव

तथा तृणादपि सुनीचता स्पष्टरूपसे प्रकाशित होती थी। वे प्रायः कहा करते थे—"मैं सर्वदा वृक्षके नीचे ही रहता हूँ, घर-बङ्गलेमें नहीं। कारण, मैं वास्तवमें ही 'अनिकेत' हूँ—वृक्षके नीचे ही मेरा आश्रय है।" महाभागवतोंको बाह्य विषयोंके बीचमें देखे जानेपर भी वास्तवमें वे सर्वदा अपने भजन-राज्यमें ही अवस्थित होकर विषयोंसे बहुत दूर रहते हैं। श्रील महाराजकी ये उक्तियाँ केवल मौखिक नहीं होती थीं। अन्यन्त दरिद्र व्यक्तिकी जीर्ण-शीर्ण(भग्न) कुटिरमें भी वे कई-कई दिन तक आनन्दपूर्वक रहते थे। वर्षाकालमें सैकड़ों छिद्रयुक्त छतवाले घरमें रातभर छाता लेकर व्यतीत करके भी दरिद्र भक्तोंकी मनोवाञ्छा पूर्ण करते थे। धनी-मानि व्यक्तियोंके महलोंकी अपेक्षा दीन-दरीद्र भक्तोंकी पर्णकुटी(झोंपड़ी)में रात्रि व्यतीत करनेमें उन्हें अधिक स्वच्छन्दता होती थी। एकदिन किसी धनी व्यक्तिके अति आग्रह करनेपर वे बाध्य होकर उसके घर गये, परन्तु वहाँ जाकर अत्यन्त असहज बोधकर वे स्वयं ही बोले थे—*"दीनेर अधिक दया करे भगवान्। कुलीन, पण्डित, धनीर बड़इ अभिमान॥* धन-ऐश्वर्य-पाण्डित्यके द्वारा हरि-गुरु-वैष्णवों को खरीदा नहीं जा सकता। ऐसे क्रयकी चेष्टासे मैं सचमुच स्वयंको अत्यन्त असहज अनुभव कर रहा हूँ। दरिद्र व्यक्तियोंमें धनके अभावके कारण सहज ही दीनभाव विद्यमान रहता है, जो कि साधन-भजनके अनुकूल है। साधुसङ्ग प्राप्त होनेपर वे अनायास ही साधन-भजनमें अग्रसर हो सकते हैं, जो धनि-मानि व्यक्तियोंके लिए कठिन है। वास्तवमें दरिद्रता अभिशाप नहीं है। बल्कि इससे गुरु-वैष्णव तथा भगवान्की कृपा प्राप्त करनेका सुयोग प्राप्त होता है।" अर्थ-पद-प्रतिष्ठाके प्रति सम्पूर्णरूपसे निर्लिप्त ऐसे अकिञ्चन साधु-महात्मा सत्य ही दुर्लभ हैं।

१०) सर्वोपकारक—*"भारत-भूमिते जन्म हइल जाहार। जन्म सार्थक करि कर पर-उपकार॥"* पर-उपकार अर्थात् श्रेष्ठ उपकार। दयानिधि श्रीचैतन्यचन्द्रकी दयाके द्वारा ही जीवमात्रका श्रेष्ठ उपकार सम्भव है। उनके द्वारा प्रवर्तित कृष्ण-सङ्कीर्तन-यज्ञकी ध्वनिसे ही पहाड़-पर्वत, वृक्ष-लता, पशु-पक्षी, एवं समस्त स्तरोंके मनुष्योंका एक ही साथ परममङ्गल हो जाता है। श्रील वामन गोस्वामी महाराजने श्रीचैतन्य महाप्रभुके द्वारा प्रवर्तित कृष्णनाम-सङ्कीर्तनका प्रचार करनेके लिए बहुतसे स्थानोंपर मठ-मन्दिरोंकी स्थापनकर समस्त प्राणियोंके उपकारकी व्यवस्था की।

जब वे भागवत पाठ कर रहे होते थे, तो कदापि यदि सर्प आदि हिंसक प्राणी भी उनके समक्ष आ जाते थे, तो वे भयभीत श्रोताओंको सर्पके प्रति किसी प्रकारकी हिंसासे रोककर उसे भी भागवत पाठ सुनाया करते थे। इसके अतिरिक्त उन्होंने अनेकों प्रेतयोनि प्राप्त जीवात्माओंको सबके अप्रत्यक्षरूपसे मध्यरात्रिमें हरिकथा तथा हरिनाम श्रवण कराकर उनका उद्धार किया है। वे निर्धन-दुखी, कङ्गालोंको भी महाप्रसाद प्रदानकर यहाँ तक कि अर्थके द्वारा भी उनकी सहायता करते थे।

११) शान्त—*"शमो मन्निष्ठता बुद्धे"* (भाः११/१९/३३)—कृष्णनिष्ठ बुद्धि होनेपर ही जीव शान्त हो सकता है। इसीलिए कृष्णभक्तके अतिरिक्त भुक्ति-कामी, मुक्ति-कामी, सिद्धि-कामी सभी व्यक्ति अशान्त रहते हैं। शान्तका तात्पर्य केवल शिष्ट या धीर होना ही नहीं, अपितु क्षोभशून्य, जितेन्द्रिय, अहिंसक, अविकृत तथा तुष्ट होना भी है। ये समस्त लक्षण श्रील वामन गोस्वामी महाराजमें शिशुकालसे ही परिपूर्णरूपसे विद्यमान थे। इसलिए उनका नाम सन्तोष था तथा वे इन लक्षणोंके कारण सबके प्रिय हुए थे। जन्मसे ही कृष्णनिष्ठ होनेके कारण मात्र नौ वर्षकी आयुमें ही गौरधाममें जाकर सम्पूर्णरूपसे कृष्णके आश्रित हो गये, वहाँसे पुनः इस अशान्त संसारमें प्रविष्ट नहीं हुए। *"संसार धर्म बड़ धर्म" "आगे भोग, परे त्याग"* अर्थात्

संसार-धर्म ही बड़ा धर्म है, पहले भोग करो, उसके बाद त्याग करो—जगत्में जो यह साधारण रीति चली आ रही है, श्रील महाराजने कभी भी किसीको भी इस रीतिका उपदेश नहीं दिया। वे कहते थे—"भोगके द्वारा भोग-प्रवृत्ति कुछ समयके लिए शान्त होनेपर भी सब समयके लिए शान्त नहीं होती। केवल साधुसङ्गके द्वारा ही चेतनाका विकास होनेपर जब जीव अपने वास्तविक धर्मका विज्ञान प्राप्त करता है, तभी आनुसङ्गिकरूपसे उसकी संसारकी भोगवासना भी शान्त हो जाती है—तभी जीवको शान्ति प्राप्त होती है तथा कृष्णसेवा द्वारा पराशान्ति प्राप्त होती है।

१२) कृष्णैकशरण—वैष्णवोंके समस्त गुण इस कृष्णैकशरण गुणको ही केन्द्रीभूत करके रहते हैं। जिस प्रकार केन्द्रबिन्दु रहनेपर ही असंख्य-बिन्दुओंके समाहार-स्वरूप वृत्तकी रचना सम्भव होती है, उसी प्रकार 'कृष्णैकशरण'-गुण रहने मात्रसे ही वैष्णव समस्त 'महागुण'-समन्वित गुणमण्डलके केन्द्रबिन्दु हो जाते हैं। किन्तु श्रील वामन गोस्वामी महाराजमें कार्ष्णैकशरण (एकमात्र कृष्णभक्तकी शरण) ही अधिकरूपमें सर्वदा लक्षित होता है। वे बार-बार इन श्लोकोंका उच्चारण किया करते थे—*"कर्मावलम्बकाः केचित् केचित् ज्ञानावलम्बकाः। वयन्तु हरिदासानां पादत्राणवाहकाः॥"* अर्थात् कुछ लोग कर्मका अवलम्बन करते हैं, कोई ज्ञानका अवलम्बन करते हैं, किन्तु हम तो हरिदासोंके संसारत्राण-कारी पादुकाओंका ही अवलम्बन करते हैं। *"सहायो मे मात्रं विपथदलनी वैष्णवकृपा।"* अर्थात् मायाको-नाश करनेवाली वैष्णवकृपा ही मेरी एकमात्र सहायक है। वे प्रायः कहते थे—"मेरा प्रत्येक कार्य ही मेरे मालिकके निर्देशानुसार होता है। मैं उनके निकट बँधा हुआ हूँ, मेरा स्वतन्त्ररूपसे कुछ भी कार्य करनेका सामर्थ्य नहीं है।" रात्रिमें विश्रामके समय उन्हें प्रायः बहुत देरतक किसीके साथ वार्तालाप करते हुए देखा जाता था। बार-बार इसका कारण पूछनेपर वे कहते—"मेरे मालिक आये थे।" 'वे मालिक कौन हैं' पूछनेपर गुरुवर्गका चित्रपट दिखा देते।

किसी मठमें सेवामें कुछ त्रुटि होनेपर ठाकुरकी अपेक्षा ठाकुरानी ही प्रायः श्रील महाराजके पास शिकायत करती थीं। उसके अनुसार ही वे व्यवस्था भी करते थे। वे प्रायः श्रीमती राधिकाजीको ठाकुरानीके नामसे ही पुकारते थे। इस प्रकार उन्होंने प्रत्यक्षरूपसे अपना कार्ष्णैकशरणत्व ही प्रमाणित किया है। वास्तवमें उनका यह कार्ष्णैकशरण-स्वभाव कृष्णैकशरण-गुणकी ही पराकाष्ठा है।

१३) अकाम—श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज जगतमें कभी भी किसीसे कुछ भी नहीं चाहते थे। वे कहते थे—"मेरे गुरुदेवने मुझसे कहा है, 'तुम्हें भगवान्की सेवाके लिए कुछ चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं है। तुम जब भी जो इच्छा करोगे, तो उसकी व्यवस्था स्वयं ही हो जायेगी।' वास्तवमें श्रीगुरुदेव ही श्रीश्रीगौर-राधाविनोद-बिहारीकी समस्त सेवाओंके मूल custodian हैं। वे ही सबकुछ व्यवस्था करते हैं। हम तो केवल उनकी व्यवस्थानुसार सेवाके उपकरण मात्रको संग्रह करते हैं। केवल जगत् ही क्यों, इस ब्रह्माण्डमें हमें किसीसे भी कुछ भी कामना करनेकी आवश्यकता नहीं है।" श्रील वामन गोस्वामी महाराज सर्वदा ही सबके सामने निरन्तर निष्कपटरूपसे गुरु एवं गौरसुन्दरकी कथाओंका ही मात्र कीर्तन करते रहते थे, कभी भी किसीसे कुछ नहीं चाहते थे। अपने गुरुवर्गके चित्रपटको देखकर कहते—"ये ही सब प्रकारसे मेरा भरण-पोषण करते हैं। जिससे कि हमारा वास्तवमें ही मङ्गल हो, वे सर्वदा ऐसी ही व्यवस्था करते थे, कर रहे हैं तथा करते रहेंगे।"

१४) निरीह—निरीह अर्थात् चेष्टाशून्य। जीवन्मुक्तोंकी समस्त चेष्टाएँ केवल कृष्णकी प्रीतिके लिए

ही होती हैं। भोग या त्याग किसी भी जीवके स्वरूपका धर्म नहीं होनेके कारण, इन विषयोंमें वे पूर्णरूपसे चेष्टाशून्य होते हैं। श्रील वामन गोस्वामी महाराजने इस प्रकार निरीह अर्थात् निश्चेष्ट रहकर शरणागतिकी पराकाष्ठाको दिखाया है। *"निज बल चेष्टा प्रति भरसा छाड़िया। तोमार इच्छाय आछि निर्भर करिया॥"* एक ओर वे श्रीहरिकी सेवामें निरन्तर तन-मन तथा वचनसे नियुक्त रहते थे, दूसरी ओर लाभ-पूजा-प्रतिष्ठा अर्जनके विषयमें सम्पूर्णरूपसे निश्चेष्ट रहते हैं।

१५) स्थिर—स्थिर अर्थात् अचल। श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज किसी सभामें या अपने पलङ्कपर कई घण्टे एक ही स्थितिमें बैठकर अपने कार्यमें निमग्न रहते थे। यह वस्तुतः उनके काय-मन-वाक्यकी स्थिरताका ही परिचायक है। किन्तु यह अस्थिर-स्वभाव हमारे लिए एक असम्भव कार्य लगता था।

एकदिन एक भक्त बहुतसे लोगोंसे पूछताछकर बहुत कठिनाईसे श्रील महाराजके समक्ष गया तथा कुछ शिकायती स्वरमें बोला—"आप एक स्थानपर स्थिर नहीं रहते। बहुत भाग-दौड़कर करनेके बाद आज आपका दर्शन मिला।" उसके उत्तरमें श्रील महाराज बोले—"मेरे समान स्थिर कितने लोग हो सकते हैं? स्थिरता किसे कहते हैं? जो श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गकी सेवामें सतत नियुक्त रहते हैं, इसके अतिरिक्त एक क्षणके लिए भी अन्य कार्यमें चेष्टा नहीं करते, वे ही स्थिर होते हैं। उनके अतिरिक्त सभी अस्थिर हैं।"

एक समय एक मठवासी द्वारा व्रजमण्डलमें किसी मठमें रहनेकी इच्छा प्रकाश करनेपर श्रील महाराज उससे बोले—"जिसे गौड़मण्डलकी महिमाकी ही उपलब्धि नहीं है, ऐसा व्यक्ति व्रजमें भी चला जाता है, तो वह व्रजमण्डलको भी वृक्ष, मार्ग, घर, तालाब तथा खेतमय ही देखेगा। इसीलिए हमारे गुरुवर्गने कहा है—*"गुरुदेव! बड़ कृपा करि गौड़ वन माझे गोद्रुमे दियाछे स्थान। आज्ञा दिला मोरे ऐइ व्रजे वसि हरिनाम कर गान॥ किन्तु कबे प्रभु योग्यता अर्पिबे, ए दासे करुणा करि। चित्त स्थिर हबे, सकल सहिब, एकान्ते भजिब हरि।"*—श्रीगुरुदेव श्रेष्ठ व्रजवासी हैं। उनके द्वारा निर्दिष्ट भजन-स्थान ही 'व्रज' है। गौड़ और व्रजवनमें अभेद दर्शनकारी ही प्रकृत व्रजवासी हैं। वे गुरुपादपद्ममें समर्पितात्मा होनेके कारण स्थिर हैं, उनकी ही ऐकान्तिक हरिभजनमें योग्यता है।"

१६) विजित षड्गुण—जो काम-क्रोध आदि छः शत्रुओं तथा वाक्य, मन तथा क्रोध आदि छः वेगोंको जय कर चुका है, वही विजित षड्गुण कहलाता है। श्रील वामन गोस्वामी महाराजके अभिधानमें स्वसुख-वासना नामक कुछ भी न रहनेके कारण षड्रिपु एवं छः वेग कभी भी उन्हें अपने वशमें नहीं कर सके। उनकी समस्त इन्द्रियाँ सम्पूर्णरूपसे श्रीगुरु-गौराङ्गके इन्द्रियतर्पणके साथ Dovetailed (adjusted) होनेके कारण वे स्वाभाविकरूपमें षड्गुण विजयी थे।

१७) मितभुक्—श्रील वामन गोस्वामी महाराज जबतक इस भूतलपर विराजमान थे, तबतक उन्होंने कभी भी आमिष(माँस)-जातीय वस्तुओंको ग्रहण नहीं किया। वे कहते थे—"मैं गुरु-वैष्णवोंका यथार्थ विघशासी भृत्य हूँ। शिशुकालसे ही उनका उच्छिष्ट खाकर ही बड़ा हुआ हूँ।" उन्होंने भूलसे भी कभी अप्रसादको गलेसे नीचे नहीं उतारा। इसीलिए भक्तिविनाशक 'अत्याहार' नामक दोष उन्हें कभी स्पर्श नहीं कर पाया। प्रसाद ग्रहण करते समय यदि कोई उनसे पूछता था कि रसोई कैसी बनी है, तो वे कहते "मैं तो प्रसाद सेवा कर रहा हूँ।" और कभी कहते—*"भाल मन्द नाहि जानि सेवा मात्र करि।"* अर्थात् मैं अच्छा या बुरा नहीं जानता, मैं तो केवल सेवा करता हूँ। इस प्रकार उन्होंने कदापि प्रसादके आस्वादनको मापनेकी शिक्षा प्रदान नहीं की। महाप्रसादके सेवनमें सीमित

भोजनका कोई प्रश्न ही न रहनेपर भी शिशुके व्यवहार-उपयोगी कुछ बाटियाँ ही उनके परिमित भोजनकी निर्णायक होती थी।

१८) अप्रमत्त—श्रील वामन गोस्वामी महाराज *"आसक्ति रहित, सम्बन्ध-सहित, विषयसमूह सकलइ माधव"*—इस रूपानुग-वाक्यमें प्रतिष्ठित होनेके कारण वे कभी भी विषय-प्रमत्ततासे प्रभावित नहीं हुए। मूल स्थान[गुरुभक्ति]में ही उनकी पूर्ण अनुरक्ति होनेके कारण जड़भोगोंका किसी प्रकारका आकर्षण उन्हें विचलित नहीं कर पाया।

१९) अमानी, (२०) मानद—श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज साक्षात् अमानी-मानद-स्वरूप थे। उन्हें परमहंसकुलचूणामणि प्रभुपाद श्रीश्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुरका दुर्लभ सान्निध्य प्राप्त हुआ, एवं उनकी व्यक्तिगत सेवाका सौभाग्य प्राप्त करनेपर भी, उनसे हरिनाम प्राप्त करनेपर भी उन्होंने स्वयंको कदापि प्रभुपादका शिष्य होनेका सौभाग्य-मद प्रकाश करनेकी चेष्टा नहीं की। वे सर्वदा ही कहते थे—"मेरे गुरुदेव जगद्गुरु श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज हैं एवं उनके गुरुदेव जगद्गुरु श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपाद है।" यहाँ तक कि एकदिन श्रील केशव गोस्वामी महाराजने उन्हें एकान्तमें 'गुरुभ्राता' कहकर सम्बोधन किया। यह सुनते ही उनकी आँखोंमें आँसू आ गये तथा उन्होंने प्रतिवाद करते हुए कहा था—"प्रभुपाद आपके हैं तथा आप मेरे हैं।" एकबार उनके किसी चरणाश्रितने उनसे पूछा—"क्या हम श्रील केशव गोस्वामीके साथ श्रील प्रभुपादको भी 'परमगुरुदेव' कह सकते हैं? इसके उत्तरमें उन्होंने कहा—"किसी एक घटनाके परिपेक्षमें ऐसा कहकर क्या तुम प्रतिष्ठा अर्जन करना चाहते हो? किन्तु मैं श्रील प्रभुपादको अपना गुरुदेव कहकर अभिमान नहीं करता, इसलिए वे तुम्हारे परमगुरुदेव नहीं हो सकते। तुम्हारे परमगुरुदेव केवल श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज ही हैं।" यहाँपर उनका स्वाभाविक अमानी-धर्म ही प्रकाशित होता है।

श्रील वामन गोस्वामी महाराजने श्रील प्रभुपादसे हरिनाम प्राप्त किया था, श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके संन्यासग्रहणसे पूर्वसे ही वे उनके मन्त्रशिष्य थे, श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके आविर्भावके प्रत्यक्षदर्शी थे, समस्त शास्त्रोंके ज्ञाता तथा साक्षात् सिद्धान्त-कोष थे तथा श्रील केशव गोस्वामी महाराज द्वारा निर्वाचित वेदान्त समितिके सभापति तथा आचार्य थे। अर्थात् सब प्रकारसे अतुलनीय होनेपर भी कभी उन्हें अपनी महिमाका बाखान करते हुए अथवा प्रतिष्ठाके लिए चेष्टाशील नहीं देखा गया। वे स्वयंको श्रीसमितिका एक नगण्य सेवक मानते थे। यहाँ तक कि उनकी आविर्भाव-तिथि आनेपर अमानी-स्वभाववशतः वे गुरुपूजा-अनुष्ठानसे बचनेके लिए एक दिन पहले ही किसी अज्ञात स्थानपर चले जाते थे।

मर्यादाके अनुरूप वे स्वयं सभीको सम्मान प्रदान किया करते थे तथा अपने आश्रितजनोंको भी सभी श्रेष्ठजनोंको सम्मान प्रदान करनेका निर्देश देकर 'मानद-धर्म'के यथार्थ स्वरूपको प्रकाशित किया करते थे। सामाजिक तथा परमार्थिक दोनों ही प्रकारके व्यक्तियोंको यथायोग्य सम्मान प्रदान करनेकी उनकी कुशलता वास्तवमें दृष्टान्त-स्वरूप थी। यदि कोई व्यक्ति उनसे सम्मान या प्रतिष्ठा चाहता, तो अन्तर्यामीरूपसे उसके मनकी बात जानकर उसे सम्मान देनेमें लेशमात्र भी सङ्कोच नहीं करते थे। इसके अतिरिक्त सम्प्रदाय-विरोधिता, भक्ति-प्रतिकूलता आदि विषयोंमें वे जो मुखर होकर प्रतिवाद करते थे, वह कदापि उनके स्वभावगत मानद-धर्मको अतिक्रम नहीं करता था।

२१) गम्भीर—श्रील वामन गोस्वामी महाराजका शिशु-तुल्य मृदुस्वभाव होनेके साथ-ही-साथ उनकी गम्भीरता भी दुर्गम थी। महाजन श्रीगुरुवर्गके प्रति

उनका पूर्ण आनुगत्य था। शब्दब्रह्म अर्थात् शास्त्रोंमें पूर्णरूपसे पारङ्गत तथा परब्रह्म अर्थात् भगवान्‌की अनुभूति-सम्पन्न होनेके कारण समुद्रतुल्य गाम्भीर्य उनके स्वभावमें निहित था। समुद्र जिस प्रकार रत्नाकर होनेपर भी बाहरसे इसका अनुभव नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार उनके गाम्भीर्यके कारण उनके हृदयस्थित उज्जवल नीलमणिकी प्रभा बाह्यरूपसे प्रकाशित नहीं हो पाती थी। इतना ही नहीं उनके अत्यन्त गाम्भीर्यके सामने हरि-कीर्तन-विमुख वाचालता स्वयं ही नतमस्तक हो जाती थी, गुरु-गौर द्रोहिता सिर उठाकर खड़ी नहीं हो पाती थी तथा प्रतिष्ठाकी आशारूपी श्वपच-रमणी सन्त्रस्त होकर दूर भागती थी।

२२) करुण—कृष्णकृपाशक्ति श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजका नवनीतके समान कोमल हृदय कारुण्य-गुणके प्रभावसे सर्वदा ही द्रवीभूत रहता था। उन्होंने सैकड़ों दरिद्र व्यक्तियोंको हरिभजनोन्मुखी देखकर उन्हें अर्थ, द्रव्य एवं सदुपदेश आदि प्रदानकर उनका भजनोपयोगी मनोबल बढ़ाकर उन्हें भजनमार्गमें अग्रसर किया। सैकड़ों व्यक्ति घोर विपत्तिके समय अपने आत्मीय बन्धु-बान्धवोंपर विश्वास न कर केवल श्रील वामन गोस्वामी महाराजको ही अपना एकमात्र निजजन मानकर निश्चिन्त रहते थे। श्रील महाराज विपत्तिके समय कभी स्वयं ही उन लोगोंके पास जाकर, कभी अपने विश्वस्त व्यक्तिको उनके पास भेजकर, कभी अत्यन्त व्यस्त रहनेपर भी पत्रादिके माध्यमसे मूल्यवान उपदेश प्रदानकर उनकी सहायता करते थे। आज भी उनकी करुणाका स्मरणकर सभी लोगोंके नेत्र अश्रुपूर्ण हो जाते हैं। उनके द्वारा लिखे गये सैंकड़ो पत्र आज भी उनकी करुणाके साक्षी हैं।

श्रील महाराजकी करुणाका एक विशेष निदर्शन यह है कि वे अपने आश्रितजनोंको सहसा ही कोई आदेश नहीं देते थे। आदेश देनेसे पूर्व वे उसकी आदेश-पालनकी क्षमता, मनोभाव तथा सेवावृत्ति आदिका विचार करते थे। वे विचार करते थे—"बद्ध-अवस्थाके कारण अनादिकालसे अपनी स्वतन्त्रताका अपव्यवहार करना जीवका स्वभाव बन गया है। यदि मैने इसे आदेश दिया तथा इसने अपने स्वभाववशतः उसका पालन नहीं किया, तो इसका 'गुरु-अवज्ञा'-रूप भयङ्कर अपराध बन जायेगा जिसके कारण इसकी और भी अधिक दुर्गति होगी। तब यह गुरु-आश्रय-विहीन होकर न जाने कबतक विभिन्न योनियोंमें भटकता रहेगा। पुनः सद्गुरुका आश्रय न मिलनेके कारण न जाने कितने जन्म और विलम्ब हो जायेगा। इस प्रकार मेरे द्वारा उसका कल्याण न होकर अकल्याण ही होगा। ये तो अबोध हैं, परन्तु मैं तो अबोध नहीं हूँ।" ऐसा विचारकर वे आदरपूर्वक कहते थे—"मैं तुमसे कुछ कहूँगा, तो क्या तुम करोगे? अथवा यह कार्य करनेपर हरि-गुरु-वैष्णव तुमपर अति प्रसन्न होंगे।"—इस प्रकार वे परोक्षरूपसे आदेश करते थे। बद्धजीवोंके प्रति महामुक्त भगवत्-पार्षदोंका हृदय ऐसा ही करुणापूर्ण होता है।

सन् १९८२ई. में श्रील वामन गोस्वामी महाराजके एकनिष्ठ सेवक श्रीसुन्दरानन्द प्रभु आसामके टङ्गला-शहरमें अकस्मात् एक छोटी-सी दुर्घटनामें अप्रकट हो गये थे। उस समय सेवकके विरहमें वे स्तम्भित हो गये। गम्भीर स्वभाव-सम्पन्न श्रील महाराजके हृदयका अगाध सेवक-वात्सल्य तथा उसके लिए प्रवाहमान कारुण्यका एक करुण चित्र तत्कालीन सह-सभापति—श्रील नारायण गोस्वामी महाराजको उनके द्वारा लिखे गये एक पत्रके माध्यमसे प्रकाशित हुआ है, यथा—"एक सेवक कुछ समयके पश्चात् ही चिरकालके लिए हमारा परित्यागकर कैसे चला गया, मैं समझ नहीं पा रहा हूँ। ××× उसने यदि आपके चरणोंमें ज्ञात-अज्ञातरूपमें किसी प्रकारका अपराध किया हो, तो आप उसे अवश्य ही क्षमा करेंगे एवं अन्यान्य वैष्णवोंको भी उसके दोष-त्रुटियोंको क्षमा करनेके लिए कहेंगे—यही मेरी प्रार्थना है। सेवकगण गुरुगृहसे क्यों चले जाते हैं? इसका सीधा उत्तर है—स्वतन्त्रताका अपव्यवहार। यदि मठ-कर्तृपक्षके ऊपर दोषारोप किया

जाय, तो यह रीति-विरुद्ध है, मर्यादाका उल्लङ्घन है। बिना समालोचनाके कोई सेवक चिरकालके लिए हमें छोड़कर न जाय, क्या ऐसा कोई नियम करना सम्भव है? यदि ऐसी कोई रीति-नीतिसे आप अवगत हैं, तो कृपापूर्वक मुझे अवश्य ही बतायें" (श्रीगौड़ीय-पत्रिका, ३४ वर्ष, संख्या ११)

२३) मैत्री—भगवान्‌के भक्तोंके प्रति श्रील वामन गोस्वामी महाराजकी मैत्री-भावना भी अगाध थी। वे श्रील प्रभुपादके आश्रित त्यागी भक्तोंकी गुप्तरूपसे कितनी सेवा करते थे, उसका कोई हिसाब नहीं। खड़गपुरमें स्थित श्रीगौरवाणी-विनोद-आश्रमके प्रतिष्ठाता नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिजीवन जनार्दन गास्वामी महाराजके साथ उनकी जो मित्रता थी, जिन्होंने उसका सामान्य मात्र भी दर्शन किया है, वे ही इसकी कुछ उपलब्धि कर सकते हैं कि महाभागवतोंकी परस्पर मित्रता कैसी होती है। किसीको भी निष्कपटरूपसे भगवान्‌की सेवामें नियुक्त देखकर, वे कोई भी क्यों न हों, उनके प्रति श्रील महाराजके स्नेहकी सीमा नहीं रहती थी, उसके लिए उनके द्वार सदा खुले रहते थे।

२४) कवि—काव्य-रचयिता या काव्य-आस्वादकको 'कवि' कहते हैं। कविका अर्थ विद्वान् भी होता है। पूर्व एवं पश्चिम देशोंके कवियों द्वारा रचित असंख्य बङ्गला तथा अंग्रेजी कविताएँ जो श्रील वामन गोस्वामी महाराजके विद्यालयमें पाठ्यक्रममें थी, उन्हें ज्यों-की-त्यों मुखस्थ थीं। उनमेंसे किस कविने कितना ईश्वरभक्तिका आभास अनुभव किया है, किस कवितामें ईश्वरभक्तिके अनुकूल कितनी शिक्षाएँ दी गई हैं, वे इसकी सुन्दररूपसे व्याख्या किया करते थे। जहाँ साधारण पाठक उन कविताओंका पढ़कर मायाके सम्मोहिनी रूपके प्रति अधिक आकृष्ट हो जाते हैं, परन्तु श्रील महाराज छात्रावस्थासे ही जब उन कविताओंको पढ़ते थे, उन्हें भक्तिके अनुकूल भावोंकी उद्दीपना होती थी—यह निश्चय ही उनकी अप्राकृत 'कवि'-गुणोचित अनुभूति है।

अप्राकृत कवियोंके द्वारा रचित कितनी कविताएँ उन्हें मुखस्थ थीं, उनकी कोई गिनती नहीं थीं। गङ्गाके प्रवाहकी भाँति अविच्छिन्न धारामें उनके श्रीमुखकमलसे निकलनेवाले काव्यको श्रवणकर ऐसा प्रतीत होता था, जैसे कि अप्राकृत जगत्‌से कोई दूत जगत्‌में उतर आया हो। इसी कारण श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजने उन्हें 'जीवन्त गौड़ीय अभिधान'के रूपमें जगत्‌में परिचित कराया था। परन्तु उनका यह ज्ञानका भण्डार कृष्णभक्तिशून्य भारवाहिता-मात्र या लाभ-पूजा-प्रतिष्ठा प्राप्तिका माध्यम-मात्र नहीं था। वास्तवमें ही वे अप्राकृत काव्य-रसभाविता-मतिवाले कवि थे। उनके द्वारा रचित एक छोटी-सी कविता ही उनके कवि-स्वभाव एवं उनके हृदयके अप्राकृत भावोंको प्रकाशित कर देती है—

केह चाय शुधु पीत-गौर, केह चाय श्याम नील,
आमि चाहि शुधु रामधनु-रङ्ग, जाहाते सकलि मिल।
केह भालवासे स्वर्ण-चाँपा, केह भालवासे शुधु जुँइ,
साजान बागाने स्नेह-ममताय, काके रेखे काके छुइ।
भालवासि सबे 'आपन' भाविया, बाँधिया प्रीतिर राखी,
केह नहे पर, पाय समादर, गुण-सौरभे सब ढाकि।

[अर्थात् कोई केवल 'पीत-गौर' वर्णको चाहता है, तो कोई 'श्याम-नील' वर्णको, किन्तु मैं केवल रामधनु (इन्द्रधनुष) रङ्गको चाहता हूँ, जिसमें सभी रङ्गोंका समावेश है। कोई 'स्वर्ण-चम्पक' पुष्पको पसन्द करता है, तो कोई केवल 'जूही' फूलको, किन्तु इन समस्त फूलोंके द्वारा सुसज्जित बागानमें सभी फूलोंके प्रति मेरी ऐसी स्नेह-ममता है कि किस फूलकी उपेक्षा करूँ और किस फूलको ग्रहण करूँ (मैं यह समझ नहीं पाता)। मैं सभीको ही अपना जानकर प्रीतिकी राखीसे बाँधकर रखता हूँ। मेरे लिए कोई भी पराया नहीं है—मैं सभीको ही स्नेह, ममता, दया, मित्रता इत्यादि 'गुण-रूपी पुष्प-सौरभ'के द्वारा आलुप्त करके समादर करता हूँ।]

२५) दक्ष—मायामुग्ध जीवकी स्मृति लुप्त हो चुकी है कि उसका भगवान्‌के साथ क्या सम्बन्ध है। अतः जीवोंपर कृपा करनेके लिए भगवान्‌ने वेद आदि शास्त्रोंको प्रकाशित किया, जिनमें विभिन्न प्रकारके अधिकारियोंके लिए विभिन्न प्रकारके विधि-विधानोंके माध्यमसे कृष्ण-स्मृतिको जगानेके लिए क्रमपन्थ प्रकाशित हुआ है। किन्तु श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज अत्यन्त दक्षतापूर्वक उन शास्त्रीय-विधियोंका स्वयं ही आचरणकर जगत्‌के जीवोंके सामने इस प्रकारसे प्रकाशित करते थे, कि जीव शुद्धभावसे साधन-भजनमें अग्रसर होनेकी प्रेरणा प्राप्त करते थे। वे प्रायः कहा करते थे—"शास्त्रोंके समस्त उपदेश किसी अन्यके लिए नहीं, केवल मेरे लिए ही हैं।" एकबार किसीने उनसे पूछा—"गुरुदेव! तो क्या वे उपदेश हमारे लिए नहीं हैं।" इसके उत्तरमें उन्होंने कहा—"तुम लोग यदि मेरे हो, तो वे उपदेश तुम्हारे लिए भी हैं।" अर्थात् 'शास्त्रके समस्त उपदेश केवल मेरे लिए ही हैं, इसलिए ऐसा जानकर मैं पूर्ण निष्ठाके साथ उन उपदेशोंका पालन करता हूँ। वे दूसरोंके लिए नहीं होनेके कारण दूसरा कोई उन उपदेशोंका पालन करता है कि नहीं मैं इसे नहीं देखता। तुम लोग यदि मेरे ऐसे विचार-ग्रहणकारी सन्तान हो, तो इन सब उपेदशोंका पालनकर तुम भी अवश्य ही लाभवान होओगे।

विभिन्न प्रकारकी तुलनामूलक आलोचनाओंके द्वारा भुक्ति-मुक्तिकी पिपासाकी हेयताको दिखाकर कृष्णभक्तिको ही जीवोंके आत्मधर्मके रूपमें स्थापित करनेमें वे परम दक्ष थे। श्रोता एक हो, दस हों या हजारों हों, जीवोंको आत्मधर्म—भक्तिमें स्थापित करनेके लिए उनका प्रयास सर्वदा ही शत-प्रतिशत रहता था। इस प्रकार दिनमें कितनी ही बार श्रद्धालु लोग उनके पास आते थे, या विभिन्न स्थानोंसे उन्हें धर्मसभाका निमन्त्रण आता था अथवा विभिन्न घरोंमें हरिकथा-परिवेषणके लिए उनके पास प्रार्थनाएँ आती थीं, वे सब समय पूर्णरूपसे अक्लान्तरूपमें चेष्टापरायण होते थे। इसके लिए वे कभी भी प्राकृतिक दुर्योग या शारीरिक असुविधाओंको महत्व नहीं देते थे। श्रील महाराजने अपने एक पत्रमें लिखा है—"आत्मकल्याण तथा शिक्षाप्राप्त करनेके लिए कठोर साधनकी आवश्यकता है। *"यद्यदाचरति श्रेष्ठः तत्तदेवेतरो जनः।"* अतः स्वयं आचरणशील न होनेपर प्रचारका कोई अवसर नहीं होता। परम मुक्तलोग भी लोक-शिक्षाके लिए साधककी भूमिकाको ग्रहणकर विधि-निषेध आदिका पालन करते हैं तथा भजनकी उपयोगिताको दिखाते हैं।"

श्रील वामन गोस्वामी महाराजकी अमृतमयी तथा सर्वसंशय-नाशक हरिकथा जिनके कानोंमें एकबार भी चली जाती थी, वे उसके वैशिष्ट्यको निश्चितरूपमें अनुभव करते थे। सम्प्रदायकी रक्षाके लिए उन्होंने अति दक्षतापूर्वक गोस्वामियोंके अनेक दार्शनिक ग्रन्थोंको प्रकाशित किया। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर, श्रील प्रभुपाद तथा श्रील केशव गोस्वामी महाराजकी विचारधाराके अनुसार तत्त्वसिद्धान्तमूलक गोस्वामी ग्रन्थोंको वैशिष्ट्यके साथ प्रकाशित करना उनकी एक बहुत बड़ी दक्षता थी।

२६) मौनी—कलि-कोलाहलमय युगमें कृष्णेतर कथाओंमें मौन रहना ही बुद्धिमत्ता है—श्रील वामन गोस्वामी महाराजका यह विशेष उपदेश है। वे प्रायः कहते थे—"मेरे प्रति गुरुदेवका अन्तिम आदेश था—*देखबि, सुनबि, बलिब ना*—नेत्र हैं तो देखना, कान हैं तो सुनना, परन्तु मुख होनेपर भी बोलना नहीं।" उन्हें वास्तवमें ही सर्वदा उक्त वाक्यनिष्ठ देखा जाता था। कलिहत मनुष्योंकी चित्तवृत्ति देखकर वे कैसे मौनी तथा निःसङ्ग रहते थे; यह उनके द्वारा लिखित पत्रके माध्यमसे जाना जाता है—"सत्य बात यह है कि वर्तमान परिस्थितियोंको देखकर और कहीं भी जानेकी इच्छा नहीं होती। मनुष्योंका चित्त अत्यन्त कलुषित हो चुका है, कोई व्यक्ति किसीका भी भला नहीं देख सकता। ×××मनुष्योंमें धैर्य, सहनशीलता, सरलता बिल्कुल भी नहीं रह गयी है। तो फिर ऐसी अवस्थामें साधन-भजन कैसे सम्भव है? यह देखकर मैं स्वयं ही बहुत ही reserved हो गया हूँ। मैं अपनी

सत्-मनुष्यताको लेकर चलना चाहता हूँ। मैंने अति कष्टसे गुरु-वैष्णवोंकी कृपासे मनुष्यके गुणोंको प्राप्त किया है, अतः विजातीय व्यक्तियोंके सङ्गमें समय नष्ट नहीं करना चाहता। इसीलिए एकान्तमें जीवन-यापन करनेकी प्रबल इच्छा है। बहुतसे लोगोंमें रहकर भी मैं निःसङ्ग रहकर जीवनयापनमें अभ्यस्त हूँ।"

जान-सुनकर भी किसीको अन्याय करते देखकर श्रील महाराज उसका प्रतीकार न कर मौन हो जाते थे। कभी-कभी उनका मौन-अवलम्बन शासनके लिए भी होता था। 'गूँगेका कोई शत्रु नहीं होता'—ऐसा कहकर वे कलियुगके एकमात्र महागुण कृष्णकीर्तनमें मग्न रहकर निःसङ्गमें रहते थे एवं अन्योंको भी ऐसा ही उपदेश दिया करते थे। किन्तु अन्तिम समयमें यह देखकर कि इस दोषाकर कलियुगमें 'गूँगेके भी शत्रु होते हैं', उन्होंने एक विशेष व्याधिको स्वीकार करनेके छलसे जड़भरतकी भाँति बाह्यरूपमें जड़प्राय होनेका अभिनय करना आरम्भ कर दिया।

अन्त्यलीला एवं अप्रकटलीला

अन्त्यलीला-परायण श्रीमन्महाप्रभुकी भाँति ही श्रील वामन गोस्वामी महाराज अधिकांश समय अन्तर्दशामें अपने सेवाराज्यमें अवस्थान करते-करते बाह्यरूपसे किसी-किसी समय अपनी 'ठाकुरानी'को पुकारते। कभी—**"कृष्ण रे! बाप रे कोथा मोर हरि। कोन दिके गेला मोर प्राण करि चुरि॥"** अर्थात् "कृष्ण रे! बाप रे! मेरे हरि कहाँ है? मेरे प्राण चोरी करके वे किधर चले गये?" कहते-कहते शय्याके ऊपर छटपट करते। कभी तो वे आधी रातमें उठकर श्रीमद्भागवत-ग्रन्थको अपने वक्षपर धारण करके एकटक उस ग्रन्थका दर्शन करते रहते। 'कृष्ण' को छोड़कर अन्य सभी बातोंमें वे अत्यन्त विरक्तिका भाव प्रदर्शित करते थे। और फिर कभी अनजानेमें अपनी सेवाराज्यकी कुछ बातोंको प्रकाशित कर देते और अगले क्षण ही उनको बाह्यज्ञान होनेपर अपने आपको वे गोपन कर लेते। श्रील वामन गोस्वामी महाराजके द्वारा उनके स्वरूपको सदा ही गोपन करनेकी चेष्टा करनेपर भी उनके अन्तरमें स्थित व्रजगोपी-भाव अनेक बार विभिन्न हाव-भावसे प्रकाशित हो जाता। जिनको इन सब निज स्वरूपोचित अप्राकृत भावोंका उस समय दर्शन करनेका और उनकी साक्षात् सेवा करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था, वे वास्तवमें भाग्यवान् हैं।

श्रील वामन गोस्वामी महाराजको बहुत बार अपने अप्रकट होनेके सम्बन्धमें कहते हुए सुना जाता था—"मैं गङ्गातटपर भगवद्धाममें चारों ओर उच्च-सङ्कीर्तन ध्वनिके मध्यमें इस जगत्से चला जाऊँगा।" वह समय निकट आ गया था। वैद्यवाटीके गङ्गातटपर स्थित श्रीनिमाइतीर्थ गौड़ीय मठमें उनकी सेवा शुश्रूषा चल रही थी। दामोदर-व्रत प्रारम्भ होनेसे पहले एकादशी-तिथिमें वे उनके नित्यधामसे जैसे कोई सङ्केत अनुभव करके नवद्वीप-धाममें चले आये। देशकी विभिन्न दिशाओंसे अनेक-अनेक भक्तगण भी श्रीधाममें श्रील महाराजके सान्निध्यमें दामोदर-व्रत पालन करनेके लोभसे नवद्वीप स्थित श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें एकत्रित होने लगे। भक्तोंकी दर्शनकी आकाङ्क्षाको पूर्ण करनेके लिये वे समय-समय पर उनके नयनपथपर उपस्थित होकर सभीको आनन्द-सागरमें निमज्जित करते। किन्तु श्रीअन्नकूट-महोत्सवके दिनसे उनके श्रीअङ्ग सभीकी दृष्टिको मायासे आच्छादित करते हुए स्वास्थ्य त्याग करने लगे। अगले दिन १४ नवम्बर, २००४ई. रविवारको जब उनका स्वास्थ्य और बिगड़ गया तो सभी उनको कलकत्ता स्थानान्तरित करनेका विचार करने लगे। किन्तु उनके स्वतन्त्र श्रीअङ्गने सभीकी इच्छाको व्यर्थ कर दिया—उन्होंने सङ्कल्प कर लिया कि वे गङ्गातट-स्थित नवद्वीपके अभिन्न गोवर्धन-स्थानको त्यागकर, एक पग भी नहीं हिलेंगे, तब किसका सामर्थ्य था जो उन्हें उनके सङ्कल्पसे च्युत कर सके? सभी भक्तगण आकुल होकर उनके चारों ओर बैठकर निरन्तर उच्च-सङ्कीर्त्तन करने लगे। रात्रि जैसे-जैसे व्यतीत हो रही थी, उनका श्रीअङ्ग सबमें विरहकी आशङ्का और भी जगाता जा

रहा था। तब उनके निकट स्थित सेवकोंने उनके श्रीअङ्गके दिव्य ललाटपर अभी केवल तिलक ही अङ्कित किया था, उसी समय वे हम सबको पत्याग करके चले गये। तब रात्रिमें १२-३७ बजे शुक्ल तृतीया तिथि, अमृतयोग था। समस्त मठवासी और गृहस्थ भक्तगण भूमिपर पछाड़ खाकर गिर गये और हृदयविदारक आर्त्तनाद करने लगे। अकस्मात् सभी अपने आपको अनाथ अनुभव करके दिशाहीन हो गये।

जगद्गुरु श्रीश्रीभक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी प्रभुने अपने निकटतम जनको, जो चिरकालके लिये ही उनके दाहिने हाथ स्वरूप थे, अन्तकालमें भी अपने निकटमें दक्षिणदिशामें स्थान प्रदान किया।

भीष्म पितामहकी भाँति स्वेच्छापूर्वक देहत्यागमें समर्थ श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजने अपने वयोज्येष्ठ गुरु-भ्राता (श्रील भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम गोस्वामी महाराज)के उद्देश्यसे एकदा किए गये सङ्कल्पकी रक्षा करते हुए—उनकी अप्रकट तिथिको आश्रय करके ही इस जगत्से निर्याण-लीला की, अर्थात् अपने गुरु-भ्राताकी स्मृति एवं महिमाको चिरकाल तक सञ्जीवित रखते हुए कार्तिक मासकी शुक्ल-तृतीया तिथिको ही चयनकर अपनी अप्रकटलीला अविष्कार की। इस प्रकार स्वाश्रितजनोंके द्वारा अनुष्ठित अपनी (श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजकी) वार्षिक तिरोभाव तिथिपर स्वाभाविक रूपसे ही श्रील भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम गोस्वामी महाराजका भी स्मरण एवं उनकी गुण-महिमाका कीर्तन सञ्जीवित रहेगा।

भगवत्-पार्षदोंका आविर्भाव और तिरोभाव, दोनों ही जगत्-कल्याणके उद्देश्यसे सङ्घटित होते हैं। सद्गुरु-चरणाश्रय प्राप्त करके भी हमें केवल बाह्यदर्शनमें आबद्ध रहते हुए देखकर वे यह विचार करने लगे—"मैं जबतक साक्षात् रूपमें जगत्में रहूँगा, तबतक ये केवल बाह्यरूपसे ही मेरे दर्शनकर, 'मैंने दर्शन कर लिया है', जानकर आत्मसन्तुष्ट होते रहेंगे—मैं वास्तवमें कौन हूँ, उसे अनुभव करनेकी चेष्टा भी नहीं करेंगे। इसलिये इनके कल्याणके लिये मुझे इस जगत्से अपने आपको गोपन करना ही होगा। इसके द्वारा जिस प्रकार ये इस मानव-जीवनकी अनित्यताको समझकर वैराग्यवान् होंगे, वैसे ही दूसरी ओर मेरे प्रति जिनकी कुछ प्रीति उदित हुई है, वे मुझे 'आश्रयविग्रह' जानकर मुझ नित्य-तत्त्वके साथ मिलनेके लिये युक्तवैराग्यके साथ उत्कण्ठा सहित साधन-भजन-राज्यमें अवस्थित होनेका प्रयास करेंगे।" श्रील वामन गोस्वामी महाराजकी इस एकान्तिक इच्छा और उनके विभिन्न उपदेशोंके अनुसार अब यही हमारा एकमात्र कर्त्तव्य हो गया है।

जय परमाराध्य आश्रयविग्रह श्रीविनोदप्रेष्ठ जगद्गुरु नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजकी जय! जय विषय-विग्रह श्रीश्रीगौर-नित्यानन्द, श्रीश्रीगौर-गदाधर, श्रीश्रीराधाविनोदबिहारीजी की जय!

सेइ से परमबन्धु, सेइ पिता माता।
श्रीकृष्णचरणे येइ प्रेम-भक्तिदाता॥
सकल जन्मे पिता-माता सबे पाय।
कृष्ण-गुरु नाहि मिले, भजय हियाय॥

(श्रीचैतन्यमङ्गल मध्य खण्ड)

"जो श्रीकृष्णके चरणोंमें प्रेमभक्तिकी शिक्षा प्रदान करते हैं, वे ही परमबन्धु एवं माता-पिता हैं। प्रत्येक जन्ममें सभीको माता-पिता मिलते हैं, किन्तु श्रीकृष्ण और श्रीगुरुका मिलना बहुत ही दुर्लभ है, इसलिये मनुष्य जन्ममें ही श्रीगुरु-चरणाश्रय करके श्रीकृष्णका भजन करना चाहिये।"

['श्रीवामन गोस्वामी महाराजेर प्रबन्धावली' से अनुदित]

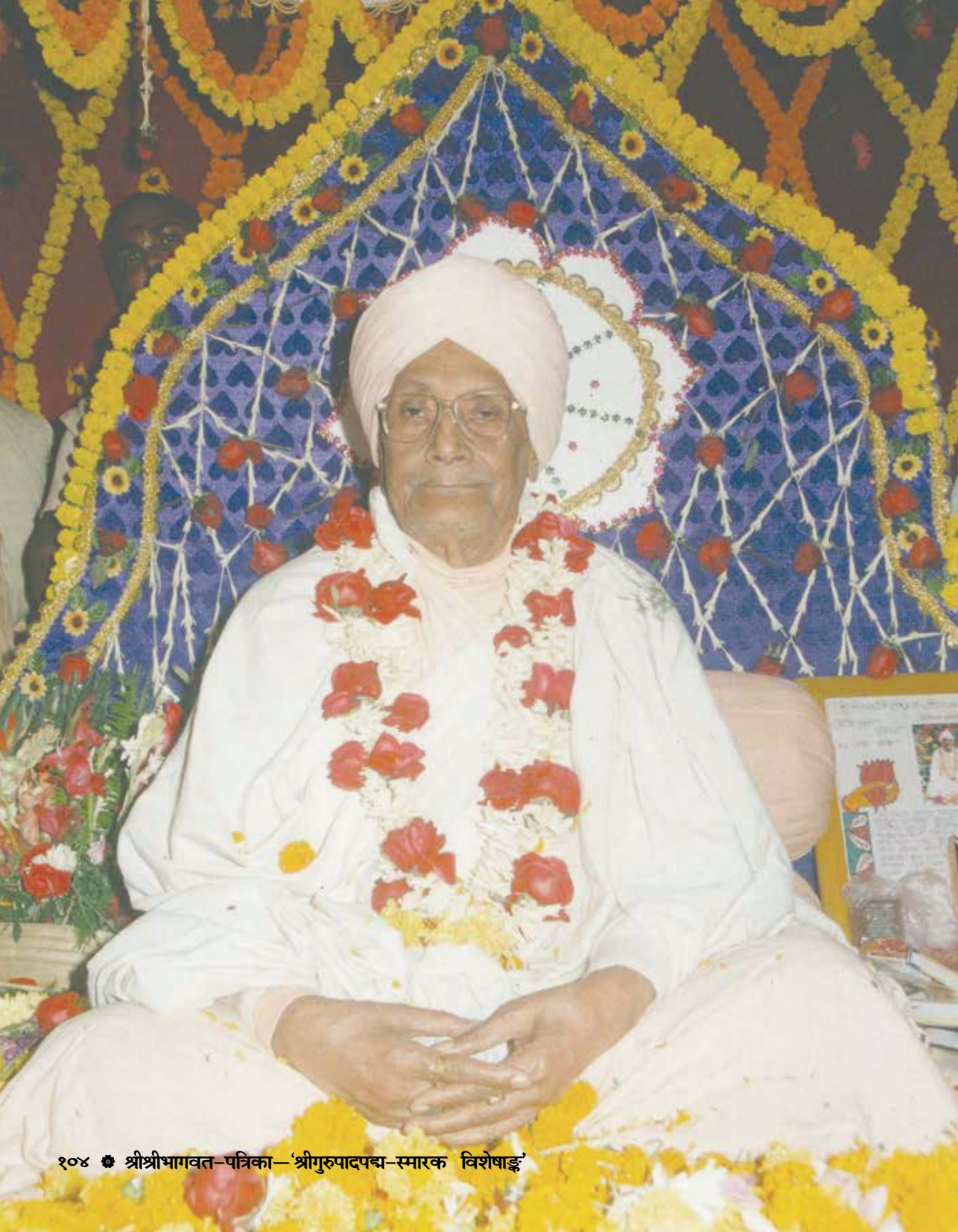

चरणाश्रित एवं अनुगतजनों द्वारा प्रदत्त पुष्पाञ्जलि

श्रीलभक्तिवेदान्त-वामनगोस्वामि-द्वादशकम्

[श्रीहरिप्रियदासेन विरचितम्]

कृष्णपादारविन्देन सम्बन्धदं
घोरसंसारचक्राच्च निस्तारकम्।
श्रीव्रजप्रेमसिन्धौ निमज्जायकं
श्रीगुरुं वामनं स्वामिनं सम्भजे॥ १॥

मैं श्रीलभक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी नामक अपने सेव्य श्रीगुरुदेवका सम्यक् प्रकारसे भजन करता हूँ, जो श्रीकृष्णके चरणकमलोंके साथ हमलोगोंको सम्बन्ध प्रदान करनेवाले हैं और इस घोर संसारचक्रसे निस्तार कर श्रीव्रजप्रेमके सागरमें निमज्जन करानेवाले हैं॥ १॥

शिष्यसङ्क्लेशसन्दोहसंशातनं
स्निग्धकारुण्यदृष्ट्या च संलालकम्।
शिष्यवात्सल्यभावेन गोसन्निभं
श्रीगुरुं वामनं स्वामिनं सम्भजे॥ २॥

मैं श्रीलभक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी नामक अपने सेव्य श्रीगुरुदेवका सम्यक् प्रकारसे भजन करता हूँ, जो शिष्योंके अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश—इस महान् क्लेशसमूहका पूर्णतः विनाश करनेवाले हैं, अपनी स्नेहयुक्त करुणामयी दृष्टिके द्वारा शिष्योंका भलीभाँति लालन करनेवाले हैं तथा गौके द्वारा नवजात बछड़ेके प्रति वात्सल्यके समान ही शिष्योंके प्रति वात्सल्यका भाव रखनेवाले हैं॥ २॥

तप्तहेमप्रभं दीर्घबाहुद्वयं
रम्यहासच्छटादीप्तसौम्याननम्।
दण्डकाषायवस्त्राञ्चितं मोहनं
श्रीगुरुं वामनं स्वामिनं सम्भजे॥ ३॥

मैं श्रीलभक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी नामक अपने सेव्य श्रीगुरुदेवका सम्यक् प्रकारसे भजन करता हूँ, जो स्वर्णके समान कान्तिमान्, दीर्घ भुजाओंवाले, रम्य हास्यकी रश्मियोंसे शोभित सुन्दर मुखमण्डलवाले, त्रिदण्ड एवं काषाय वस्त्रसे युक्त तथा अपने इस रूपके द्वारा हम सबको मुग्ध करनेवाले थे।

सज्जनानां सदा सेवने दीक्षिता-
च्छ्रीगुरुप्राप्तनाम्नो महाविग्रहम्।
वैष्णवाचारमार्गे दृढं वैष्णवं
श्रीगुरुं वामनं स्वामिनं सम्भजे॥ ४॥

मैं श्रीलभक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी नामक अपने सेव्य श्रीगुरुदेवका सम्यक् प्रकारसे भजन करता हूँ, जो सदा सत्पुरुषोंके सेवनके विषयमें दृढ़व्रती होनेके कारण वैष्णवी दीक्षाके समय श्रीगुरुके द्वारा प्राप्त 'सज्जनसेवक'—इस नामकी महामूर्ति थे एवं वैष्णव-आचार-मार्गमें अत्यन्त दृढ वैष्णव थे।

केशवेत्यस्य प्राणप्रियं श्रीगुरोः
तत्प्रीतिं गाढभक्तेः काष्ठां गतम्।
सर्वथा तन्निदेशानुगं सेवकं
श्रीगुरुं वामनं स्वामिनं सम्भजे॥ ५॥

मैं श्रीलभक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी नामक अपने सेव्य श्रीगुरुदेवका सम्यक् प्रकारसे भजन करता हूँ, जो कि श्रीलभक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी नामक अपने गुरुके प्राणप्रिय थे, अपने गुरुके प्रति प्रगाढ़ भक्तिकी पराकाष्ठाको प्राप्त कर चुके थे एवं सर्वथा अपने गुरुदेवके आदेशका अनुगमन करनेवाले सेवक थे।

प्रेष्ठगौड़ीयवेदान्तसंस्थानपं
दुष्टशास्त्रीयसिद्धान्तविध्वंसकम्।
शास्त्रकण्ठीकृतं शङ्करं शंसितं
श्रीगुरुं वामनं स्वामिनं सम्भजे॥ ६॥

मैं श्रीलभक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी नामक अपने सेव्य श्रीगुरुदेवका सम्यक् प्रकारसे भजन करता हूँ, जिन्हें अपने गुरुके द्वारा स्थापित श्रीगौड़ीय-वेदान्त-समिति

बहुत प्रिय थी और वे इसका पालन करनेवाले थे, जो शास्त्रसे सम्बन्धित दुष्ट सिद्धान्तोंका विध्वंस करनेवाले थे, समस्त शास्त्र जिनके कण्ठमें स्थित थे, जो सबका कल्याण करनेवाले थे और सबके द्वारा प्रशंसित थे।

श्रीलनारायणाद्येकतीर्थैः सदा
सख्यभावं भजन्तं कृपासागरम्।
भक्तिशास्त्रप्रकाशे सदा तत्परं
श्रीगुरुं वामनं स्वामिनं सम्भजे॥ ७॥

मैं श्रीलभक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी नामक अपने सेव्य श्रीगुरुदेवका सम्यक् प्रकारसे भजन करता हूँ, जो श्रीलभक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी, श्रीलभक्तिवेदान्त त्रिविक्रम गोस्वामी एवं अपने अन्य सतीर्थोंके प्रति सख्य भाव धारण करनेवाले थे, कृपाके सागर थे और भक्तिशास्त्रके प्रकाशनमें सदा तत्पर रहनेवाले थे।

कृष्णचैतन्यनिर्दिष्टमार्गस्थितं
नामसङ्कीर्तनप्रेमसञ्चारकम्।
रूपगोस्वामिशास्त्रेषु पारङ्गतं
श्रीगुरुं वामनं स्वामिनं सम्भजे॥ ८॥

मैं श्रीलभक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी नामक अपने सेव्य श्रीगुरुदेवका सम्यक् प्रकारसे भजन करता हूँ, जो श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुके द्वारा निर्दिष्ट भक्तिमार्गमें स्थित रहनेवाले थे, नामसंकीर्तनके माध्यमसे श्रीकृष्णप्रेमका जीवोंमें सञ्चार करनेवाले थे और श्रीलरूपगोस्वामीके द्वारा प्रणीत शास्त्रोंमें पारंगत थे।

श्रीविनोदेन सन्दर्शिता या प्रथा
भक्तिसिद्धान्तपादैश्च संवर्धिता।
तत्र स्नातं च तस्याः परं वाहकं
श्रीगुरुं वामनं स्वामिनं सम्भजे॥ ९॥

मैं श्रीलभक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी नामक अपने सेव्य श्रीगुरुदेवका सम्यक् प्रकारसे भजन करता हूँ, जो श्रीलभक्तिविनोद ठाकुरके द्वारा सन्दर्शित और श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादके द्वारा संवर्धित भजन-प्रणालीमें निष्णात थे एवं उस प्रणालीके परम वाहक थे।

माधुरीभारतीदुष्टचित्ताहृतं
शास्त्रसङ्ख्याननैपुण्यधीशोधकम्।
वेदसारोक्तधर्मस्य सन्देशिकं
श्रीगुरुं वामनं स्वामिनं सम्भजे॥ १०॥

मैं श्रीलभक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी नामक अपने सेव्य श्रीगुरुदेवका सम्यक् प्रकारसे भजन करता हूँ, जो अपनी मधुरमयी वाणीके द्वारा दुष्टोंके भी चित्तका आकर्षण करनेवाले थे, शास्त्रके सम्यक् व्याख्यानमें निपुणताके द्वारा सबकी बुद्धिका शोधन करनेवाले थे एवं श्रीमद्भागवतमें वर्णित परम धर्मका सन्देश देनेवाले थे।

कृष्णपादारविन्दासवास्वादकं
कृष्णनामामृतास्वादनैकव्रतम्।
कृष्णलीलास्मृतौ सर्वदा मज्जितं
श्रीगुरुं वामनं स्वामिनं सम्भजे॥ ११॥

मैं श्रीलभक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी नामक अपने सेव्य श्रीगुरुदेवका सम्यक् प्रकारसे भजन करता हूँ, जो श्रीकृष्णके चरणकमलोंके मकरन्दका आस्वादन करनेवाले थे, श्रीकृष्णके नामरूपी अमृतका आस्वादन करना ही जिनका मुख्य व्रत था एवं जो सर्वदा श्रीकृष्णलीलाकी स्मृतिमें निमग्न रहते थे।

राधिकादास्यभावेन फुल्लं मुदा
कुञ्जमातङ्गकैङ्कर्यमग्नं सदा।
श्रीलरूपानुगाचार्यवर्यं प्रियं
श्रीगुरुं वामनं स्वामिनं सम्भजे॥ १२॥

मैं श्रीलभक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी नामक अपने सेव्य श्रीगुरुदेवका सम्यक् प्रकारसे भजन करता हूँ, जो श्रीमती राधिकाके दास्यभावसे प्रफुल्ल रहते हैं, आनन्दपूर्वक सदा निकुञ्जके मातंगों (श्रीश्रीयुगलकिशोर) के कैंकर्यमें मग्न रहते हैं, श्रीलरूपगोस्वामीके अनुगत आचार्योंमें श्रेष्ठ हैं और हमलोगोंके परम प्रिय हैं।

श्रीगुरुपापद्मकी आविर्भाव-शतवार्षिकीके उपलक्ष्यमें विनम्र-श्रद्धाञ्जलि

—श्रीमद्भक्तिवेदान्त परिव्राजक महाराज (नवद्वीप)

सर्वप्रथम मदीय गुरुपादपद्मके श्रीचरणोंमें मेरी सकातर प्रार्थना है कि वे मुझे शक्ति प्रदान करें, जिससे कि मेरी स्मृतिपटलमें जो कुछ भी आये मैं उसमेंसे कुछ लिखनेका प्रयास कर सकूँ। श्रीगुरु-महाराज मात्र नौ वर्षकी आयुमें ही मठमें आ गये थे। इतनी कम आयुसे ही उनका मठवास आरम्भ हुआ। श्रीभगवान्ने कहा है—*"प्रथमन्तु गुरुं पूज्यं ततश्चैव ममार्चनम्। कुर्वन् सिद्धिमवाप्नोति ह्यन्यथा निष्फलं भवेत्॥* अर्थात् सर्वप्रथम श्रीगुरु-महाराजकी पूजा करनी चाहिए, उसके बाद ही भगवान्की पूजाका विधान शास्त्रोंमें दिया गया है। समग्र गौड़ीय वैष्णववृन्द श्रीगुरुपापद्मकी आविर्भाव-तिथिमें श्रीव्यासपूजा महोत्सव विशेषरूपसे मनाते हैं।

श्रीचैतन्य महाप्रभुने श्रीवास पण्डितके गृहमें श्रीनित्यानन्दप्रभुकी पूजाकर इस व्यासपूजाका प्रचलन किया था। श्रीनित्यानन्दप्रभु अखण्ड गुरुतत्त्व हैं। इसके द्वारा श्रीमन्महाप्रभुने जगत्को शिक्षा प्रदान की—'आदौ गुरुपूजा' अर्थात् शिष्यमात्रको ही सर्वप्रथम गुरुपूजा करनी चाहिए।

सुन्दरवन अञ्चलमें प्रचार

श्रील गुरु-महाराज अधिकांश समय बङ्गालके सुन्दरवन अञ्चलमें जाते थे तथा वहाँपर प्रचुर हरिकथाका प्रचार करते थे। वर्तमान समयमें सुन्दरवनमें उन्नत मार्ग, नदियोंपर पुल आदि बन गये हैं। मार्गमें लेशमात्र भी कीचड़ दिखाई नहीं देता। परन्तु उस समय ठीक इसके विपरीत स्थिति थी। श्रील गुरु-महाराजका हृदय अत्यन्त ही कोमल, स्निग्ध, तथा स्नेह-ममतापूर्ण था। जो गुरु-वैष्णवोंकी सेवाका इच्छुक है, परन्तु उसे साधुसङ्ग प्राप्त नहीं हो रहा है कि जिसका आनुगत्यकर वह गुरु-वैष्णवोंकी सेवा कर सके, वे ऐसे व्यक्तिको उत्साह प्रदानकर उसकी इच्छा पूर्ण करते थे। सुन्दरवन-अञ्चलमें अधिकांश लोग निर्धन होनेपर भी उनका हृदय विशाल था। सभी लोग आग्रहपूर्वक श्रीहरिकथा श्रवण करते थे। प्रतिदिन भक्तोंके घर-घर जाकर श्रीहरिकथा एवं उत्सव होता रहता था।

श्रील गुरु-महाराज प्राय प्रत्येक घरमें जाकर पाठ-कीर्तन किया करते थे तथा रात्रिमें सभी भक्तोंके लिए प्रसादकी व्यवस्था होती थी। यह सब देखकर किसी एक भक्तके मनमें इच्छा हुई कि ये महाराज जब घर-घर जा रहे हैं, तो मैं भी इन्हें अपने घरमें निमन्त्रण दूँगा। एक दिन उसने साहसकर अपने मनकी बात श्रील गुरु-महाराजसे कही—गुरु-महाराज! एक दिन मेरे घरमें भी मध्याह्न प्रसादकी व्यवस्था हो जाती तो आपकी बड़ी कृपा होती। किन्तु वह बहुत ही निर्धन था, भिक्षाके द्वारा ही वह किसी प्रकारसे जीवन निर्वाह करता था। श्रील गुरु-महाराजने उसका भी निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। हम सभी लोग परस्पर बात करने लगे कि वह तो भिक्षाके द्वारा ही जीवन-निर्वाह करता है, अतः श्रील गुरु-महाराजका उसके घर न जाना ही अच्छा है। किन्तु श्रील गुरु-महाराज बोले—"नहीं, उसके घर जाना ही होगा। वह व्यक्ति अवश्य ही गरीब है, परन्तु उसका प्रबल

आग्रह है। अतः उसकी मनोकामना अवश्य ही पूर्ण करनी होगी।" एक व्यक्तिको रसोई बनानेके लिए उसके घर भेज दो तथा उससे कह देना कि उसके घरमें जो कुछ भी हो, उसीसे रसोई बनाना।

दिनके समय वर्षा आरम्भ हो गयी। सुन्दरवनका मार्ग कीचड़ तथा फिसलन-युक्त होनेके कारण वर्षामें ही श्रील गुरु-महाराज छाता तथा एक लाठी हाथमें लेकर सबसे आगे ही बाहर निकल पड़े। बादमें धीरे-धीरे वर्षा कम होनेपर सभी लोग उसके घर गये तथा वहाँपर प्रसाद ग्रहण किया। इस प्रकार श्रील गुरु-महाराजने उसकी मनोकामना पूर्ण की। श्रील गुरु-महाराज कहते थे कि मेरे श्रील गुरु-महाराज श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज सुन्दनवन-अञ्चलमें पैदल-पैदल चलकर प्रचार करते थे तथा हरिकथा कहते थे। हरिकथा ही हमारा प्राण है। हम हरिकथा कहनेके लिए ही आये हैं। उस समय वहाँके लोगोंकी एक ही भावना थी कि किस प्रकारसे साधुओंको नीचा दिखाया जाय। इसलिए वे लोग उल्टे-सीधे प्रश्न करते थे। परन्तु श्रील गुरु-महाराज सभीके प्रश्नोंके युक्ति-सिद्धान्तपूर्ण उत्तर देते थे। वे पाठके समय कहते, यदि किसीका कोई प्रश्न हो, तो लिखकर रखना। पाठके समय प्रसङ्गानुसार आप सभीके प्रश्नोंका उत्तर दिया जायेगा। मैंने देखा है कि सुन्दरवनके लोग पूरे एक साल तक अति उत्कण्ठापूर्वक प्रतीक्षा करते थे कि कब महाराज आयेंगे। श्रील गुरु-महाराजके जाते ही पूरे सुन्दरवन-अञ्चलमें समाचार फैल जाता कि महाराज आ गये हैं। तब कार्यक्रमोंकी सूची बननी प्रारम्भ हो जाती। सुन्दरवनमें घरोंके प्रवेश-द्वार बहुत नीचे होते थे, श्रील गुरु-महाराज कहते थे कि इनके द्वारा दैन्य-विनय भाव सीखना होगा।

शिष्य-वात्सल्य

श्रील गुरु-महाराज प्रायः आसाममें भी प्रचारके लिए जाते थे। एकबार वे वहाँ प्रचारके लिए गये थे, उस समय श्रीपाद सुन्दरानन्द प्रभु श्रील गुरु-महाराजकी सेवा करते थे। गाँवमें सब जगह बिजलीकी व्यवस्था न होनेके कारण प्रचारपार्टीमें एक छोटा-सा जनरेटर रहता था। किन्तु दुर्भाग्यवशतः छोटी-सी भूलसे उसी जनरेटरके द्वारा ही एक दुर्घटना घट गयी, जिसमें हमने श्रीपाद सुन्दरानन्द प्रभुको चिरकालके लिए खो दिया। श्रील गुरु-महाराज कभी भी श्रीपाद सुन्दरानन्द प्रभुको भूल नहीं सके। शिष्य वात्सल्यके कारण उन्होंने प्रसाद पाना बन्द कर दिया। श्रीपाद सुन्दरानन्द प्रभु श्रील गुरु-महाराजकी सेवामें अत्यन्त निष्ठावान् थे। अन्यान्य गुरुभ्राताओंके प्रति भी उनका स्नेह विशेष आदर्शनीय था। हम लोग उनकी सेवानिष्ठा देखकर अवाक् रह जाते थे।

'योगक्षेमं वहाम्यहम्'

भगवान् अपने भक्तोंके रहने-खानेकी व्यवस्था स्वयं ही करते हैं, जैसा कि गीतामें कहा गया है—'योगक्षेमं वहाम्यहम्।' श्रील रूप गोस्वामी तथा श्रील सनातन गोस्वामी श्रीहरिकथामें निविष्ट थे। श्रीरूप गोस्वामीने मन-ही-मन श्रीसनातन गोस्वामीको कुछ प्रसाद पवानेकी इच्छा की। तब स्वयं श्रीमती राधारानी बालिकाके वेशमें आकर बोली—"बाबा! मेरी माँ ने चावल, दूध, चीनी आदि भेजी है। आप लोग खीर पकाकर प्रसाद पा लेना।" कुछ देरके बाद वह बालिका पुनः आकर बोली—"आपलोग तो हरिकथामें ही मत्त हैं। मैं ही खीर बना देती हूँ।" खीर बनानेके बाद बोली—"बाबा! मैंने खीर बना दी है। जब आपकी कथा समाप्त हो जाय, तो भोग लगाकर दोनों प्रसाद पा लेना।" ऐसा कहकर वह बालिका चली गयी। कथा समाप्त होनेपर श्रीरूप गोस्वामीने उस खीरको ठाकुरको भोग लगाकर श्रीसनातन गोस्वामीको निवेदित करते हुए कहा कि 'आप प्रसाद पाइये'। वे अब मन-ही-मन विचार कर रहे थे कि वह बालिका कहाँ गयी। उधर श्रीसनातन गोस्वामीने जैसे ही खीरको मुखमें लिया, तो आश्चर्यचकित हो उठे

और बोले—"रूप! यह खीर इतनी सुस्वादु कैसे हो सकती है। रूप! क्या तुमने कथा-चर्चाके समय कुछ विचार किया था कि रसोई कैसे बनाऊँगा।" श्रील रूपगोस्वामी बोले—"हाँ! मैंने मन-ही-मन विचार किया था कि आपको मैं खानेके लिए क्या दूँगा।" यह सुनकर श्रील सनातन गोस्वामी बोले—"रूप! स्वयं श्रीमती राधारानीने यह खीर बनाई है, इसीलिए इतनी सुस्वादु है। अबसे तुम यह बात गाँठ बाँध लो कि कभी भी ऐसी चिन्ता नहीं करोगे।" श्रील गुरु-महाराज कहते थे कि व्रजधाममें श्रीमती राधारानी भक्तोंके लिए सब-कुछ करती हैं।

नाम-भजन

श्रील सरस्वती गोस्वामी ठाकुर प्रभुपादने कहा है—अनित्य संसारमें किसी भी प्रकारसे जीवन निर्वाहकर सभीके लिए ऐकान्तिकरूपमें हरिभजन ही एकमात्र प्रयोजन है। सैंकड़ो प्रकारकी विपदाएँ, लाञ्छन-भतर्सनाके कारण अथवा जगत्‌की विमुखता देखकर कभी भी हरिभजनका परित्याग नहीं करना चाहिए। सहिष्णु होकर धैर्य धारणकर सदा नामप्रभुके निकट प्रार्थना करनी चाहिए—"हे प्रभो! मुझे चित्-बल प्रदान कीजिए, जिससे आपमें मेरा अनुराग उत्पन्न हो। श्रीमन्महाप्रभुने कहा है—

प्रभु कहे, कहिलाम—ऐइ महामन्त्र
इहा जप गिया सबे करिया निर्बन्ध॥
इहा हइते सर्वसिद्धि हइबे सबार।
सर्वक्षण बल इथे विधि नाहि आर॥

इससे सबका अभीष्ट पूर्ण होगा। अतः कलिकालमें केवल हरिनाम ही करना होगा।

साधुसङ्ग हरिनाम—एइ मात्र चाइ।
संसार जिनिते आर कौन वस्तु नाइ॥

हमें ध्यान रखना होगा कि हमारे हरिभजनकी—हरिनामकी धारा कभी भी बन्द न हो पाय। इस संसारमें सभी व्यवस्थाएँ ही अनित्य हैं। इस संसारके आकर्षण तथा विकर्षणसे ऊपर उठकर भजन करना होगा। श्रील प्रभुपादने अप्रकट लीला प्रकाशित करनेसे पहले यह उपदेश प्रदान किया था। उन्होंने अत्यन्त आवेग-पूर्ण कण्ठसे कहा था—आपलोग एक ही उद्देश्यसे मूल आश्रय-विग्रहकी सेवामें मन-प्राणको समर्पितकर निरन्तर श्रीनाम करना एवं वैष्णव-सेवा करना।

श्रीरूप-रघुनाथकी विचारधारामें प्रतिष्ठित होकर हरिभजन करना

एक बार मैं श्रील गुरु-महाराजके साथ सिद्धबाटी गौड़ीय मठमें गया था। वह स्थान अत्यन्त ही स्वास्थ्यकर था। वहाँपर कुछ दिन रहनेके पश्चात् एक दिन एक वकील बाबूके घरमें कीर्तन-पाठका अनुष्ठान हुआ। श्रील गुरु-महाराजने वहाँपर हरिकथामें कहा कि मनुष्य यदि अच्छे कर्म नहीं करता है, तो अगले जन्ममें उसे मनुष्य जन्म मिलनेकी सम्भावना नहीं है। अतः मनुष्यको अच्छे कर्म ही करने चाहिए। जिन कर्मोंके द्वारा सुकृति सञ्चित हो, उन्हीं कर्मोंको करना चाहिए। विशेषरूपसे जिन कर्मोंसे भक्तिसञ्चित हो, वे ही अच्छे कर्म है। श्रील गुरु-महाराज सदा ही कहते थे—साधुसङ्ग करो, भक्ति करो। *"पुनरपि जनमं पुनरपि मरणं, पुनरपि जननी जठरे शयनम्।"* जन्म होगा, तो मृत्यु भी अवश्य ही होगी। जैसा कर्म होता है, जन्म भी उसके अनुरूप ही होता है। श्रीगौड़ीय वैष्णव श्रील रघुनाथ दास गोस्वामीने मनः शिक्षामें धर्माधर्मका विचार न कर श्रीचैतन्य महाप्रभुकी विचारधारा मानकर चलनेको कहा है। श्रीमन्महाप्रभुकी विचारधारामें यह संदेश दिया है कि हमें रूप-रघुनाथकी विचारधारामें प्रतिष्ठित होकर हरिभजन करना चाहिए, तभी हमारे भजनमें अनुभूति होगी। श्रील गुरुपापद्मके निकट यही प्रार्थना है—हे गुरुपादपद्म! आप कृपा कीजिए कि मेरे हृदयमें सेवानिष्ठा उत्पन्न हो।

श्रीगुरुदेवके शुभाविर्भाव-शतवार्षिकीके अवसरपर भक्ति-प्रसूनाञ्जलि

—श्रीमद्भक्तिवेदान्त तीर्थ महाराज

आज मेरे परमाराध्यतम गुरुदेव ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजजीकी आविर्भाव-शतवार्षिकीका शुभ-अवसर है।

हे महाराज! आप गौड़ीय-गगनके निर्मल भास्कर, अद्वितीय विद्वान्, महाभागवत कुलचूड़ामणि, श्रीश्रीगुरु-गौराङ्ग-वाणीके प्रचारक, आचार-विचारके मूर्त्त विग्रह, क्षमागुणोंकी मूर्त्ति, वात्सल्यके समुद्र, श्रीबलदेव-अभिन्न अखण्ड-गुरुतत्त्वके करुणाघन विग्रह, श्रीराधाजीके निजजन, श्रीवार्षभानवी दयितदासके कृपाभाजन, श्रीरूप-रघुनाथ वाणीके मूर्त्त-विग्रह, श्रीरूप गोस्वामीके भावोंके मूर्त्त आदर्श, श्रीगुरुपादपद्मैक निष्ठ, शिष्यजन करुणा-वत्सल, सेवा प्राणनिष्ठ, वृद्ध वैष्णवजन सम्मानित, श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके मूर्त्त प्राण, श्रीकेशव हृदैक वेद्य (एकमात्र श्रीकेशवके हृदयको जाननेवाले), श्रीमन्नारायणाभिन्न तनु (श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजसे अभिन्न), श्रीभक्तिविनोद धारा प्रवाह, श्रीगौरकिशोर विप्रलम्भ-रस रसिक, श्रीनयनमञ्जरीके नेत्रोंके अञ्जन, श्रीविनोदमञ्जरीके विनोददायक, श्रीकेशवप्राण श्रीनारायण-त्रिविक्रम-सौहार्द विधायक, सर्व-वैष्णवजन समादृत, समितिके प्रधान स्तम्भ थे। ऐसे श्रील गुरुदेवके चरणकमलोंमें श्रद्धा सुमन समर्पण करता हूँ।

"साधवो वयं नितरां वत दुर्भागा"—अज्ञताके कारण आपसे बहुत दूर काम, क्रोध, लोभ, मोह रूपी तिमिङ्गिलके द्वारा निगले हुए, अज्ञान अन्धकारके गर्त्तमें गिरे हुए, आपकी अमन्दोदय दयाके सुविस्तृत पथके एक ओर उद्भट आर्त्तिके साथ दाँतों तले तृण धारणकर यह दीनजन हर घड़ी, हर पल आपकी कृपा-रूपी किरणकणकी आश लगाये हुए प्रतीक्षा कर रहा है।

आप औदार्य-माधुर्य गुणोंके अतलस्पर्शी अगाध समुद्र हैं, उसके समीप तक पहुँचनेका भी हममें सामर्थ्य नहीं है। जिसपर आप कृपा करें, केवल वही आपकी महिमा जान सकता है। आबाल ब्रह्मचारीके रूपमें अखण्ड ब्रह्मचर्यका पालन करनेवाले आपका अतिशय वात्सल्य स्नेह हृदयस्पर्शी है, आपने अपने वात्सल्य गुणके द्वारा सबको आकर्षण किया है, सभीको बाँध लिया है। आपके वचन हैं—**"मेरे सभी गुरु-भ्राताओंको सम्मान देनेसे मेरी पूजा होगी।"**

आप शैशवकालसे ही श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादके आश्रयमें आये हैं। तबसे श्रीचैतन्य मठ, मायापुरमें श्रीहरि-गुरु-वैष्णवोंकी सेवामें अपनेको समर्पित किया तथा आपने श्रीमायापुरमें ही सम्पूर्ण शिक्षा ग्रहण की। बाल्यकालसे ही आप श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीके आश्रयमें उनके स्नेह भाजन बने रहे, वे आपको लॉजेन्स तथा मिठाई खिलाकर प्रत्यह गीताके श्लोकोंका अभ्यास कराते थे। इसीलिए आपको सम्पूर्ण गीता शास्त्र कण्ठस्थ रही, केवल इतना ही नहीं वेद, वेदान्त, पुराण, इतिहास, श्रीमद्भागवत, स्मृति, षड्-दर्शन, वैष्णव-साहित्य और गोस्वामी ग्रन्थोंपर भी आपका पूर्ण अधिकार रहा है। अनगिनत श्लोकोंका अभ्यास,

सम्पूर्ण ज्ञानका अनन्त भण्डार होनेके कारण सभी लोग आपको गौड़ीय मठ [के सिद्धान्त]की Dictionary कहा करते थे।

मैंने एकबार आपसे पूछा कि आपको इतने शास्त्रोंका अभ्यास कैसे हुआ? तब आपने उत्तर दिया कि श्रील गुरुदेवकी अपार करुणासे मुझे स्फूर्त्ति प्राप्त होती है। ग्रन्थ प्रकाशन विभागमें श्रीगुरुदेवके साथ ग्रन्थ लिखनेमें सभी प्रमाणोंको संगृहीत करना होता था—इसी कारण सभी ग्रन्थोंका अवलोकन करना, लिखना, पढ़ना आदि सभी कार्य सम्पन्न होते गये। आप श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीके प्राणस्वरूप हैं। आप उनके लेखक थे, वे कहते और आप लिखते जाते, इसलिए गणेशके रूपमें आपने सभी कार्यभार सम्भाला।

आपने सम्पूर्ण जीवन श्रीहरि-गुरु-वैष्णवोंकी सेवामें अर्पित किया। संन्यासके पश्चात् अपना जीवन गौर-वाणीका प्रचार करनेमें बिताया। इसमें आपने सम्पूर्ण बङ्गाल, बिहार, उड़ीसा, आसाम, अरुणाचल प्रदेश, सिक्किम, भूटान, मणिपुर एवं राजस्थानमें जयपुर, उत्तर प्रदेशमें मथुरा, वृन्दावन, हरिद्वार आदि स्थानोंमें प्रचार-प्रसार किया। इसके अतिरिक्त आपके द्वारा प्रेरित होकर श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीने सम्पूर्ण विश्वमें श्रीगौरवाणीका प्रचार-प्रसार किया, जिसमें उनको बड़ी भारी सफलता मिली।

दूसरी ओर 'बृहत्-मृदङ्ग' अर्थात् ग्रन्थ-प्रकाशनमें आप सिद्धहस्त रहे हैं। आपने बहुतसे ग्रन्थोंका प्रकाशन किया, जो आज जगत्-जीवोंके लिए उपलब्ध हैं। आपकी इस विषयपर और भी शुभ इच्छाएँ रही हैं, जिसे आपने समय-समय पर कहा है। एक वैदान्तिक आचार्यके रूपमें महान गाम्भीर्यको लिये हुए आपका दृष्टिकोण सदैव वेदान्त पर रहा है। आप युगपत् वैराग्यके प्रतीक तथा जड़में उदासीन रहे हैं। सम्पूर्ण परिचालनाका उत्तरदायित्व श्रील नारायण गोस्वामी महाराजजीके ऊपर सौंपते हुए आप निश्चिन्त और निस्पृह बने रहे।

आपने अपने गुरुदेव श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीके इच्छानुरूप—वेदान्तका तात्पर्य भक्ति, भगवान्के साथ भक्तोंका सम्बन्ध, भगवान् श्रीकृष्णकी सेवा ही हमारा कर्त्तव्य, भगवान् और उनके परिकरोंकी सेवाके द्वारा उनका प्रीति विधान करना, उनकी अनुकूलता ही हमारा प्रयोजन है—इसे स्थापित करनेके लिए ही संन्यास ग्रहण करनेके उपरान्त आप श्री **'भक्तिवेदान्त'** उपाधिसे विभूषित रहे। वेदान्तका तात्पर्य न तो कर्म है और न ही ज्ञान है, क्योंकि श्रीमद्भागवतमें श्रीनारदजीने दोनोंका ही वर्जन किया है—

नैष्कर्म्यमप्यच्युत भाववर्जितं
न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम्।
कुतः पुनः शश्वदभद्रमीश्वरे
न चार्पितं कर्म यदप्यकारणम्॥

(श्रीमद्भा. १/५/१२)

"भगवद् भाव विहीन तथा माया उपाधि रहित निष्काम ज्ञानकी जहाँ कोई शोभा नहीं है, वहाँ अभद्र, अमङ्गलमय व्यर्थ कर्म जो कदापि भगवान्को अर्पण नहीं किया गया हो—ऐसे कर्मोंकी कहाँ शोभा हो सकती है?"

यदि एसे कर्म कहीं भक्तिके साथ हों, तब उन्हें कुछ सार्थक माना जाता है अन्यथा सबकुछ व्यर्थ होता है।

इसलिए वेदान्तसूत्र *'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा'* का अभिप्राय भगवान्के विशेष स्वरूपकी उपलब्धि है अर्थात् वे केवल निराकार निर्विशेष नहीं—अपितु रसघन ब्रह्म हैं—*'रसो वै सः रसं ह्येवायं लब्धानन्दी भवति',* वे रस स्वरूप हैं, अपने परिकरोंके साथ प्रीति रसका आस्वादन करते हैं। इस प्रकार शान्त-

मधुर-रसादि पर्य्याय हैं। प्रेम प्रीतिकी सर्वोत्कर्ष महिमा जिससे प्रकाशित हो, ऐसी वृषभानुकुमारी, ह्लादिनी-शक्ति वरीयसी, सम्पूर्ण शक्तियोंकी मूल पराशक्ति, महालक्ष्मी, ऐश्वर्य-माधुरीकी पराकाष्ठा, आनन्द-चिन्मयरस परिपूर्णा श्रीराधाजीके साथ वे शृङ्गार-रसका आस्वादन किया करते हैं। सर्व भावोद्गमोल्लासी महाभाव स्वरूपिणी कृष्णप्रिया वरीयसी वृषभानुदयिताके परिकरोंके भावोंके द्वारा सदैव विभावित चित्तवाले—राधा नित्यजनोंके आनुगत्य द्वारा भावकणका आस्वादन ही विशेष भजनकी पराकाष्ठा है तथा उनके निजजनोंकी चरणधूलि ही जीवनकी चरम अभिलाषाका विषय है। इस प्रकार **'जन्माद्यस्य यतः'**—जहाँसे शृङ्गार रसकी उत्पत्ति हुई है, **शास्त्रयोनित्वात्**—श्रीमद्भागवत आदि तथा महानुभावोंके अनुभूत रसकाव्यमय महान्-ग्रन्थोंके द्वारा जिनकी उपलब्धि की जाय तथा उनकी निष्ठामयी भाव और प्रेम भक्तिकी प्राप्ति हो ऐसे **'तन्निष्ठश्च मोक्षोपदेशात्'** आदि सूत्रों द्वारा जिनकी अभिव्यञ्जना होती है। इस प्रकार आपने वेदान्तके तात्पर्य भक्तिको संसारमें विस्तार किया है। कभी-कभी आप अपना प्रिय एक श्लोक कहा करते थे—

यदि हरिस्मरणे सरसं मनः
यदि विलासकलासु कुतूहलम्।
मधुर कोमल कान्त पदावलीं
शृणु तदा जयदेव सरस्वतीम्॥

(श्रीगीत-गोविन्द)

"यदि श्रीहरिका स्मरण करते हुए मनको सरस-रसमय बनाना है, यदि श्रीश्रीराधाकृष्णके कला विलासमें कौतूहल है, तब कवि जयदेव सरस्वतीके कोमल कान्त कमनीय मधुर पदावलियोंका श्रवण करें।"

आपको निरन्तर अनर्गल श्लोकोंका वर्णन करते हुए देखा जाता था। आप निरन्तर हरिनाम तथा वैष्णवोंकी सेवा करनेके लिए उपदेश दिया करते। आप प्रायः ही श्रीराधाजीके विषयमें एक पद अवश्य कहा करते—

राधा पद छाड़ि', जे-जन से-जन
जे भावे से भावे थाके।
आमि तों' राधिका-, पक्षपाती सदा,
कभु नाहि हेरि ताके॥

(श्रील भक्तिविनोद ठाकर)

मैं राधाजीकी सदा पक्षपाती हूँ—मुझे दूसरे किसीसे कोई मतलब नहीं है।

"हरिदयित राधा चरण प्रयासी, भकतिविनोद गोद्रुमवासी"—मैं श्रीहरिकी दयित श्रीराधाजीके चरणोंके आश्रयका प्रयासी हूँ। आप सदैव श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके आस्वादनीय विप्रलम्भ-भावका अनुसरण करते हुए उन्हींके भावोंमें सदैव डूबे रहे।

आप कहा करते थे—

अयि दीनदयार्द्रनाथ! हे मथुरानाथ! कदावलोक्यसे।
हृदयं त्वदालोककातरं दयित भ्राम्यति किं करोम्यहम्॥

"हे दीनोंके प्रति दया करनेवाले! हे मथुरानाथ! यदि आप वृन्दावननाथ होते तो अवश्य ही वृन्दावन लौटकर आते, परन्तु आज हम किस अधिकारसे आपसे कहें, फिर भी आज आपके विरहमें हृदय अतिशय कातर हो रहा है, क्या कभी पुनः आपका दर्शन सम्भव होगा? आज आपके अदर्शनसे कातर होकर बुद्धि भ्रमित हो गई है। अतः हम क्या करें?"

शत-शत प्रसूनाञ्जलि हाथोंमें लेकर आपके चरणकमलोंकी स्मृतिमें निमग्न होकर आपकी अहैतुकी कृपाकी प्रतीक्षामें रत—

दीन-हीन कङ्गाल-सेवक
श्रीभक्तिवेदान्त तीर्थ

परमाराध्य श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज एवं श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजकी शुभाविर्भाव-शतवार्षिकीपर दीनकी स्मृतिचारणा

—श्रीमद्भक्तिवेदान्त माधव महाराज

ईस्वी सन् १९८४ या १९८५ में श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके स्तम्भत्रय—श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज, श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज और श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम गोस्वामी महाराज श्रीधाम-नवद्वीपके श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें कटहल पेड़के नीचे बैठे हुए थे। यद्यपि गुरुद्वयका आविर्भाव-शतवार्षिकी महोत्सव है, फिर भी श्रील त्रिविक्रम महाराजजीके प्रसङ्गके अतिरिक्त उन लोगोंका गुणगान असम्पूर्ण रह जाएगा, क्योंकि उन तीनोंका शरीर पृथक् होनेपर भी वे तीनों अभिन्नात्मा स्वरूप हैं। मैंने निकट जाकर प्रणाम किया। जब भी मैं गुरु-महाराजके निकट जाता, तब कुछ-न-कुछ प्रश्न करता, अथवा गुरु-महाराज स्वयं कुछ हरिकथा श्रवण कराते। तथा श्रील गुरुदेवके पास कोई सहज ही नहीं जाता था, परन्तु उन्होंने मुझे सेवकके रूपमें रखा था, इसलिए मुझे निकट जानेमें किसी प्रकारका भय नहीं था। मैंने जब प्रणाम किया, तो उन्होंने कहा—"नवीन कुछ पूछना चाहता है? क्या पूछना है, पूछ।" तब मैंने कहा—आप लोगोंके मुखसे मैंने सुना है कि भगवान् श्रीमद्भगवद्गीतामें कहते हैं—*"अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते। तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥"* (गीता ९/२२) इस श्लोककी टीकामें आपलोगोंने अर्जुन मिश्रकी कथा कही है। इस श्लोकमें कृष्णने कहा है—'जो अनन्यभावसे मेरी भक्ति करता है, अन्य किसी देव-देवीकी आशा-आकांक्षा नहीं रखता है, उसके पास जो है, उसकी मैं रक्षा करता हूँ एवं उसके पास जो नहीं है, उसे मैं अपने कन्धे पर ढोकर दे आता हूँ।' यहाँपर आपलोग अर्जुन मिश्रका उदाहरण देते हैं, क्या कोई अन्य उदाहरण नहीं है? तब गुरु-महाराज—श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजने श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजसे कहा—"महाराज, आप बताएँ।" तब श्रील गुरुदेव—श्रील नारायण गोस्वामी महाराजने कहा—"मैं तो सदैव ही इसे बोलता हूँ, नवीन आपके श्रीमुखसे ही सुनना चाहता है।"

तब गुरु-महाराजने कहा—"हाँ, हमारे सम्प्रदायमें ही अन्य उदाहरण है। श्रील माधवेन्द्रपुरीपाद किसीसे कुछ माँगकर नहीं खाते थे। कोई कुछ देनेपर खाते थे, अन्यथा भूखे रहते थे। एक दिन कृष्णने छद्म बालकके रूपमें आकर कहा—'बाबा, हमारे व्रजमें तो कोई भूखा नहीं रहता है, तुम मधुकरी करके क्यों नहीं खा लेते? तुम सोच रहे हो, मैं कैसे जान गया। गाँवकी माताएँ अनेक समयसे पानी लेने आ रही हैं, जा रही हैं, वे देख रही हैं कि

तुम एक ही जगह पर बैठकर केवल 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे, हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे' महामन्त्रका जप कर रहे हो। क्या, तुम मधुकरी करके खा नहीं सकते हो? देखो! मेरी मैयाने तुम्हारे लिए मिट्टीके पात्रमें दूध दिया है। समय होनेपर दूध पी लेना। बाबा, मैं अधिक समय प्रतीक्षा नहीं कर सकता। विलम्ब होनेपर मैया मुझे डाँटेगी। मैं अभी जा रहा हूँ, किन्तु बादमें आकर पात्र ले जाऊँगा।'

"श्रील माधवेन्द्रपुरीपादने पहले ध्यान नहीं दिया, प्रतिदिन कितने व्रजबालक आते हैं, जाते हैं। बालकके चले जानेपर उनका मन भजनमें नहीं लगा, लीला-स्फूर्ति होना स्थगित हो गया। उनके कानोंमें केवल बालककी बातें ही गूँज रही थीं। वे मन-ही-मन सोचने लगे—'यह कैसी बात है! ऐसा क्यों हो रहा है? कोई प्राकृत बालक तो मेरे मनका हरण नहीं कर सकता, मेरा मन भजनमें क्यों नहीं लग रहा है, क्यों लीलाओंकी स्फूर्ति नहीं हो रही है?' उसके बाद जब उन्होंने थोड़ा-सा दूध पी लिया, तब तुरन्त अष्टसात्त्विक भावोंका विकार होने लगा। तब वे समझ गये कि वह ठग ही आया था, मुझे ठगकर चला गया है। उस बालक-कृष्णने कहा था—'बादमें आकर पात्र ले जाऊँगा।' तब उन्होंने विचार किया कि वे आज नहीं सोयेंगे, उसके पुनः दर्शन कर उसे पकड़ेंगे। परन्तु कृष्णने अपनी योगमायासे माधवेन्द्रपुरीपादको गहरी नींदमें सुला दिया और स्वप्नमें आकर कहने लगे—'बाबा, देखो, मैं आया हूँ। मैं इस ग्रामका ठाकुर हूँ, मेरा सेवक यवनोंके भयसे मुझे यहाँ छिपाकर चला गया है। तुम मुझे प्रकाशित करो।' ऐसा कहकर बालक अन्तर्धान हो गया। यहाँ 'योग'—भक्तके पास जो नहीं है, अर्थात् श्रीमाधवेन्द्रपुरीपादको आहारकी आवश्यकता थी, किन्तु उनके पास आहारकी वस्तु नहीं थी। इसलिए कृष्ण स्वयं वहन करके उन्हें दे गये। कृष्ण कितने कृपालु हैं, यहाँ यह प्रदर्शित हुआ।"

इसके बाद मैंने पूछा—'क्षेम'का उदाहरण क्या है?

तब गुरुदेवने कहा—तुमको मैं बादमें बताऊँगा, अन्य कुछ जानना चाहते हो, तो बोलो।

इधर श्रील त्रिविक्रम महाराज बहुत मुस्करा रहे थे और कह रहे थे—देखा! कृष्ण कितने कृपालु हैं, भक्तके लिए कितना करते हैं। श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

अहो वकीयं स्तनकालकूटं
जिघांसयापायदस्य साध्वी।
लेभे गतिं धात्र्युचितां ततोऽन्यं
कं वा दयालुं शरणं व्रजेमः॥'

तब श्रील गुरुदेवने कहा—आपके कृष्ण भीषण निष्ठुर हैं। जो आता है, उसे मार देते हैं। जो दयालु होते हैं, वे किसीको मारते हैं क्या? पुनः आधी रात्रिमें गोपियोंको छोड़कर अन्तर्धान हो गये। क्या ये सब कृपालुताके परिचायक हैं? आपके कृष्ण निर्दयी हैं, जबकि मेरी राधाजी कृपामयी हैं।

श्रील त्रिविक्रम महाराजने पूछा—आपकी राधिकाने क्या किया है?

श्रील गुरुदेवने पूछा—आपके कृष्णने क्या किया है? थोड़ा-सा दूध ले आये, इसमें ऐसी क्या बहादुरी है? मेरी राधिकाने क्या किया है, सुनिये। एक बार टेर-कदम्ब स्थित भजन-कुटीरमें बैठकर रूप गोस्वामी और सनातन गोस्वामी दोनों राधारानीकी गुण-महिमाका कीर्तन कर रहे थे। तब राधारानी कहीं अन्यत्र रह न सकीं एवं एक व्रजबालिकाके

वेशमें वहींपर उपस्थित हो गयीं। क्योंकि कहा गया है—*'मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद।'*

यह सुनकर त्रिविक्रम महाराजने कहा—यह तो कृष्णके लिए कहा गया है, राधारानीकी बात इसमें कहाँसे आ गयी?

तब श्रील गुरुदेवने कहा—यह दोनोंके लिए ही है, क्योंकि शक्तिशक्तिमतोरभेदः।

इधर गुरु-महाराज दोनों की बातोंको सुनकर मन्द-मन्द मुस्करा रहे थे। श्रीरूप गोस्वामीके गुरु एवं बड़े भाई हैं श्रीसनातन गोस्वामी। जब वे रूप गोस्वामीके निकट टेर-कदम्ब पर आये थे, तब रूप गोस्वामीने मन-ही-मन सोचा था—ये मेरे गुरु एवं ज्येष्ठ भ्राता हैं। मेरी कुटीरमें तो कोई प्रसाद नहीं है, इसलिए उनको क्या खानेको दूँ?

हरिकथाकी चर्चा करते-करते समय बीता जा रहा था, परन्तु वे हरिकथाको विराम नहीं दे पा रहे थे। राधारानी अपनी महिमाको श्रवण करके बालिकाके वेशमें वहाँ आकर बोलीं—"बाबा! तुम दोनों कबसे हरिकथा कहे जा रहे हो, मधुकरी नहीं करोगे? समय नहीं है क्या? मेरी मैयाने मुझे दूध, चावल और शक्कर देकर भेजा है, खीर बनाकर ठाकुरजीको भोग लगाके तुम दोनों प्रसाद ले लेना।"

दोनों राधाजीकी कथा, उनकी गुण-महिमाके कीर्तनमें इतने मग्न थे कि साक्षात् राधारानीकी बातों पर भी ध्यान नहीं दिया। तब राधारानीने कहा—"बाबा, मैं खीर बना देती हूँ। ऐसा कहकर उन्होंने कहींसे जलता हुआ गोबरका कंडा लाकर लकड़ीमें आग जलायी, खीर प्रस्तुत की और कहा—मैं जा रही हूँ, अधिक विलम्ब होनेपर मैया डाँटेगी।"

श्रीरूप गोस्वामीने भोग लगाकर सनातन गोस्वामीको प्रसाद दिया। प्रसाद मुखमें देते ही श्रीसनातन गोस्वामीमें अष्टसात्त्विक भाव उदित हुए। उन्होंने श्रीरूप गोस्वामीसे कहा—"रूप, हम राधारानीकी सेवा करेंगे या उनसे सेवा करायेंगे?"

श्रीरूप गोस्वामीने कहा—"हम ही उनकी सेवा करेंगे, किन्तु आप ऐसा प्रश्न क्यों कर रहे हैं?"

श्रीसनातन गोस्वामीने कहा—"क्या तुमने मन-ही-मन कुछ सोचा था?"

श्रीरूप गोस्वामीने कहा—"हाँ, आप आये हैं, इसलिए सोचा था कि आपको क्या खानेको दूँ? कुछ तो नहीं है।"

श्रीसनातन गोस्वामीने कहा—"देखो, स्वयं राधारानीने खीर पकायी है।"

यहाँ प्रश्न हो सकता है कि वे लोग कैसे समझ गये कि खीर राधारानीने पकायी है? श्रीरूप गोस्वामी एवं श्रीसनातन गोस्वामी स्वरूपतः महाप्रभुके परिकर हैं तथा रूपमञ्जरी और लवङ्गमञ्जरीके रूपमें राधारानीकी पाल्यदासी हैं। रूपमञ्जरी और लवङ्गमञ्जरी प्रतिदिन राधारानीके साथ यावटसे नन्दगाँव रसोई करनेके लिए जाती हैं। नन्दभवनमें राधारानीके साथ रसोई करती हैं तथा कृष्ण और राधारानीके भोजनके बाद सखीगण, उसके बाद मञ्जरीगण प्रसाद पाती हैं। इसलिए वे राधारानीके हाथोंकी रसोईका स्वाद जानती हैं। जिस प्रकार कहींपर गुरुदेवका रिकॉर्ड बजने पर हम कहते हैं कि यह गुरुदेवकी आवाज है अर्थात् पहले हमने सुना है, इसलिए गुरुदेवके कण्ठस्वरको पहचान पाते हैं। उसी प्रकार वे लोग प्रतिदिन प्रसाद सेवन करते हैं, इसलिए राधारानीकी रसोईके स्वादके विषयमें वे अवगत हैं।

यह सुनकर पूज्यपाद त्रिविक्रम महाराजने कहा—वामन महाराज! अतः आप ही बताएँ कि राधारानी अधिक कृपालु हैं या कृष्ण?

इसके उत्तरमें श्रील गुरुदेवने ही कहा—राधारानी कृष्णसे कह रही हैं—'तुम क्या बहादुरी दिखा रहे

हो? अर्जुन मिश्र कहो या माधवेन्द्रपुरीपाद। केवल खाद्यद्रव्य लाकर देते हो, किसीको रसोई करके तो खिलाया नहीं। मैंने अपने भक्तोंको रसोई करके खिलाया है।' इसलिए राधारानी अधिक कृपालु हैं।

तब पूज्यपाद त्रिविक्रम महाराजने कहा—वामन महाराज! आप राय दें।

श्रील गुरु-महाराजने हँसते-हँसते कहा—कृष्ण कृपालु हैं, राधारानी भी कृपालु हैं। परन्तु उनसे भी अधिक कृपालु हैं हमारे महाप्रभु। क्यों?

इसके उत्तरमें श्रील गुरु-महाराजने कहा—"जब वृत्रासुर प्रार्थना कर रहे हैं—*"अजातपक्षा इव मातरं खगाः स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्त्ता। प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम्॥"* यहाँ जिस मादा-पक्षीकी बात कही गयी है, वह क्या कर रही है? जिस बच्चेकी आँखें नहीं खुली हैं, उड़ नहीं सकता है, उसके लिए बाहरसे खाना लाकर खिला रही है। यहाँपर उस पक्षीका बच्चा केवल माँका स्मरण कर रहा है। किन्तु बछड़ा मैयाका स्मरण कर रहा है और पुकार भी रहा है। यहाँ स्मरण और कीर्तन—दोनों हो रहा है, एवं पुनः गाय बछड़ेको अपना स्तन-दुग्ध पान करा रही है। अर्थात् पक्षी अपने बच्चेको बाहरसे लाकर खिलाते हैं, किन्तु गाय बछड़ेको अपने अङ्गसे दूध पिलाती है, इसलिए यह अधिक श्रेष्ठ है। उसी प्रकार अपनी एक विशेष लीलामें श्रीमन्महाप्रभुने भक्तोको अपना स्तनपान कराया है—यह उनके श्रेष्ठ वात्सल्यका प्रतीक है। वह लीला इस प्रकार है—

"श्रीमन्महाप्रभु एक दिन रुक्मिणीके वेशमें नृत्य कर रहे थे। अद्वैत आचार्य प्रभु, नामाचार्य श्रील हरिदास ठाकुर, श्रीवास आदि अनेक परिकर उस नाटकमें अभिनय कर रहे थे। महाप्रभु जब रुक्मिणीके रूपमें अपूर्व वेश धारण कर आये, कोई भी उनको पहचान नहीं सके। यहाँ तक कि शचीमाता भी अपने बेटेको देखकर सोचमें पड़ गयी थीं—ये कौन हैं? वैकुण्ठसे कोई लक्ष्मी आ गयीं क्या? महाप्रभुने पहलेसे ही सभीको कह दिया था—मैं एक विशेष लीला प्रदर्शित करूँगा, जो लोग इन्द्रियसंयमी हैं, केवल वे ही यहाँ रह सकते हैं। यह सुनकर अद्वैताचार्यने तुरन्त एक लकीर खींच ली और कहा—'मैं इन्द्रिय-संयमी नहीं हूँ, मैं नहीं रह सकता।'

श्रीवास पण्डितने कहा—यदि ठाकुर (अद्वैताचार्य) इन्द्रिय संयमी नहीं हैं, तो मैं कौन होता हूँ, मैं भी नहीं रहूँगा। एक-एक करके सबने मना कर दिया। अन्तमें महाप्रभुने कहा—ठीक है, आज मेरे कृपाशीर्वादसे सभी इन्द्रिय-संयमी हो जायेंगे, सभी रहेंगे।

तब महाप्रभुने रुक्मिणी वेशमें नृत्य किया एवं सभीको अपना स्तन्यामृत पान कराया। कृष्ण अथवा राधिकाने ऐसा नहीं किया है। महाप्रभुने सबको अपने अङ्गसे स्तन्यामृत पान कराया है, इसलिए महाप्रभु कृष्ण एवं राधिकासे भी अधिक दयालु हैं। कृष्णसे अधिक कृपालु हैं—राधिका एवं राधिकासे अधिक कृपालु हैं—श्रीमन्महाप्रभु।"

इसके बाद मैंने पूछा—अद्वैताचार्य प्रभुने लकीर क्यों खींची?

तब गुरु-महाराजने कहा—नारायण महाराज, आप उत्तर दें।

तब श्रील गुरुदेवने कहा—"एक बार शिवको मोहिनी रूप दर्शन करनेकी इच्छा हुई, तो उन्होंने अपनी इच्छा भगवान्के निकट प्रकाश की। भगवान्ने कहा—नहीं, इससे तुम्हारा मङ्गल नहीं होगा। परन्तु शिव ठाकुरने कहा—प्रभो! आपने जब जो आदेश दिया, मैंने वही किया। आपने मायावाद प्रचारके

लिए कहा, मैंने किया, आपने समुद्र मन्थनमें विषपान करनेके लिए कहा, मैंने विष पान किया। इसलिए आपको मुझे मोहिनी रूप दिखाना होगा, कृपापूर्वक दर्शन दें।

हठात् शिव ठाकुरने देखा, सोलह सालकी एक किशोरी बालिका आ रही है। वह हाथोंमें फूल लेकर खेल रही है और उसके वस्त्र स्खलित हो रहे हैं। उसे देखकर शिव ठाकुर कामार्त्त होकर उसके पीछे-पीछे दौड़ने लगे। पार्वतीने कहा—प्रभो, यह क्या कर रहे हैं? ये विष्णु हैं, कोई साधारण किशोरी नहीं है।

शिव ठाकुरने कुछ भी नहीं सुना। त्रिशूल, डमरू, सर्प, व्याघ्र-चर्म सब गिर गये, और वे नग्न होकर मोहिनीके पीछे-पीछे दौड़ने लगे। तब उनका बहुत अपयश हुआ था। अद्वैताचार्य शिवको यह बात स्मरण है तथा अपयशके भयसे उन्होंने एक रेखा खींच ली और उसके बाहर रहकर कहा—'मैं नहीं रहूँगा।"

इसके बाद अन्य एक दिन मैंने श्रील गुरुदेव(श्रील नारायण गोस्वामी महाराज)से कहा—आपने कहा था कि आप 'क्षेम' का उदाहरण बादमें कहेंगे। कृपया अब बताएँगे? तब आस-पास कोई नहीं थे। श्रील गुरुदेवने कहा—"देखो, जब मैं पुलिसमें नौकरी करता था उस समय हमारी शिफ्ट होती थी। एक दिन मेरी शिफ्ट थी रात १० बजेसे सुबह ६ बजे तक। उसी दिन इंस्पेक्टरके आनेकी बात थी। तब भारतमें ब्रिटिशराज था। मेरा ऑफिस पासमें था, इसलिए मैंने सोचा कि थोड़ा हरिनाम कर लेता हूँ। हरिनाम करते-करते भोर ४ बज गये। हठात् सोचने लगा—हाय, मैं तो ऑफिस जाना भूल गया। ठीक है, कोई बात नहीं, इंस्पेक्टर आकर अधिकसे अधिक मुझ बरखास्त करेंगे, मृत्युदण्ड तो नहीं दे सकते। मेरे पिताजीकी बहुत सम्पत्ति है, मैं तो शौकसे ही नौकरीमें आया था। तब मैं वर्दी पहनकर ऑफिस गया एवं सहकर्मियोंको पूछा—आज इंस्पेक्टरके आनेकी बात थी, क्या हुआ? सहकर्मियोंने कहा—तिवारीजी, आप मजाक मत कीजिए। तब मैंने पूछा—क्यों, क्या हुआ? मैं तो कुछ भी नहीं जानता हूँ।

उन लोगोंने कहा—तिवारीजी, आप तो कभी झूठ नहीं बोलते, अभी झूठ क्यों बोल रहे हो?

मैंने (श्रील गुरुदेवने) कहा—देखो भाई, मैं झूठ नहीं बोल रहा हूँ। मैं कुछ भी नहीं जानता।

बार-बार बोलनेके बाद उन लोगोंने कहा—क्यों, आपने इंस्पेक्टरका जो बहुत सुन्दर रूपसे अभिवादन किया था, उनके समस्त प्रश्नोंके उत्तर दिये थे, जो हममेंसे कोई नहीं दे सके, आपकी दक्षतासे प्रसन्न होकर उन्होंने आपकी पदोन्नति (प्रोमोशन) की है, इसलिए अब आप हमसे मजाक करना बन्द कीजिए।

मैंने (श्रील गुरुदेवने) कहा—भाई, सत्य ही बोल रहा हूँ, मैं ये सब कुछ भी नहीं जानता।

बादमें उन लोगोंने सेवा-पुस्तिका (सर्विस बुक) लाकर मुझे (श्रील गुरुदेवको) दिखायी और कहा—यह देखो, यह आपके ही स्वाक्षर हैं न। क्या यह भी हमने किये हैं?

अपने स्वाक्षर देखकर मेरी (श्रील गुरुदेवकी) आँखोंसे झर-झर अश्रुधारा बहने लगी। मैंने सोचा—प्रभुने मेरे लिए वर्दी पहनकर एक म्लेच्छ व्यक्तिका अभिवादन किया एवं उसके प्रश्नोंके उत्तर दिये! मैं अब और नौकरी नहीं करूँगा। इसके बाद नौकरीका त्याग करते हुए मैं अविलम्ब नवद्वीप आ गया।"

यह 'क्षेम' का एक उदाहरण है। इस श्लोकके 'योग' पदका अर्थ है—जो वस्तु नहीं है या जो आवश्यक है, उसे लाकर देना तथा 'क्षेम' पदका अर्थ है—जो है, उसकी रक्षा करना। श्रील गुरुदेवने अपने जीवनसे 'क्षेम'का उदाहरण दिया।

मेरे प्रभुकी जन्म-शतवार्षिकीका अभिनन्दन

—श्रीमद्भक्तिवेदान्त वन महाराज

आज मै भुवनमङ्गलमय गुरुपादपद्म नित्यलीलाप्रविष्ट अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामीके चरण-सरोजमें अर्घ्य-पुष्पाञ्जलि प्रदान कर रहा हूँ। ६४ प्रकारके भक्त्यङ्गोंमें सर्वप्रथम गुरुपदाश्रयकी बात शास्त्रमें कही गयी है।

स्मर्त्तव्य सततं विष्णुर्विस्मर्त्तव्यो न जातुचित्।
सर्वे विधिनिषेधाः स्युरेतयोरेव किङ्कराः॥

पद्मपुराणमें इस श्लोकके द्वारा विधि एवं निषेधके सम्बन्धमें बताया गया है। सदैव भगवान्‌का स्मरण करना होगा—यही विधि है, पुनः उनको कदापि नहीं भूलेंगे—यही निषेध है। पुनः शास्त्रमें कहा गया है, भगवान्‌का भजन करनेके लिए उनके निजजनकी पूजा पहले करनी होगी। भगवान्‌के वे निजजन हैं—श्रीगुरुपादपद्म।

प्रथमन्तु गुरुं पूज्यं ततश्चैव ममार्चनम्।
कुर्वन् सिद्धिमवाप्नोति ह्यन्यथा निष्फलं भवेत्॥

इसलिए भगवान्‌ने भी कहा है—पहले अपने गुरुपादपद्मकी पूजा करो, तत्पश्चात् मेरी पूजा करो, क्योंकि श्रीगुरुदेवकी कृपासे ही हम भगवान्‌को प्राप्त कर सकते हैं। श्रीगुरुदेवने सेवासे भगवान्‌को वशीभूत कर रखा है। इसलिए कहा गया है—

यस्य प्रसादात् भगवत्-प्रसादो यस्यप्रसादान्न गतिः कुतोऽपि।
ध्यायंस्तुवंस्तस्य यशस्त्रिसन्ध्यां वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्॥

श्रीगुरुदेवके प्रसन्न होनेपर श्रीभगवान् भी प्रसन्न होंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

आज हमलोग श्रीगुरुदेव नित्यलीलाप्रविष्ट अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजके जन्मशतवार्षिकी उत्सव समारोहके लिए उपस्थित हुए हैं। अर्थात् इस जगत्‌में उनके आविर्भावकी १०० वर्ष पूर्ति हुई है। शतवर्ष कालके अधीन हैं, और श्रीगुरुदेव कालके अतीत हैं। तब उनकी नित्यता किस प्रकार स्वीकार की जाती है? इसके उत्तरमें कहा गया है—भगवान् कालातीत होनेपर भी जिस प्रकार अचिन्त्यशक्तिके प्रभावसे मातृगर्भसे प्राकृत शिशुके समान जन्मग्रहण करते हैं, उसी प्रकार भगवान्‌के निजजन गुरुदेव कालके अन्तर्गत होकर भी कालातीत हैं। यही उनकी महिमा है। गीतामें कहा गया है—

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥

क्योंकि वे भगवद् इच्छासे जगत्‌में आते हैं एवं भगवद् इच्छासे इस जगत्‌से प्रत्यावर्तन करते हैं, अतः वे कालके द्वारा किसी प्रकारसे दूषित नहीं होते। ऐसे गुरु-वैष्णवोंकी आविर्भाव और तिरोभाव तिथि पर शुद्धभक्तगण उनकी अप्राकृत दिव्य लीलाकथाका श्रवण और कीर्तन कर आनन्द-समुद्रमें मग्न हो जाते हैं।

श्रील गुरुदेव श्रीकृष्णकी ह्लादिनी शक्तिस्वरूपा श्रीमती राधारानीके अत्यन्त घनिष्ठ प्रियजन हैं, इसमें किसी प्रकारके संशयका अवकाश नहीं है। सप्तम गोस्वामी श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने कहा है—*'श्रीआज्ञा-टहल करिबे प्रचार।'* इस 'श्रीआज्ञा' शब्दमें अत्यन्त मार्मिक एवं गूढ़ अन्तर्निहित अर्थका प्रयोग हुआ है। अर्थात् श्रील गुरुदेव श्रीमती राधारानीके आदेशको प्राप्तकर उन्हींकी विजय-पताका फहरा रहे हैं, वे विश्ववासी लोगोंके निकट चिद् युगलकिशोरका संदेश दे रहे हैं।

श्रील गुरुदेवने कलिके मतवादका दमनकर श्रीरूप-सिद्धान्तकी विमल विचारधाराका स्थापन किया है एवं अप्राकृत भक्तिरसके द्वारा लोभयुक्त राग-रस रङ्गमें मनोज्ञ मधुपगणको श्रीयुगल राधागोविन्दके

माधुर्यपूर्ण रसका पान कराके उन्मत्त किया है। श्रील जीव गोस्वामीपादने कहा है—*'मन्दिरमार्जनम् इति कृष्णसेवायाम्।'* पुनः श्रीचैतन्यमहाप्रभुकी वाणी और विचारधाराको अक्षुण्ण रखा है—*'अनर्पितचरीं चिरात्'* श्लोकके द्वारा, जिसमें श्रीराधादास्यके मञ्जरीभावकी कथाका प्रशंसनीय कीर्तन हुआ है। श्रीगुरुदेवकी अनुपम दिव्यसेवाकी कथा आज भी मेरे कर्णरन्ध्रमें भ्रमरके समान गुञ्जन कर रही है।

गङ्गाजलके द्वारा जिस प्रकार गङ्गापूजाका विधान है, उसी प्रकार श्रील गुरुदेवकी कृपासे मैं उनकी सेवाकी महिमाको बोलनेका केवल प्रयास कर रहा हूँ।

श्रील गुरुदेव श्रीवार्षभानवीकी एकनिष्ठ सेविका थे। वे कीर्तन करते हुए सदैव कहते थे—

राधापक्ष छाडि', जे-जन, से-जन, जे भावे से भावे थाके।
आमि त' राधिका-पक्षपाती सदा, कभु नाहि हेरि ताँ'के॥

उनके धीर, गम्भीर स्वभावसे उनका अन्तर्निहित भाव व्यक्त होता था। पुनः वे श्रीजयदेव गोस्वामी द्वारा रचित गीतगोविन्दका एक श्लोक प्रायः बोलते थे—

यदि हरिस्मरणे सरसं मनः यदि विलासकलासु कुतूहलम्।
मधुरकोमलकान्तपदावलीं शृणु तदा जयदेवसरस्वतीम्॥

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके तीनों स्तम्भोंमें-से वे एक विशेष स्तम्भ थे। जिस प्रकार शिवलिङ्गको तीन बेलपत्ते सुशोभित करते हैं, उसी प्रकार श्रील वामन गोस्वामी महाराज, श्रील त्रिविक्रम गोस्वामी महाराज और श्रील नारायण गोस्वामी महाराजने श्रील केशव गोस्वामी महाराजकी प्रचुर सेवा की है। वे तीनों एक आत्मा और तीन देहधारी थे। भेदभावरहित होकर वे तीनों श्रीगुरुकी सेवामें व्रती थे। उन लोगोंने श्रीमन्महाप्रभुकी वाणीका देश-विदेशमें प्रचार किया है, श्रील परमगुरु-महाराजकी भविष्यवाणीको सफल किया है।

एक दिन परमगुरुदेवने अपने सतीर्थ गुरुभ्रातासे कहा था—"मेरे पासमें जो बागान है, उसके फूलोंकी सुगन्ध सामान्य दूर तक जाएगी, परन्तु ये जो तीन ब्रह्मचारी हैं, ये विश्वमें सर्वत्र जाकर सुगन्धके द्वारा सभी जनोंको विमोहित करेंगे, जिससे पृथ्वीके भक्त-भ्रमर उन्मत्त होकर प्रेममाधुर्यका रसास्वादन करेंगे।" उनकी वह भविष्यवाणी आज सार्थक हो रही है।

मठ-मन्दिरोंकी परिचालना

श्रील गुरुदेवने मठ-मन्दिरोंकी परिचालनाका दायित्वादि सब कुछ श्रील नारायण गोस्वामी महाराजको सौंप दिया था। वे प्रायः बोलते—'श्रीनारायण महाराज मेरे अभिभावक हैं। वे जो बोलेंगे, उसके ऊपर अन्य किसीका कोई विचार नहीं रह सकता।' वे सदैव प्रचारकार्य एवं ग्रन्थ-लेखन कार्यमें समय व्यतीत करते थे। वे बोलते थे—'तीन कार्य कदापि स्थगित नहीं होंगे—प्रचार, ग्रन्थ-प्रकाशन और श्रीधाम-परिक्रमा।' वे स्वयं धाम-परिक्रमामें उपस्थित रहकर समस्त भक्तोंको उत्साहित करते थे। विशेषतः श्रीनवद्वीपधाम और श्रीव्रजमण्डल-धाम परिक्रमा श्रील त्रिविक्रम गोस्वामी महाराज एवं श्रील नारायण गोस्वामी महाराजके आनुगत्यमें अनुष्ठित होती। श्रील गुरुदेवका हृदय कितना सौहार्दपूर्ण था, वह वर्णनसे परे है। अपने गुरुभ्राताओंका लालन-पालन कितने आदर-यत्नके साथ करते थे, उसे भाषामें वर्णन नहीं किया जा सकता। अन्य मठोंके साधु-संन्यासीगण यह देखकर उनकी बार-बार प्रशंसा करते।

गौड़ीय-अभिधान (शब्दकोश)

श्रील गुरुदेव श्रीचैतन्य महाप्रभुके शिक्षाष्टकके 'तृणादपि सुनीच' श्लोकके मूर्तिमान् प्रतीक थे। उनकी दीनताकी कथा भाषामें व्यक्त नहीं कर सकते। उन्होंने कितने सौ शास्त्रोंके श्लोकोंको अपने हृदयमें रखा था, वह कौन जानता है? उनकी धी-शक्ति और स्मरण-शक्तिको देखकर सभी चमत्कृत हो जाते थे। इसीलिए गौड़ीय वैष्णव समाजमें सभी उनको 'गौड़ीय अभिधान' कहते थे। एकाधारमें वे 'गुरुशुश्रूषया' श्लोकके मूर्तविग्रह एवं 'सज्जनसेवक' नामके सार्थक उदाहरणस्वरूप थे। वे समस्त संन्यासी और ब्रह्मचारियोंकी दीन-हीन भावसे सेवा करते थे। अतः समस्त भक्त उनको अपना आत्मीय मानते थे। वे किसी प्रकारकी लाभ-पूजा-प्रतिष्ठाके लिए लालायित नहीं थे। माधवेन्द्रपुरीपादका उहारण

देकर वे सदैव कहते थे—*'जड़ेर प्रतिष्ठा, शूकरेर विष्ठा'*, और *'प्रतिष्ठार भये पुरी जान पलाजा। कृष्ण-प्रेमे प्रतिष्ठा चले सङ्गे गड़ाजा।'*

श्रील प्रभुपादके श्रीचरणोंमें समर्पित आत्मा

श्रील गुरुदेव मात्र ९ वर्षकी आयुमें अपनी बुआके साथ मायापुर दर्शनके लिए आये थे। प्रभुपादका प्रथम दर्शन प्राप्तकर उन्होंने उनसे कहा था—'मैंने अपने नित्य मातापिताको प्राप्त किया है।' प्रभुपादसे उन्होंने हरिनाम प्राप्त किया था। वे बोलते थे—*'सेइ से परमबन्धु, सेइ पितामाता। श्रीकृष्ण-चरणे जेइ प्रेमभक्तिदाता॥'* श्रीमद्भागवतके श्लोकके उज्ज्वल उदाहरणसे स्वयं उन्होंने हमें शिक्षा दी है—

गुरुर्न स स्यात् स्वजनो न स स्यात्
पिता न स स्याज्जननी न स स्यात्।
दैवं न तत् स्यान्न पति स स्यात्
न मोचयेद् यः समुपेत मृत्युम्॥

श्रील प्रभुपादकी विचारधारामें वे ऐसे निष्ठापरायण थे कि वे बोलते—श्रीचैतन्यचरितामृतमें श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके विचारोंको जाननेके लिए पहले श्रीभक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादका आनुगत्य स्वीकार करना होगा। वे सदैव श्रील भक्तिविनोद ठाकुरकी कथाओंको प्रभुपादकी विचारधारामें व्यक्त करते थे।

श्रीगुरुदेवकी अनुपम विचारधारा

रसराज महाभावस्वरूप श्रीशचीनन्दन गौरहरि द्वारा आस्वादित उन्नत-उज्ज्वल भक्तिरसके गोपनीय तथ्योंको वे अति घनिष्ठ जनके निकट व्यक्त करते थे। *'आपन भजन कथा, ना कहिबे यथा तथा।'* उन्होंने श्रीरूप-रघुनाथकी अमृतधाराको सिञ्चनकर जीवोंके हृदयमें स्थित कुतर्क, कुवासनारूप दावानलको निर्वापित किया है। श्रीचैतन्यचरितामृतकी अन्त्यलीलाके बीसवें परिच्छेदमें शिक्षाष्टकके तृतीय श्लोक *'तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना। अमानिना मानदेन कीर्त्तनीयः सदा हरिः॥'* की व्याख्याके प्रसङ्गमें श्रील गुरुदेवने एक अभिनव विचार वैशिष्ट्यका प्रदर्शन किया है, उसे सुनकर सभी मन्त्रमुग्ध हो जाते थे एवं समस्वरमें उनकी विपुल प्रशंसा करते थे। शिक्षाष्टकके 'तृणादपि सुनीचेन' श्लोक और आचार्यप्रवर श्रीशङ्कराचार्यके मतानुसार चार महावाक्योंमें आपात-विरोध देखा जाता है, किन्तु श्रील गुरुदेवने 'तृणादपि सुनीचेन' श्लोकके द्वारा पूर्वाचार्यगणका यथार्थ सम्मान करते हुए इन चार महावाक्योंका समन्वय किया है।

उन्होंने **'अहं ब्रह्मास्मि'** का समन्वय किया है **'तृणादपि सुनीचेन'** के द्वारा। तृणादपि सुनीच अर्थात् *'अहं गोपीभर्तुः पदकमलयोर्दासदासानुदासः'*—यह विज्ञान ही स्वरूपज्ञान या सम्बन्धज्ञान है। इसमें जड़ अभिमानका त्यागकर अप्राकृत चित्ज्ञानके अनुभवकी कथा सूचित है, अर्थात् जीव ब्रह्मके क्रोड़ीभूत वस्तु अणुचेतनमय है। वह बृहत्-चैतन्यके अधीन है। उसमें जड़ एवं चेतनका सम्मिश्रण नहीं होता है, सदैव पृथक् अवस्थान करते हैं।

'तरोरपि सहिष्णुना' के द्वारा **'तत्त्वमसि'** वाक्यका समन्वय है अर्थात् जीव परब्रह्मजातीय वस्तु है। 'तस्य त्वम् असि' अर्थात् जीव ब्रह्मका ही वार्त्ता वहन करता है। जड़वस्तु जड़के द्वारा क्षुब्ध नहीं होती है, लुब्ध होती है, उसके लिए उसमें असहिष्णुता आ जाती है। चेतन वस्तु जड़से पृथक् होनेके कारण उसमें सहिष्णुता देखी जाती है। वृहत्-चैतन्य वस्तुका धर्म है अणुचैतन्य वस्तुकी सेवाको ग्रहण करना, उसमें अणुचैतन्यकी किसी प्रकार असहिष्णुता नहीं रहती है।

'अमानिना मानदेन' के द्वारा महावाक्य **'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'** का समन्वय हुआ है अर्थात् इस परिदृश्यमान् जगत्में सब कुछ ब्रह्मसे अभिन्न है, ब्रह्मस्वरूपमें कोई जड़ीय भेद नहीं है, वे सर्वत्र भगवद् दर्शन करते हैं, अतः वे सब प्रकारसे सर्वत्र अमानी और मानद (सम्मान प्रदानकारी) होते हैं।

चतुर्थ पादमें **'कीर्त्तनीयः सदा हरिः'** के द्वारा 'प्रज्ञानं ब्रह्म' का समाधान हुआ है। वस्तुतः श्रीहरिकीर्तन ही प्रकृत प्रज्ञा है। हरि और हरिकीर्तन दोनों अभिन्न हैं, अप्राकृत ब्रह्मस्वरूप हैं। इसलिए ब्रह्मसूत्रमें कहा गया है—*'अनावृत्तिः शब्दात् अनावृत्तिः शब्दात्।'* इसके द्वारा सर्वदा श्रीहरिका भजन करना होगा। *'हरिरेव सदाराध्यः सर्वदेवेश्वरेश्वरः।* इस प्रकार वे अपनी सूक्ष्म धी-शक्तिसे पण्डित-समाजमें समादृत होते थे।

श्रील गुरुदेवकी शिष्य-वत्सलता निरपेक्षताका एक उज्ज्वल उदाहरण था। *'निरपेक्ष ना हइले धर्म ना जाय रक्षणे।'* कभी-कभी श्रील गुरुदेव सेवकरहित होकर भ्रमण करते थे। प्रचारकार्यमें भी अपने कार्योंको प्रायः अकेले कर लेते थे।

कतिपय स्मृति

किसी समय एक दरिद्र दम्पतिने देवी कालीमाताके निकट कुछ बलिदानका संकल्प लेकर प्रार्थना की, जिससे उनको सन्तानकी प्राप्ति हो। कुछ ही दिनोंमें उस दम्पतिको सन्तानकी प्राप्ति हुई। इसके बाद वे दोनों श्रील गुरुदेवके चरणोंका आश्रयकर एकनिष्ठ हरिभजन करने लगे। परन्तु उन दोनोंने पूर्व संकल्पित बलि प्रदान न करनेके कारण देवी उनको बार-बार स्वप्नमें भय दिखाने लगी। बादमें एक दिन उन्होंने गुरुदेवके सामने उस स्वप्नकी बात प्रकाशित की। यह सुनकर गुरुदेवने कहा—'तुमलोग श्रीराधागोविन्दका उत्सव करो एवं उस महाप्रसादको देवीको प्रदान करो।' श्रील गुरुदेवके निर्देशके अनुसार उस दम्पतिने श्रीराधागोविन्दका महाप्रसाद देवीको निवेदन किया, तब देवी अत्यन्त प्रसन्न हुईं एवं स्वयं गुरुदेवसे कहने लगीं—'उस दम्पतिको भय दिखानेका कारण है उनसे श्रीराधागोविन्दके प्रसादकी प्राप्ति। अब मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ।' इस घटनाके लिए देवीने गुरुदेवसे क्षमाकी प्रार्थना की थी। इस प्रकारकी बहुत घटनाएँ हैं, जिनमें अन्य देव-देवियोंने भी श्रील गुरुदेवके निकट कृतज्ञता प्रकाश की है। इसलिए वे कहते थे—जो लोग कृष्णभजन करते हैं, उनके प्रति समस्त देव-देवी सन्तुष्ट होते हैं। शास्त्रमें भी कहा गया है कि समस्त देव-देवी श्रीकृष्णके आज्ञावाहक सेवक-सेविका हैं। *"इतरे ब्रह्मरुद्राद्या नावज्ञेयाः कदाचन।"*

नृसिंह-मन्त्र

श्रील गुरुदेवने श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादसे हरिनाम और नृसिंह-मन्त्र प्राप्त किये थे। एक बार मैं मथुरा-मठमें अत्यन्त अस्वस्थ हो गया, तब श्रील गुरुदेवने मुझे नृसिंह मन्त्र प्रदान किया था। मन्त्र एवं महाप्रसादकी अद्भुत शक्तिका मैंने प्रत्यक्ष दर्शन किया था। श्रील गुरुदेवने अनेक भूत-प्रेतोंका विवाह और उनका उद्धार आदि किये हैं। वे ऐसी घटनाओंको सुनाकर भक्तोंको दृढ़रूपसे हरिभजन करनेके लिए उत्साह प्रदान करते थे।

श्रीगीता और श्रीमद्भागवत

श्रीगुरुदेव श्रीमद्भगवद्गीताके श्लोकोंके द्वारा समस्त मतवादोंका खण्डन करते थे, उसका एक-दो उदाहरण दे रहा हूँ। *'मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्। हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्त्तते॥'* (गीता ९/१०) इस श्लोकसे श्रील गुरुदेव प्रकृतिवादका खण्डन करते थे। *'अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यते मामबुद्धयः। परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम्॥'* (गीता ७/२४) इस श्लोकके द्वारा वे श्रीशङ्करवादका खण्डन करते थे। वे प्रायः बोलते थे—गीतामें कर्मसे अधिक ज्ञान, ज्ञानसे अधिक योग और योगसे अधिक भक्तिकी श्रेष्ठता प्रतिपादित हुई है। विशुद्ध भक्ति ही गीताका प्रतिपाद्य विषय है। पुनः गीताकी कथा जहाँ अन्त हुई है, वहींसे सर्वशास्त्रचूड़ामणि श्रीमद्भागवतका प्रारम्भ हुआ है। इसलिए वे सर्वदा कहते थे—

आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं
रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्
श्रीचैतन्यमहाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो न परः॥

श्रीमद्भागवतमें गोपीप्रेमकी कथा ही घोषित है। उसमें साध्य-शिरोमणि श्रीवृषभानुनन्दिनीका प्रेम है, जिसका उद्धवादि महाजनोंने श्रीमद्भागवतके १०/४७/६२ श्लोकके द्वारा पुनः-पुनः कीर्तन किया है।

या वै श्रियार्चितमजादिभिराप्तकामै-
र्योगेश्वरैरपि यदात्मनि रासगोष्ठ्याम्।
कृष्णस्य तद्भगवत रणारविन्दं न्यस्तं
स्तनेषु विजहुः परिरभ्य तापम्॥

अलमति विस्तरेण।

मेरे गुरुपादपद्म श्रील वामन गोस्वामी महाराजके शततम आविर्भाव-तिथि-वासरपर इस दासाधमका श्रद्धार्घ्य निवेदन

—श्रीमद्भक्तिवेदान्त बोधायन महाराज
सभापति-आचार्य श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति, (नवद्वीप)

मायाबद्ध मानवका ज्ञान अत्यन्त साधारण और सीमित होनेके कारण जब वे हरि-गुरु-वैष्णवके अतिमर्त्त्य चरित्र और वाणीको नापनेकी चेष्टा करते हैं, तब वे तुच्छ भ्रममें पड़ जाते हैं। केवल अनुगत सत्-शिष्य ही सद्गुरुके प्रशस्ति-कीर्तनकी आवश्यकता और उपयोगिताका अनुभव कर सकते हैं। प्राकृत चिन्ताधारा (सोच-विचार) को लेकर श्रील गुरुदेवके अतिमर्त्त्य चरित्रका वर्णन करना अथवा उसका दिग्दर्शन करना पूर्णतः असम्भव है। फिर भी उनके दिव्य-जीवन, अलौकिकता, प्रचार और अप्राकृत शिक्षाधाराका कुछ वर्णन करनेका लोभ होना सत्-शिष्यका अवश्य ही कर्तव्य और धर्म है। श्रील गुरुदेवने अपने जीवनमें उत्तम आचरणोंके द्वारा श्रीगौर-विनोद-वाणीकी सेवा-प्रचार कर जगत्को इस प्रकारकी शिक्षा दी है। अतः उनकी वाणी और जीवनी एक तात्पर्यपरक और वास्तव होनेके कारण उसे जगत्को अवगत कराने पर जगत्का मङ्गल अवश्यम्भावी है।

जो समस्त शास्त्र-सिद्धान्तोंमें सुनिपुण हैं, शिष्यके समस्त संशयोंका छेदन करनेमें समर्थ हैं, सदैव हरिसेवामें निष्ठायुक्त हैं, परदुःख-दुःखी हैं, दयाके सागर हैं, अनिच्छुक अज्ञान-अन्ध व्यक्तिको वैराग्ययुक्त भक्तिरसका वितरण करनेवाले हैं, जो मेरी जीवन-नौकाके कर्णधार-स्वरूप हैं, जिनकी अहैतुकी कृपाके बिना भवसागरको पार करनेका कोई अन्य उपाय नहीं है, जिनके अप्रसादसे जीवकी श्रेयः-प्राप्तिकी सम्भावना बहुत दूर है, सर्वप्रथम उन करुणाघनविग्रह मेरे श्रील गुरुपादपद्म नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद जगद्गुरु परमहंस-चूड़ामणि अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजके श्रीचरणोंमें अनन्तकोटि साष्टाङ्ग भूपतित दण्डवत् प्रणाम करता हूँ। जिनकी अहैतुकी करुणा मूक व्यक्तिको वाचाल कर सकती है, पङ्गु (लङ्गड़े) को गिरि लंघन करा सकती है, परमानन्द-स्वरूप दीन-तारण उन गुरुदेवकी महिमा-कीर्तनके बिना मनुष्य जीवनको सार्थक करनेका अन्य कोई उपाय नहीं है। श्रीगुरुके गुण और महिमाका कीर्तन करना ही जिह्वाकी वास्तव सार्थकता है। गुरुदेवकी अप्राकृत महिमा सेवोन्मुख जीवके शुद्ध हृदयमें ही प्रकाशित होती है, प्राकृत इन्द्रियोंसे नाप लेनेकी चेष्टा करने पर उसे कदापि नहीं जाना जा सकता। अनन्त विशाल आकाशमें अत्यन्त नगण्य एक क्षुद्रतम पक्षी भी जिस प्रकार विचरण करनेके लिए तनिक भी संकोच नहीं करता, उसी प्रकार जिनकी असमोर्ध्व अनुकम्पासे यौवनावस्थामें मुझे इस भक्तिजगत्के प्रकाशका सन्धान मिला है, उन गुरुदेवकी शतवार्षिकी आविर्भाव-तिथि-पूजामें उनके महिमा-महासागरमें विशेष रूपमें अवगाहन (स्नान) करनेका सुयोग प्राप्तकर अपनेको कृत-कृतार्थ मान रहा हूँ।

प्रेमावतारी महावदान्य श्रीचैतन्य महाप्रभुके मनोऽभीष्टको पूर्ण करनेके लिए एवं त्रितापज्वालासे जर्जरित जीवके दुःख मोचनके लिए रूपानुगप्रवर ॐ विष्णुपाद परमहंसस्वामी अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज गौड़ीय-गगनमें एक उज्ज्वल नक्षत्रके रूपमें २३ दिसम्बर सन् १९२१ ई॰, पौष

कृष्ण-नवमी तिथिपर वर्तमान बङ्गलादेशके अन्तर्गत खुलना जिला (वर्तमान बागेरहाट जिला)के पिलजङ्ग ग्राममें विख्यात घोषवंशमें आर्विभूत हुए थे। उनके पिताजीका नाम था श्रीसतीशचन्द्र घोष और माताका नाम था श्रीमती भगवती देवी। पितामह (दादाजी) श्रीप्रसन्नकुमार घोष समाजमें एक गणमान्य व्यक्ति थे। श्रील गुरु-महाराजके वंशमें प्रायः सभी श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादके अनुगत थे। गुरुदेवके मातामह (नाना) श्रीब्रजेन्द्रनारायण रायचौधुरी मौभोग राजबाड़ीके जमीनदार थे। बचपनमें गुरुदेवका नाम था 'सन्तोष'। वे अपने मधुर आचार और व्यवहार द्वारा सभीका सन्तोष विधान करते थे। वे अपनी बुआ और आत्मीय-स्वजनोंके साथ मात्र ९ वर्षकी आयुमें सुकण्ठ कीर्तनीया श्रीपाद विष्णुपाद दासाधिकारी प्रभुकी परिचालनामें श्रीनवद्वीप-धामकी परिक्रमा करने आये थे एवं फिर पुनः घरमें न लौटकर मायापुर स्थित श्रीचैतन्य मठमें ही रह गये।

बचपनसे ही उनमें गुरु-वैष्णवोंके प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा और अन्यान्य भक्तिमूलक कार्योंको देखकर मठके अधिकारी अत्यन्त प्रसन्न होते थे। उनके समान गुरु-वैष्णव-सेवाप्राण सज्जन बहुत कम देखे जाते हैं। गुरु-वैष्णवोंके प्रति उनका आनुगत्य और उनकी उदारता हमारे लिए सदैव शिक्षणीय हैं। वे श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादके विशेष कृपापात्र थे। वैष्णवोंके घरमें झाड़ू लगाना, उनके जलपात्रोंमें पीनेका जल भरना, उनके पहने हुए वस्त्रोंको साफ करना, बर्तन माँजना, प्रसाद-कक्षमें समस्त वैष्णवोंके लिए आसन, थाली, पत्ता, नींबू, नमक, मिर्च आदि देना एवं प्रसादके बाद उस स्थानको साफ करना उनकी नित्यसेवा थी। वे मायापुर स्थित 'श्रीभक्तिविनोद इंस्टिट्यूट' में एक मेधावी छात्र थे एवं विशेष कृतित्वके साथ माध्यमिक परीक्षामें उत्तीर्ण हुए। छात्रावस्थासे ही गीताके समस्त श्लोक और अन्यान्य शास्त्रोंके बहुत श्लोक उनको कण्ठस्थ थे। उनकी अद्भुत स्मरणशक्तिको देखकर वैष्णवोंने उनको 'जीवन्त अभिधान' (Living Dictionary) उपाधि दी थी। वे श्रील नरहरि सेवाविग्रह प्रभु एवं श्रील विनोदविहारी 'कृतिरत्न' प्रभु (श्रील केशव गोस्वामी महाराज) के विशेष स्नेहके पात्र थे। ईस्वी सन् १९३६ के मध्यमें उन्होंने श्रील प्रभुपादसे हरिनाम प्राप्त किया था। श्रील प्रभुपादके अप्रकटके बाद श्रीचैतन्य मठमें विवाद आरम्भ होनेपर मेरे गुरुदेव श्रील विनोदविहारी कृतिरत्न प्रभु, श्रील नरहरि सेवाविग्रह प्रभु और श्रील वीरचन्द्र प्रभु (श्रीमद्भक्तिकुशल नारसिंह महाराज)के साथ श्रीचैतन्यमठसे बाहर आ गये।

जब श्रील परमगुरुदेवने ईस्वी सन् १९४० अप्रैल मासमें अक्षय-तृतीया तिथिपर श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिकी स्थापना की, तब मेरे गुरुदेवने समितिके प्रधान सेवकका कार्यभार ग्रहण किया। श्रीचैतन्यमठसे बाहर आनेसे पूर्व एक मिथ्या घटनामें ईस्वी सन् १९३९ में श्रील प्रभुपादके अनुगत गुरुभ्राताओंके साथ श्रीविनोदविहारी कृतिरत्न प्रभुको कुछ दिनों तक कारागारमें रहना पड़ा था। उस समय रन्धन कार्यमें नियुक्त किशोर श्रीसन्तोषने कृतिरत्न प्रभुसे दीक्षामन्त्र प्राप्त किये एवं 'श्रीसज्जनसेवक ब्रह्मचारी' नामसे परिचित हुए। सन् १९४७ ई॰ में श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजने मेरे गुरुदेव श्रीसज्जनसेवक ब्रह्मचारी प्रभुको 'बृहत्-मृदङ्ग' का (प्रेसका) एवं सन् १९४९ ई॰ में पारमार्थिक मासिक 'श्रीगौड़ीय पत्रिका' के प्रकाशनका दायित्व प्रदान किया। श्रीपत्रिकाके प्रथम वर्षका प्रथम अङ्क श्रीनवद्वीप-धाम-परिक्रमाके प्रथम दिन देपाड़ा स्थित सर्वविघ्न-विनाशक श्रीनृसिंहदेवके श्रीचरणकमलोंमें समर्पित हुआ। प्रथम वर्षकी श्रीगौड़ीय-पत्रिकाकी वार्षिक भिक्षा थी मात्र चार रुपये।

११ मार्च १९५२ ई॰ मङ्गलवारको मेरे परमगुरुदेव श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजने श्रीगौड़ीय पत्रिकाके प्रकाशक श्रीसज्जनसेवक ब्रह्मचारी,

श्रीपत्रिकाके कार्याध्यक्ष श्रीराधानाथ व्रजवासी और श्रीपत्रिकाके प्रचार-सम्पादक श्रीगौरनारायण व्रजवासीको संन्यास-वेश प्रदान किया। वे क्रमानुसार त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज, त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज, त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज नामोंसे सर्वत्र परिचित हुए। मेरे गुरुदेवने त्रिदण्ड संन्यास ग्रहण करनेके बाद प्रेसका दायित्व श्रीपाद नवयोगेन्द्र ब्रह्मचारी (त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त आचार्य महाराज) को दे दिया तथा स्वयंको भारतवर्षमें विभिन्न स्थानों पर हरिकथा प्रचार आदि कार्योंमें नियुक्त किया। *'तोमार सेवाय दुःख हय जत, सेओ त परम सुख।'* इस वाक्यके वे सार्थक स्वरूप थे। उन्होंने असम्भव परिश्रमको परम सुख मानकर निर्भय होकर विशेष उत्साहके साथ भारतवर्षके विभिन्न प्रान्तोंमें भगवान्‌की कथाका प्रचार किया है। परमगुरुदेवके अप्रकटके बाद उनके द्वारा ४ अक्टूबर, १९६८ ई॰ को सम्पादित व्यवस्थाके अनुसार १८ अक्टूबर, १९६८ ई॰ को बारह सदस्योंसे युक्त परिचालक समितिके अधिवेशनमें सबकी सम्मतिसे मेरे गुरुदेव श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके सभापति आचार्यके गुरुत्वपूर्ण पदपर अभिषिक्त हुए। मठ-मन्दिरोंके पर्यवेक्षण एवं प्रचार-प्रसार कार्य आदिका दायित्व भी उन्होंने ग्रहण किया।

मेरे गुरुदेवने अपने जीवनकालमें श्रील केशव गोस्वामी महाराजके मनोऽभीष्टको सर्वदा पूर्ण किया है। जो गुरुकी आज्ञा सब प्रकारसे पालन करते हैं, वे ही यथार्थ शिष्य हैं, वे ही गुरु होनेके लिए योग्य अधिकारी हैं। जो गुरुकी आज्ञाको अस्वीकार करते हैं, वे गुरु-परम्पराके विरोधी हैं, पथभ्रष्ट तथा गुरुब्रुव (तथाकथित गुरु) हैं। श्रील गुरुदेवके मनोऽभीष्टका अनुसरण करना ही शिष्यका एकमात्र प्रयोजन है, इसे निष्कपट रूपसे अनुभव न कर पानेपर अन्याभिलाषिताके ग्रासमें ग्रसित होना पड़ेगा, इसे गुरुदेवने हमको बार-बार बताया है। जिन्होंने भोगमय संसारका परित्यागकर श्रीहरि-गुरु-वैष्णवकी सेवामें जीवनको समर्पित किया है, उनके लिए अभाव, उद्वेग, दुःख, कष्ट कुछ भी नहीं रह सकता। गुरुसेवा ही उनका प्राण, जीवन और भूषण था। उन्होंने अपने गुरुदेवके सुखके लिए सम्पूर्ण जीवन समस्त कार्य किये हैं, महाविपदके सम्मुखीन होनेपर भी वे कभी पीछे नहीं हटे।

मेरे गुरुदेवने अपने आदर्श व्यक्तित्व, ज्वलन्त आचरण और बजरङ्गबली (हनुमान) के समान सुदृढ़ निष्ठासे समस्त सत्यपिपासु व्यक्तियोंकी कोटि-कण्टकरुद्ध भक्तिमार्गपर कलियुग-प्रभावके उच्च तरङ्गायित सागरमें आलोकस्तम्भके समान रक्षा की है। शत-शत प्रलोभन, प्रतिष्ठाशा, बहिर्मुख लोगों द्वारा अजस्र(निरन्तर) निन्दा या वन्दना उन सत्यसारको सत्यपथसे तनिक भी विचलित नहीं कर सकी। उनके समान सहिष्णु व्यक्ति जगत्‌में सुदुर्लभ हैं। वे अपने स्वास्थ्यके प्रति बिन्दुमात्र भी ध्यान न देकर देश-देशान्तरमें गमन करके जगत्‌के लोगोंके मङ्गलकी चिन्ता करते थे। वे कृष्ण-प्रीतिके लिए भोगोंके त्यागके मूर्तिमान् प्रतीक थे। कृष्णेन्द्रिय तोषणकी वृत्तिके द्वारा भगवान्‌को जगत्‌के जीवोंके निकट प्रकाश करना ही उनकी प्रधान वृत्ति थी। वे अतिथि-वत्सल और आश्रित-पालक थे। भवसागर पार होनेके लिए नौकास्वरूप तथा कर्णधार स्वरूप गुरुदेवका अपने आश्रितजनोंके प्रति विशेष ममता और स्नेह सदैव विद्यमान था। अनादि कालसे विमुख जीवोंके उद्धारके लिए ही उनका इस जगत्‌में आगमन हुआ था, यह उनके आचरणके माध्यमसे ही स्पष्टरूपमें प्रकाशित हुआ है।

मेरे गुरुदेवके कृष्णेन्द्रिय-प्रीतिवाञ्छामूलक सेवा-सम्बन्धी अप्राकृत अनुरागमें कामका गन्धमात्र भी नहीं था। उन्होंने जिस प्रकार अत्यन्त उत्साहके साथ श्रीमन्महाप्रभुकी कथा जगत्‌में प्रचार की है, उस प्रकार हरिकथाके विपुल प्रचारके लिए श्रील केशव गोस्वामी महाराजके अप्रकटके बाद श्रीकेशव

गोस्वामी गौड़ीय मठ और श्रीश्यामसुन्दर गौड़ीय मठ (शिलिगुड़ि), श्रीमेघालय गौड़ीय मठ (तुरा, वेस्ट गारो हिल्स्, मेघालय), श्रीनरोत्तम गौड़ीय मठ (कोचविहार), श्रीविनोदविहारी गौड़ीय मठ (कोलकाता), श्रीभक्तिवेदान्त गौड़ीय मठ (हरिद्वार), श्रीगौर-नित्यानन्द गौड़ीय मठ और श्रीशिलचर गौड़ीय मठ (शिलचर), श्रीगोविन्दजी गौड़ीय मठ (पाण्डु, गौहाटी), श्रीक्षीरचोरा गोपीनाथ गौड़ीय मठ (बालेश्वर) आदि स्थानों पर शुद्धभक्ति प्रचार केन्द्रोंकी स्थापना की है। छात्र-छात्राओंको पारमार्थिक शिक्षा प्रदान करनेके लिए स्थानीय लोगोंके अनुरोधसे तुरामें सन् १९८४ ई॰ में 'श्रीगौड़ीय वेदान्त विद्यापीठ' नामसे एक (English Medium) शिक्षाकेन्द्रकी स्थापना भी की है।

श्रील गुरुमहाराजके जीवनमें कुछ अस्वाभाविक घटनाओंको देखकर किसी-किसीने उनके गुरुत्वमें संशय करते हुए अपने चरम सर्वनाशको आमंत्रित किया है। श्रीगुरुतत्त्वको जानने या समझनेके लिए भगवत् कृपा और प्रेरणा अत्यन्त आवश्यक हैं। मेरे गुरुदेव अपने चरणाश्रित सेवक, गृही भक्त, त्यागी और गुणमुग्ध सज्जनोंको विरह सागरमें निमज्जित कर १५ नवम्बर २००४ को कार्तिक शुक्लपक्ष तृतीया तिथि पर रात १२.३७ बजे अमृतयोग मुहूर्त्त पर स्वेच्छापूर्वक अपने अभीष्टदेव श्रीराधागोविन्दकी रासलीलामें प्रविष्ट हुए। श्रील गुरुदेवके अतिमर्त्त्य चरित्रका अनुसरण करनेके स्थानपर अनुकरण करने पर अवश्य पतित होना होगा। उनके स्नेहपूर्ण शासन और आत्मकल्याणजनक उपदेशोंको सर्वान्तःकरणसे ग्रहण करने पर प्रत्येक व्यक्तिका मङ्गल निश्चय ही होगा।

श्रीहरि-गुरु-वैष्णवोंकी सेवामें ही सम्पूर्ण जीवन अतिवाहित कर सकूँ, इसके लिए परमकरुणामय परमाराध्यतम श्रीगुरुदेवके निकट उनकी अहैतुकी कृपाकी प्रार्थना करता हूँ।

श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजकी अप्राकृत गुणावलीका स्मरण

—श्रीमद्भक्तिवेदान्त श्रीधर महाराज

श्रीमन्महाप्रभु द्वारा प्रेरित निजजन

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

(श्रीगीता ४/७)

करुणामय भगवान् जिस प्रकार जगत्-जीवोंका कल्याण करनेके लिए समय-समयपर धर्मकी स्थापना तथा अधर्मका विनाश करनेके लिए इस जगत्में आते हैं, ठीक उसी प्रकार उनके भक्त भी धर्मकी स्थापना करनेके लिए इस जगत्में अवतीर्ण होते हैं। वर्तमान युगमें कलिका प्रभाव अत्यन्त प्रबल होनेके कारण जड़रसमें प्रमत्त जीवोंको कृष्णामृत-समुद्रमें निमज्जित करनेके लिए महावदान्य कलियुग-पावन अवतारी श्रीशचीनन्दन गौरहरिके अनुयायी श्रीरूपानुग-भक्तिविनोद-सारस्वत धारामें जगत्में शुद्ध भक्तिरूपी मन्दाकिनीका प्रचार-प्रसार करनेके लिए श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज अन्यतम थे।

पृथिवीते आछे जत नगरादि ग्राम।
सर्वत्र प्रचार हइबेक मोर नाम॥
जगत् भरिया मोर हइबेक कीर्ति।
सुखी हइया लोक मोर गाइबेन कीर्ति॥

(चै.भ.अन्त्य ४/१२६)

यद्यपि इस भविष्यवाणीके अनुसार श्रीमन्महाप्रभुने जिनको जितनी शक्ति प्रदान की है, उन्होंने उसी परिमाणमें उनका मनोऽभीष्ट पूर्ण किया। किन्तु तटस्थ होकर मुक्तप्रग्रह-वृत्तिके द्वारा विचार करनेपर देखा जाता है कि महाप्रभुकी भविष्यवाणीको पूर्ण करनेमें श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपाद ही सर्वश्रेष्ठ हैं। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर श्रील प्रभुपादके ऊपर विभिन्न प्रकारका सेवाभार एवं महाप्रभुकी वाणीका सर्वत्र प्रचार-प्रसार करनेका दायित्व प्रदानकर अप्रकटलीलामें प्रवेश कर गये। एकबार श्रील प्रभुपाद मायापुरमें चिन्तामग्न होकर विचार कर रहे थे कि मैं किस प्रकारसे गुरुवर्गका आदेश पालन करूँ? मेरे पास धन-बल, जन-बल आदि कुछ भी नहीं है। उस समय सपरिकर श्रीमन्महाप्रभुने श्रील प्रभुपादको दर्शन प्रदानकर कहा—"तुम किसी प्रकारकी चिन्ता मत करो। तुम केवल चेष्टा करना आरम्भ करो, मैं तुम्हारा सहयोग करनेके लिए लोकबल, अर्थबल आदि शीघ्र ही भेज रहा हूँ।" इसके कुछ दिन बाद ही देशके विभिन्न भागोंसे बड़े-बड़े विद्वान, शिक्षित, उच्चपदोंमें आसीन बहुतसे व्यक्तियोंने श्रील प्रभुपादके श्रीचरणोंमें आश्रय ग्रहण करना आरम्भ कर दिया। इसके द्वारा यही सिद्ध होता है कि श्रील प्रभुपादके समस्त शिष्य महाप्रभुके द्वारा प्रेरित उनके निजजन थे। इन सब परिकरोंमें परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज अन्यतम थे। बाल्यकालमें उनका नाम सन्तोष था। वे वास्तवमें ही सन्तोष थे।

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात् परां स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥

(गीता १८/६२)

केवलमात्र भक्ति तथा भगवत्-शरणागतिके द्वारा ही जीवनमें पराशान्ति प्राप्त हो सकती है।

गुरु-वैष्णव-सेवानिष्ठा एवं प्रचार-शैली-वैशिष्ट्य

श्रील वामन गोस्वामी महाराज अपने सम्पूर्ण जीवनमें सुख-दुख, लाभ-हानि, जय-पराजय आदि समस्त अवस्थाओंमें ही प्रसन्नचित्त रहते थे। उनके साथ श्रीनारदमुनिके चरित्रकी समानता देखी जाती है। जिस प्रकार श्रीनारदजीने बाल्यकालमें ही साधु-वैष्णवोंकी सेवा तथा उनके उच्छिष्ट (प्रसाद) ग्रहणके फलसे भगवद्भक्ति प्राप्त की थी, उसी प्रकारसे ये भी बाल्यकालसे ही गुरु-वैष्णवोंकी मन-प्राणसे सेवा करते थे तथा वैष्णवोंका उच्छिष्ट ग्रहण किया करते थे। श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने भी कहा है—

तव निजजन प्रसाद पाइया, उच्छिष्ट राखिबे जाहा।
आमार भोजन परम आनन्दे प्रतिदिन हबे ताहा॥

वे इस कीर्तनके मूर्तिमान विग्रह थे। अर्थात् वे वैष्णवोंको प्रसाद प्रदानकर उनका अधरामृत (उच्छिष्ट) ही ग्रहण करते थे।

उनके गुरुदेव श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज उनकी सेवा प्रचेष्टा देखकर उनसे कहते थे, यदि मठके समस्त सेवकोंकी सेवाको एकत्रितकर तराजूके एक पलड़ेमें तथा तुम्हारी सेवाको दूसरे पलड़ेमें रख दिया जाय, तो तुम्हारी ओरका पलड़ा भारी रहेगा। अपनी सेवाके द्वारा वे सर्वदा ही अपने गुरुदेवको सन्तुष्ट रखते थे। यद्यपि वे ग्रन्थ-प्रकाशन विभागका दायित्व निष्ठापूर्वक पालन कर रहे थे, तथापि एकदिन उनके गुरुदेव उनसे बोले—"सारा जीवन प्रेसका ही कार्य करोगे, या कुछ प्रचार भी करोगे?" तबसे अपने श्रील गुरुदेवकी इच्छानुसार वे प्रचारके लिए बाहर निकलकर प्रत्येक गाँव, शहर आदिमें विपुल रूपसे श्रीमन्महाप्रभुकी वाणीका प्रचार करनेमें ऐसे जुट गये, कि पुनः प्रेसके कार्यमें कभी नहीं लौटे। महाप्रभुकी भविष्यवाणी—

पृथिवी-पर्यन्त जत आछे देश ग्राम।
सर्वत्र संचार हइबेक मोर नाम॥

इस वाणीको सार्थककर उन्होंने महावदान्यताका परिचय दिया। वे 'भूरिदाजना' पद की साक्षात् मूर्ति थे। उनकी प्रचार शैली अति वैशिष्ट्यपूर्ण थी। कई बार हरिकथाके बाद वे कहते थे—"जिसके मनमें जो भी संशय है या कुछ प्रश्न है, तो वह पूछ सकता है या लिखकर मुझे अवगत करा सकता है।" तब श्रोताओंमें-से कई लोग प्रश्न लिखकर उन्हें देते थे। तब श्रील महाराज उनके प्रश्नको देखे बिना ही ऐसे उत्तर देते थे कि सबको ऐसा प्रतीत होता था कि श्रील महाराजजी उनके ही प्रश्नका उत्तर दे रहे हैं। जिस प्रकार श्रीरामानुजाचार्यने एकबार एक हजार लोगोंके प्रश्नोंका उत्तर एक साथ दिया था, ठीक उसी प्रकारसे श्रील वामन गोस्वामी महाराज भी एक ही बारमें समस्त श्रोताओंके प्रश्नोंका उत्तर दे देते थे।

"कनक कामिनी, प्रतिष्ठा बाघिनी, छाड़ियाछे जारे, सेइ त वैष्णव।"—वे इस वाणीके मूर्त विग्रह थे।

कनक—धनके प्रति उनका बिन्दुमात्र भी मोह नहीं था। वे कभी भी बैंक नहीं गये न ही कभी अपने नामसे कोई बैंक खाता किया। वे कहते थे—"मेरी जेब ही मेरा बैंक है।" इतनी बड़ी गौड़ीय वेदान्त समितिके आचार्य होकर भी मठकी परिचालनाके लिए लेशमात्र भी चिन्ता नहीं करते थे, क्योंकि वे पूर्णरूपसे भगवान्के चरणोंमें शरणागत थे। जब कभी भी वे किसी भी मठमें जाते थे, तो उस मठमें उन्हें जो कुछ भी प्रणामी आदि मिलती थी, उसे वे पूर्णरूपसे उसी मठमें दे दिया करते थे। यदि कभी वहाँके मठ-रक्षक उस प्रणामीको लेनेसे मना कर

देते थे, तो उस प्रणामीको चुपचाप वहाँ दानपेटीमें डाल देते थे।

कामिनी—समग्र नारी जातिको ही वे 'माँ' कहकर पुकारते थे। विषय भोगोंके प्रति उनकी लेशमात्र भी लालसा नहीं थी। कवि जयदेव-कथित—*"साध्वी माध्वीक! चिन्ता न भवति भवतः शकरी कर्कशासि"*-के अनुरूप कोई यदि श्रीराधागोविन्दके प्रेममें अवगाहन करता है, तो जड़ जगत्का जड़रस उसे तुच्छातितुच्छ प्रतीत होता है।

प्रतिष्ठा—साधक काम, क्रोध, मोह, पिता-माता, बन्धु-भाई सबकुछ त्याग सकता है, किन्तु प्रतिष्ठाका त्याग करना उसके लिए बहुत ही कठिन है।

प्रतिष्ठाशा धृष्टा श्वपच-रमणी यदि मे हृदि नटेत्,
कथं साधु प्रेमा स्पृशति शुचिरेतन्ननु मनः।
सदा त्वं सेवस्व प्रभुदयित-सामन्तमतुलं,
यथा तां निष्काश्य त्वरितमिह तं वेशयति सः॥

(मनःशिक्षा)

वे किसी भी कार्यमें अपनी प्रधानताको पसन्द नहीं करते थे। अपनी व्यासपूजासे एकदिन पहले ही वे मठमें बिना किसीको कुछ बताए किसी अज्ञात स्थानपर चले जाते थे। प्रतिष्ठाकी उन्हें बिन्दुमात्र भी लालसा नहीं थी।

सर्वव्यापकत्व—एकबार पश्चिम बङ्गालके दक्षिण २४ परगनामें श्रील महाराजकी एक शिष्याने सुन्दर-सुन्दर अन्न-व्यञ्जन आदि बनाकर भगवान्को भोग लगाया। जब वह दोबारा मन्दिरमें गयी तथा भगवान्को आचमन देकर पुनः मन्त्र जपकर गुरुदेवको प्रसाद अपर्ण कर रही थी, तो उस समय अति उत्कण्ठा-पूर्वक चिन्ता कर रही थी कि यदि आज गुरुदेव साक्षात् रूपमें प्रसाद पाते, तो मुझे कितना आनन्द होता। उसी क्षण उसने देखा कि गुरुदेव साक्षात् रूपमें प्रसाद ग्रहण कर रहे हैं। परन्तु अगले ही क्षण उसे गुरुदेव दिखाई नहीं दिये। वह विचार करने लगी—"क्या यह मैंने स्वप्न देखा!" तब उसने गुरुदेवको पत्र लिखकर पूछा कि क्या उस दिन आप मेरे घरपर आये थे तथा आपने प्रसाद पाया था। तब श्रील महाराजजीने उत्तर दिया—"हाँ! तुम्हारी उत्कण्ठा तथा व्याकुलताको देखकर मैं स्थिर न रह सका तथा वहाँपर उपस्थित होकर मैंने प्रसाद पाया था।"

सेवा-भावना—एकबार गौड़मण्डल-परिक्रमाके समय श्रील महाराजजी एक मन्दिरमें गये, वहाँपर श्रीमन्महाप्रभुके भक्त-द्वारा सेवित प्राचीन विग्रह थे। किन्तु कालक्रमसे सेवाके अभावके कारण मन्दिरकी सेवा सुचारु रूपसे नहीं चल रही थी। ठाकुरके वस्त्र पुराने थे, शयन-पलङ्ग भी टूटा हुआ था। उसी दिन रात्रिके समय ठाकुरजी स्वप्नमें श्रील महाराजजीको कहने लगे—"तुमने स्वयं ही देख लिया है कि हमारे पास अच्छे वस्त्र, पलङ्ग आदि नहीं हैं। अतः तुम कुछ व्यवस्था करो।" अगले ही दिन श्रील महाराजजीने ठाकुरके लिए नये वस्त्रोंकी तथा नये पलङ्गकी व्यवस्था कर दी। भगवान् अपने भक्तोंकी सेवा माँगकर ग्रहण करते हैं।

अन्तर्यामीत्व—एकबार श्रील महाराजजी शिलिगुड़िमें थे। वहाँ उनकी एक शिष्या थी। उसके पतिकी वैष्णवोंके प्रति श्रद्धा नहीं थी। जब वह मठमें दर्शनके लिए जाती थी, तो उसका पति उससे झगड़ा करता था, यहाँ तक कि कभी-कभी उसके साथ मारपीट भी कर देता था। एकदिन अत्यन्त दुःखी होकर उसने आत्महत्या करनेका सङ्कल्प कर लिया। ऐसा सङ्कल्प लेकर वह मठमें श्रील महाराजजीका अन्तिम दर्शन करनेके लिए आयी। उसने श्रील महाराजजीके सेवक नृसिंह प्रभुसे श्रील गुरुदेवका दर्शन करानेकी प्रार्थना की। उसका अत्यन्त आग्रह देखकर नृसिंह

प्रभु उसे श्रील महाराजजीके पास ले गये। उसको देखते ही श्रील महाराजजी स्वयं ही उसे उपदेश प्रदान करते हुए कहने लगे—"अरे पगली! क्या करने जा रही है? आत्महत्या करनेपर प्रेत-योनिमें जाना पड़ेगा। तू चिन्ता मत कर कुछ दिनोंमें ही तुम्हारा पति तुम्हारे अनुकूल होकर स्वयं ही भजन करना प्रारम्भ कर देगा।" यह सुनकर वह आश्चर्यचकित होकर श्रील गुरुदेवको प्रणाम करके वापस घर गयी तथा घर जाकर उसने अपने पतिको श्रील गुरुदेवका चरणामृत प्रदान किया। कुछ दिन बाद ही उसके पतिका हृदय सम्पूर्णरूपसे परिवर्तित हो गया और उसने स्वयं श्रील महाराजजीसे दीक्षा ग्रहणकर भजन करना आरम्भ कर दिया।

शिष्य-वात्सल्य—एक दिन प्रचार करते-करते श्रील वामन गोस्वामी महाराज सेवकके साथ एक शिष्यके घर पहुँचे। वह शिष्य अत्यन्त निर्धन था। उसके पास श्रील गुरुदेवको ठहरानेके लिए अच्छी व्यवस्था नहीं थी, क्योंकि उसका घर कच्चा था, वह भी टूटा-फूटा था। इसलिए उसने श्रील गुरुदेवके रहनेके लिए पासमें ही एक धनी व्यक्तिके घरमें व्यवस्था कर दी। जब यह बात श्रील महाराजजीको पता चली तो वे उससे कहने लगे—"क्या मैं अपने शिष्यके घरपर नहीं रह सकता।" शिष्य बोला—"गुरुदेव! हमारे घरमें पैखाना भी नहीं है। अतः आपको असुविधा होगी।" यह सुनकर श्रील महराजजीने उससे कहा कि घरके पीछे एक गड्ढा खोद दो तथा उसे चारों ओरसे घेर दो। हम वहींपर ही शौचकार्य कर लेंगे।" इस प्रकार वे अपने अत्यन्त दीन-हीन गृहस्थ शिष्योंपर भी कृपा करके उनका पारमार्थिक पालन-पोषण करते थे।

दैन्य—एकबार श्रील वामन गोस्वामी महाराजकी व्यासपूजाके दिन उपस्थित भक्तलोग उनके श्रीचरणोंमें पुष्पाञ्जलि प्रदान करते हुए उनकी महिमाका गुणगान कर रहे थे। कोई उन्हें एक महान दार्शनिक, कोई सिद्धान्तविद्, कोई रसिकवैष्णव, कोई शास्त्र-सिद्धान्तोंमें सुगम्भीर, कोई उनके भजन-आदर्श, कोई उनकी वैष्णवता, कोई उनकी गुरुनिष्ठा आदि विषयोंमें अपनी-अपनी अनुभूति व्यक्त कर रहे थे। अन्तमें उन्होंने बोलना आरम्भ किया। वे कहने लगे—"आज मेरा कर्तव्य श्रीव्यासदेव तथा गुरुवर्गकी महिमा श्रवण करना था, किन्तु मैंने व्यास-आसनपर बैठकर अपनी महिमा श्रवण की। इसलिए मेरे जीवनको धिक्कार है।" इससे उनकी महानता तथा उनकी दीनता प्रकाशित होती है।

गुरु-निष्ठा—एक समय श्रील महाराजके गुरुदेव नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजने उपस्थित शिष्यमण्डलीको 'भक्तितत्त्व'के विषयमें वक्तृता देनेके लिए कहा। शिष्य लोग अपनी-अपनी अनुभूतिके अनुसार शास्त्रीय उदाहरणोंके द्वारा 'अन्याभिलाषिताशून्यं', 'सा परानुरक्ति ईश्वरे', 'अनन्यममता विष्णु' आदि विभिन्न शास्त्रीय प्रमाणोंके द्वारा भक्तिविषयमें वक्तृर्ता कर रहे थे। किन्तु जब श्रील वामन गोस्वामी महाराजजीके बोलनेकी बारी आयी तब उन्होंने कहा—"गुरुनिष्ठा, गुरुसेवा, गुरुदेवके श्रीचरणोंमें अनुराग तथा गुरुदेवकी सन्तुष्टिको ही अपना सर्वस्व मानना यथार्थ भक्तिका लक्षण है—

रहुगणैतत्तपसा न याति, न चेज्यया निर्वापणाद् गृहाद्वा।
न छन्दसा नैव जलाग्नि सूर्यैं, र्बिना पादराजोऽभिषेकम्॥
नैषां मतिस्तावदुरुक्रमाङ्घ्रिं, स्पृशतत्यनर्थापगमो यदर्थः।
महीयषां पादरजोऽभिषेकं, निष्किञ्चनानां न वृणीत यावत्॥

(श्रीमद्भा॰)

यह उत्तर सुनकर श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज अत्यन्त प्रसन्न हुए। इसी कारणसे श्रील महाराजजी एकमात्र गुरुनिष्ठापर ही विश्वास रखते थे।

भजन-परिपाटी—

क्षान्तिरव्यर्थकालत्वं विरक्तिर्मानशून्यता।
आशाबन्धः समुत्कण्ठा नामगाने सदा रुचिः॥

वे इस श्लोकके प्रतिमूर्ति थे। जीवनमें क्षोभका कारण आनेपर भी वे क्षुब्ध नहीं होते थे। *"संख्यापूर्वक नामगान-नतिभिः कालावसानीकृतौ"*—इस श्लोकके अनुरूप वे सर्वदा ही भजनमें रत रहते थे।

अव्यर्थकालत्वं—वे भगवत्कथा व्यतीत अन्य बातोंमें लेशमात्र भी समय नष्ट नहीं करते थे।

विरक्ति—जागतिक वस्तुओंके प्रति विरक्ति उनके जीवनमें सर्वदा ही दिखाई देती थी।

नामगान सदा रुचि—वे कब विश्राम करते थे, कब जगते थे, इसे कोई समझ नहीं पाता था। जब भी उनका दर्शन करने जाओ, तो वे या तो हरिनाम करते हुए ही मिलते थे या ग्रन्थ लिखते हुए मिलते थे, या फिर हरिकथामें व्यस्त रहते थे। अन्तिम सयममें बाह्य व्यवहारका परित्यागकर *"निरन्तर सेवे कृष्ण अन्तर्मना हइया।"* एवं *"ब्रजे राधाकृष्ण सेवा मानसे करिबे"*—के अनुसार वे भगवद्भजनमें ही आविष्ट रहते थे। वे कहते थे—"मुझे लोग समझ नहीं पा रहे हैं, मैं राधारानी, गुरुदेव एवं महाप्रभुकी सेवामें इतना व्यस्त रहता हूँ कि मेरे पास लेशमात्र भी समय नहीं है।"

गुरु-वैष्णवोंके मुखारविन्दसे मैंने समय-समयपर जो श्रवण किया, उसीका चर्वित-चर्वणकी भाँति वर्णन किया। इसमें यदि कुछ त्रुटियाँ हों, तो सहृदय पाठकवृन्द मुझे क्षमा करेंगे।

श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजकी आविर्भाव-शतवार्षिकीपर पुष्पाञ्जलि

—श्रीमद्भक्तिवेदान्त मधुसूदन महाराज

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिमें नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज, श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज, श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम गोस्वामी महाराज क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव स्वरूप थे। ब्रह्मा स्वरूप ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज ब्रह्माजीके समान सृष्टि कार्य (हरिनाम-दीक्षादि प्रदान द्वारा सत्शिष्य ग्रहण कार्य), श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज विष्णुके समान पालन कार्य (भक्त्यनुकूल भावोंका पोषण), तथा श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम गोस्वामी महाराज शिवके समान संहार कार्य (भक्तिविरोधी भावोंका संहार) करते थे। श्रील वामन गोस्वामी महाराजजीकी एक विशेषता रही कि अपने इन गुरु-भाईयोंके कार्योंमें हस्तक्षेप नही करते थे, बल्कि सब समय अनुमोदन ही किया करते थे। तीनों महाराजोंका परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध लक्ष-लक्ष भक्तोंके लिये भक्तिके आदर्श एवं प्रेरणा का स्रोत है। जब भी इस दासने महाराजश्रीके कक्षमें उनके दर्शन किये तो सब समय उनका दक्षिण हस्त माला-झोलीमें तथा तर्जनी अँगुली माला-झोलीसे सीधी बाहर रहती थी और महाराज योगासन मुद्रामें विराजते थे। उनके प्रसन्न मुखारविन्द तथा मन्द-मुस्कानके द्वारा हजारों समस्याओं, शंकाओंका अपने आप समाधान हो जाता था—*"प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते। प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते॥"* चित्तके प्रसन्न हो जाने पर सभी दुख दूर हो जाते हैं और बुद्धि अपने आप अपने इष्टदेवमें स्थित हो जाती है। अतएव महाराजश्री एक अनुभव सम्पन्न परब्रह्ममें निष्णात महापुरुष थे एवं शब्दब्रह्ममें इतने निष्णात थे कि सभी उन्हें गौड़ीय-वैष्णव अभिधान (श्लोक अभिधान) कहते थे। किसी समय अपने श्रीलगुरुदेव श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीके प्रचारके अवसरपर 'श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु स्वयं भगवान् हैं', इस बातको लेकर विवाद होनेपर इनके गुरुदेवने जब प्रमाण श्लोक बोलनेके लिये कहा तब इन्होंने धारा प्रवाहसे चालीस-पचास श्लोकोंका उच्चारण कर सभीको स्तम्भित कर दिया।

महाराजश्री बहुत ही छोटी अवस्थामें मठमें आ गये थे। इन्होंने श्रील प्रभुपादसे हरिनाम ग्रहण किया और बादमें श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजसे दीक्षा ग्रहण की। इनके गुरुदेवका इन पर अपार स्नेह था। वे इनको बचपनमें श्लोक स्मरण करनेके लिये प्रति श्लोक एक टॉफी प्रदान करते जिससे उत्साहित होकर ये एक दिनमें बहुत सारे श्लोक याद कर लेते थे। इस प्रकार अपने गुरुदेवके शासन और स्नेहमें इनका गठन हुआ। एक बार छपाई कार्य करते समय प्रेसमें आकर इनकी अँगुली कट जानेपर इनके गुरुदेव श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज बहुत फूट-फूट कर रोने लगे, तब इन्होंने कहा—"आप इतने रो क्यों रहे हो, मैं तो जीवित हूँ।" इनके गुरुदेवके अप्रकट होनेपर इन्होंने विरह-व्यथित होकर कहा था कि-*"नाहं तवाड़िघ्र कमलं क्षणार्द्धमापि केशव। त्यक्तुं समुत्सहे नाथ स्वधाम नय मामपि॥"* हे केशव! मैं क्षणार्द्ध काल भी आपके चरणकमलोंका त्याग करनेमें समर्थ नही हूँ, अतएव हे नाथ (श्रील गुरुदेव) आप मुझको अपने साथ स्वधाममें ले चलिए।

महाराजश्रीका मेरे दीक्षा गुरुदेव नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिजीवन जनार्दन गोस्वामी महाराजजीके साथ अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध था। जब कभी महाराजश्रीका खड़गपुर आगमनका

समाचार मेरे गुरुदेवको ज्ञात होता तो वे उनकी सेवाके लिये तन-मन-वचनसे व्याकुल हो जाते। इससे महाराजश्रीको बहुत संकोच होता था। अतएवः प्रायः जब भी महाराजश्री खड़गपुर आते थे तो मेरे गुरुदेवको पूर्वमें कोई सूचना नही देते थे, अकस्मात् उपस्थित हो जाते थे। एक समय की घटना है कि मेरे गुरुदेव प्रातःकालमें नाट्य मन्दिरमें उपविष्ट होकर हरिनाम कर रहे थे। बीच-बीचमें 'जय राधे-श्रीराधे अमार वृषभानुनन्दिनी' आदि उच्चारण करते हुए भाव-विभोर हो रहे थे। उस समय उनको अपने शरीरकी सुध-बुध न थी, अचानक महाराजश्रीको अपने सम्मुख उपस्थित तथा दण्डवत् प्रणाम करते देखकर मेरे गुरुदेवने बहुत शीघ्रतापूर्वक उठकर महाराजश्रीको भूमिपर गिरनेसे पहले ही गलेसे लगा लिया। उस समय मेरे गुरुदेवका बहिर्वास अस्त-व्यस्त हो गया और ऐसा लगा मानों कटिसे बहिर्वास जमीन पर गिर जायेगा, किन्तु उस समय गुरुदेव एक हाथसे बहिर्वासको पकड़ते हुए दाहिने हाथसे महाराजश्रीको हृदयसे लगाकर ऐसे प्रतीत हो रहे थे कि मानो भूमिपर गिरते हुए प्रेमको गिरनेसे पहले ही हृदयसे लगा लिया। अर्थात् प्रेमस्वरूप महाराजश्रीका भूमिमें लोटना उन्हें पसन्द न आया। ऐसा परस्परका सम्बन्ध था महाराजश्री और मेरे गुरुदेवमें। जब कभी श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें परिक्रमाके अवसरपर हरिकथा परिवेशन करते समय यह दास अपने गुरुदेवका नामोच्चारण करते हुए दण्डवत प्रणाम करता था, तब महाराजश्री चकित होकर मेरे प्रति दृष्टिपात करते थे। इस कृपा-दृष्टिके मध्यमें मेरे दीक्षा-गुरुदेव एवं शिक्षा-गुरुदेव (श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज) की कृपा ही प्रमुख कारण हैं, क्योंकि शिष्यका परिचय उनके गुरुदेव ही होते हैं।

महाराजश्री जब कभी किसी विषय पर हरिकथा परिवेशन करते थे तो वे कथाकी गहराईयोंमें चले जाते थे तथा अनेक शास्त्रोंसे प्रमाण श्लोक उच्चारण करते थे। उनकी कथाएँ तत्त्व-सिद्धान्तसे परिपूर्ण होती थी। श्रोताजन उनकी कथाएँ बड़ी तन्मयताके साथ श्रवण करते थे तथा महाराजश्री भी भावावेशमें सुदीर्घकाल तक कथा-कीर्तन करते हुए कभी भी परिश्रमका अनुभव नही करते थे। किसी भी प्रकारके प्रश्नोंके उत्तर शास्त्रीय प्रमाणोंके आधार पर ही दिया करते थे। यह महाराजश्री की बड़ी विशेषता थी। सभी मठके वैष्णव और आचार्योंके साथ महाराजश्रीका मधुर सम्बन्ध था। महाराजश्री बड़े सरल और उदार स्वभावके थे, दैन्यताके तो वे मूर्तिमान स्वरूप थे, अतएव सभी वैष्णवोंके लिये परम आदर और श्रद्धाके पात्र थे। जब कभी महाराजश्रीके शिष्यगण इन्हें पत्र लिखकर कुछ शंका-समस्याओंके सम्बन्धमें समाधानकी प्रार्थना करते तो उनका उत्तर इतनी सुन्दर भावभाषा तथा शास्त्रयुक्तिसे परिपूर्ण होता कि उन सब पत्रोंका संग्रह करके एक शास्त्र ग्रन्थ बन गया जो बादमें उनके शिष्यों द्वारा प्रकाशित किया गया। इस प्रकार महाराजश्री अनेक गुणोंसे परिपूर्ण थे। ऐसे महाराजश्रीके गुण-समुद्रकी गहराइयोंमें न जाकर केवल तटपर अवस्थान करते हुए अपनी पवित्रताके लिये केवल उनके किञ्चित् गुणोंका स्पर्शमात्र कर रहा हूँ।

महाराजश्रीने सुदीघ्र कालतक श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिमें आचार्य पदपर प्रतिष्ठित होकर अपने गुरु-भाईयोंके प्रति, अपने शिष्योंके प्रति तथा गुरुवर्गोंके शिष्योंके प्रति जो अपार स्नेहका परिवर्षण किया है, वह युग-युगों तक अविस्मरणीय रहेगा। आज उनकी शतवार्षिकी-आविर्भाव तिथिपर अपनी भाव-पुष्पाञ्जलि अर्पित करते हुए उनके चरणोंमें शत-शत नमनकर यह दास उनकी अहैतुकी कृपा की याचना करता है।

ठाकुर वैष्णव-पद, अवनीर सुसम्पद।
सुन भाई, हइञा एक मन।
आश्रय लइया भजे, ता'रे कृष्ण नाहि त्यजे।
आर सब मरे अकारण।

—श्रीगुरु-वैष्णव कृपालेश-प्रार्थी
त्रिदण्डिभिक्षु श्रीभक्तिवेदान्त मधुसूदन

परमाराध्यतम श्रीगुरुपादपद्मकी शुभाविर्भाव-शतवर्षपूर्तिपर इस दीन सेवककी प्रणति-पुष्पाञ्जलि

—श्रीमद्भक्तिवेदान्त गोविन्द महाराज

श्रीबलदेवाभिन्न करुणाघनविग्रह, शब्दब्रह्म और परब्रह्ममें निष्णात, सर्वशास्त्र-विशारद, भक्तिसिद्धान्तोंमें सुनिपुण, सर्वसंशय-छेदनकारी, कृपालु, परदुःखकातर, जीवकल्याणरत, कृष्णैकशरण, वात्सल्यरसकी प्रतिमूर्ति, ब्रजरसरसिक, कृष्णकृपामूर्ति परमहंसकुलचूड़ामणि श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज हैं मेरे श्रीगुरुपादपद्म। उनके अनुगामी हम आज उनकी आविर्भाव-शतवार्षिकीके पालनमें व्रती हुए हैं। *'अप्राकृत वस्तु नहे प्राकृत गोचर'*—इस शास्त्रवाक्यके अनुसार उनकी बहुमुखी अप्राकृत गुणावलीका वर्णन करना मेरे समान प्राकृत बद्धजीवके लिए अत्यन्त कपटता होनेपर भी उनकी प्रेरणासे उनकी अपार अनन्त महिमाओंमें-से कुछका दिग्दर्शन करनेकी प्रचेष्टा कर रहा हूँ।

दर्शनसे पवित्र करना उनका प्रधान गुण था

श्रीकृष्णके नयन-मनोहर त्रिभङ्गभङ्गिम रूपका दर्शनकर जीव जिस प्रकार आकर्षित और मोहित हो जाते हैं, उसी प्रकार श्रील गुरुदेवके शान्त, सौम्य, सहास्य और स्वर्णिम उज्ज्वल दिव्यकान्तिका दर्शनकर साधारण लोग भी उनके प्रति आकर्षित हो जाते थे। उनके श्रीमुखसे निर्गत शास्त्रसिद्धान्त और युक्तिपूर्ण सरस स्पष्ट श्रुतिमधुर हरिकथाके श्रवणसे त्रिताप-दग्ध जीवोंने भवसागरसे पार होनेके लिए सद्गुरुके रूपमें उनके श्रीचरणोंका आश्रयकर अपने-अपने जीवनको सार्थक किया है। श्रील गुरुदेवके प्रेष्ठ सेवक श्रीसुन्दरानन्द ब्रह्मचारी प्रभुके आकस्मिक अप्रकट होनेके बाद उनके प्रत्यक्ष निर्देशसे मैं मठमें उनकी सेवामें नियुक्त हुआ था। उन्होंने अपनी प्रिय बृहत्-मृदङ्ग-सेवा (ग्रन्थ-प्रकाशन) का दायित्व मुझे दिया था।

श्रीगौड़ीय-पत्रिका और ग्रन्थ-प्रकाशन

श्रीमन्महाप्रभु और श्रीगुरुवर्गकी वाणीको सिरपर धारणकर उन्होंने विभिन्न गोस्वामी ग्रन्थोंका प्रकाशन किया था। श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति द्वारा प्रकाशित 'श्रीगौड़ीय-पत्रिका' उनका जीवन-स्वरूप थी। प्रचारकार्यमें किसी भी स्थानपर रहने पर भी, हजार व्यस्तताओंमें भी वे सदैव पत्रिका प्रकाशनके विषयमें सचेत रहते थे। वे कहते थे—'पत्रिका एक पारमार्थिक संस्थाका मुखपत्र है। श्रीरूप-रघुनाथकी वाणी, श्रीगुरुवर्गकी अनुभूतिमय लेखनी, समितिकी दैनिक अनुष्ठान-सूची, कार्यसमूह, प्रचारके विषयोंको लोगोंके सामने प्रस्तुत करनेका यह एक अतुलनीय माध्यम है।' हजार प्रतिकूल परिस्थितियाँ आनेपर भी ग्रन्थ और पत्रिका प्रकाशन किसी भी प्रकारसे बन्द नहीं होना चाहिए—यह उनका अलिखित निर्देश था।

अनेक लोगोंके द्वारा उन्हें कुछ नूतन ग्रन्थ (स्वलिखित) प्रकाशित करनेके लिए अनुरोध करने पर वे कहते थे—"मेरे द्वारा लिखनेकी अपेक्षा पूर्व-पूर्व गुरुवर्ग और गोस्वामियोंके जो समस्त ग्रन्थ और प्रबन्ध आदि हैं, गौड़ीय, साप्ताहिक गौड़ीय, सज्जनतोषणी, दैनिक नदीया प्रकाश, The Harmonist आदि पत्र-पत्रिकामें जो समस्त प्रबन्धादि प्रकाशित हुए हैं, वे पर्याप्त हैं। उनकी नित्य चर्चा करने पर हमारा परम कल्याण होगा।"

ग्रन्थ-प्रकाशन करते समय गुरुवर्ग और गोस्वामियों द्वारा लिखित तथ्योंमें किसी प्रकारका परिवर्तन नहीं चलेगा—यह उनका कठोर निर्देश था। गुरुके ऊपर गुरुगिरी या खुदाके ऊपर खुदागिरीको वे कदापि पसन्द नहीं करते थे, भीषण असन्तुष्ट होते थे। यदि कहीं पर संयोजनाकी आवश्यकता होती है, तो नीचे Footnote दे सकते हैं। यदि कोई प्रकाशक ग्रन्थके पाठमें परिवर्तन करते थे, तब वे अत्यन्त असन्तुष्ट और क्षुण्ण होते थे। गुरुवर्ग मुक्तपुरुष हैं, त्रिकालदर्शी हैं, सर्वशास्त्र विशारद हैं, उनकी भूल पकड़ना हमारे समान बद्धजीवोंके लिए अत्यन्त अन्याय और धृष्टता है—यही था उनका विचार।

सुदक्ष वक्ता

अनेक वक्ता विवेचनीय विषय पर वक्तृता आरम्भकर अन्तमें अन्य विषय पर चले जाते हैं, किन्तु मेरे गुरुदेव उन सबसे अलग थे। जिन्होंने उनकी वक्तृता, भागवत व्याख्याका श्रवण किया है, उन्होंने अवश्य ही अनुभव किया है कि उनकी वक्तृता अत्यन्त भावगम्भीर, धारावाहिक, छन्दपतन-रहित थी। पत्रिका प्रकाशनके समय श्रील गुरुदेवकी वक्तृता और भागवत-व्याख्याओंको प्रकाशित करनेके लिए मैंने जब सोचा, तब सोचा था वक्तृतादिको प्रकाशित करनेमें असुविधाओंका सामना करना पड़ेगा। परन्तु प्रकाश करते समय देखा कि उनकी वक्तृतामें किसी प्रकारका भाषा-परिवर्तन, परिवर्धन न कर जैसे-के-तैसे प्रकाशित किया जाता। पूज्यपाद श्रील नारायण गोस्वामी महाराज बोलते थे—"तुम्हारे गुरुदेवकी वक्तृता और लेखनी समान है, धारावाहिक है, किसी प्रकार Editing की आवश्यकता नहीं है। परन्तु मेरा लेख या वक्तृता प्रकाशित करनेसे पहले तुम्हारे गुरुदेवको देकर अवश्य ही संशोधन करा लेना, क्योंकि मेरा वक्तव्य श्रील वामन महाराजके समान धारावाहिक नहीं है, जानना।" किसी-किसी धर्मसभामें उनकी वक्तृताके लिए निर्दिष्ट समय रहने पर वे निर्धारित समयके भीतर ही सार-संक्षेपमें अपना वक्तव्य रखते थे। इससे उनके अगाध पाण्डित्य-प्रतिभाका परिचय प्राप्त होता है।

प्रचारकार्यमें निरलसता

सागरतटसे लेकर हिमालय तक था उनका प्रचारक्षेत्र। बहुत क्लेश स्वीकार करते हुए उन्होंने श्रीमन्महाप्रभुकी वाणीका प्रचार किया था। प्रचारकार्यमें उन्हें किसी प्रकारकी क्लान्ति नहीं होती थी। एक गृहस्थ उदार धनी भक्तके द्वारा उनको शारीरिक अस्वस्थता और अधिक आयुके कारण किसी मठमें बैठकर ग्रन्थादि प्रकाश करनेके लिए कहने पर उन्होंने उसका तत्काल प्रत्याख्यान किया एवं उत्तर दिया—"जिस स्थानपर नमक लाते-लाते पानीभात गायब हो जाता है, वहाँ बैठे रहने पर मठ-मन्दिरोंका सेवाकार्य, श्रीविग्रहसेवा आदि चलेगी कैसे? प्रचारमें न जानेपर मठ कैसे चलेगा?" एक समय ऐसी अवस्था थी। यद्यपि वे हृदयवान् दाता उनका समस्त व्यय वहन करनेको प्रस्तुत थे, फिर भी *'अन्नचिन्ता चमत्कारा'* अर्थात् जहाँ एक मुट्ठी अन्नके लिए चिन्ता करनी पड़ती है, वहाँ बैठे रहने पर कैसे चलेगा, उन्होंने यह सब बताया था। अपनी इस उक्तिके द्वारा वे यह समझाना चाहते थे कि वे श्रील प्रभुपादकी वाणीके धारक और वाहक थे, उनका जीवन प्रचारसर्वस्व था। वे प्रचार न कर, कदापि बैठे नहीं रह सकते थे। *'प्राण आछे तार, सेहेतु प्रचार, प्रतिष्ठाशाहीन कृष्णगाथा सब।'* जबतक शरीरमें प्राण हैं, तबतक हरिकथाका प्रचार करना उनका संकल्प था।

आश्रितजनोंकी कल्याणचिन्तामें सदैव रत

'आश्रय लइया भजे, तारे कृष्ण नाहि त्यजे।' श्रील गुरुदेव अपने आश्रितजनोंके कल्याणकी कामनामें अहर्निश चेष्टापरायण थे। किस प्रकार मायाबद्ध जीवको इस मायिक संसारसे उद्धारकर भगवान्‌की सेवामें नियुक्त किया जाएगा, इस चिन्तामें वे सदैव चिन्तित रहते थे। हमारे किसी गुरुभ्राता द्वारा मठ-सञ्चालक आदिका निर्देश न मानने पर अथवा मठकी नियम-शृंखला

ठीकसे पालन न करने पर हम जब उनको बताते, तो वे बोलते—"तुमलोग पूज्यपाद नारायण महाराजको बताओ।" हम कहते—"आपके एक बार कहनेसे जो कार्य हो जाएगा, वह अन्यके लिए सम्भव नहीं है। श्रील महाराजकी बात भी वे लोग नहीं मानेंगे।" इसके उत्तरमें उन्होंने हमें यही शिक्षा दी है कि "मायामें कवलित बहिर्मुख जीव हरिभजन नहीं करना चाहता। किसी अज्ञात सुकृतिके बलसे यदि कोई हरिभजन करनेके लिए मठमें आकर वैष्णवोंका आदेश-निर्देश उल्लंघन करता है, तब वैष्णव-अपराधके कारण उसके साधन-भजनमें अनर्थ उत्पन्न होते हैं। पुनः मैं (गुरुदेव होकर) यदि उसे आदेश या निर्देश देता हूँ एवं वह उसकी अवमानना करता है, तब गुरुके आदेशके उल्लंघन जनित अपराधसे उसे अनन्तकाल तक नरक भोग करना होगा। तुमलोग अवश्य ही उसका अमङ्गल नहीं चाह सकते?" गौड़ीयजनोंका आनुगत्यमय धर्म है। सदैव उन्होंने हमें गुरुवर्गके आनुगत्यमें हरिभजन और सेवाकार्य करनेके लिए शिक्षा दी है। उन्होंने अनेक बार दृढ़कण्ठसे कहा है—"मेरा अनुगत कोई यदि इस मायिक संसारमें पड़ जाता है, उसके उद्धारके लिए मैं बार-बार आऊँगा।" उनकी यह भविष्यवाणी हमारे जीवनका अवलम्बन है।

अनधिकार-चर्चाके घोर विरोधी

'परनिन्दा' और 'परचर्चा' दोनों शब्दोंको श्रील गुरु-महाराजके शब्दकोषमें कभी देखा नहीं गया। वे कदापि अनधिकार चर्चाको प्रश्रय नहीं देते थे एवं अपने अनुगतजनोंको भी सदैव अनधिकार चर्चासे दूर रहनेके लिए सावधान करते थे। वे सर्वदा कहते थे—"अनधिकार चर्चा करनेवालेका वास्तव कल्याण बहुत दूर है।"

एक दिन श्रीविनोदविहारी गौड़ीय मठमें हमारे एक गुरुभ्राता श्रील गौरकिशोर दास बाबाजी महाराज द्वारा कीर्तित श्रील रघुनाथ दास गोस्वामीके उद्देश्यसे रचित गीत 'कोथाय गो प्रेममयी राधे राधे! राधे राधे गो, जय राधे राधे!' का कीर्तन कर रहे थे। तब श्रील गुरुदेवने अत्यन्त असन्तुष्ट होकर उनको कीर्तन बन्द करनेके लिए कहा। उन्होंने कहा—"पदकर्ताने जिस गम्भीर विरह-वेदनासे उसे लिखा है, क्या तुमने उसे अनुभव करनेकी चेष्टा की है? मिलन न होनेपर विरह या विप्रलम्भकी सम्भावना ही कहाँ है? क्या तुममें सम्बन्ध-ज्ञानका उदय हुआ है? इस कीर्तनको करनेकी योग्यता क्या तुममें है? अधिकारी न होकर इन सभीका कीर्तन नहीं किया जाता। श्रील प्रभुपादका 'कीर्तन करनेका अधिकारी कौन है?' प्रबन्ध पाठ करनेसे वह जान सकते हैं। कीर्तन करनेका अधिकार अर्जन करना होता है, अन्यथा अनधिकार दोषसे दोषी होना पड़ता है।" उन्होंने श्रील वंशीवदन दास बाबाजी महाराजकी उक्ति 'तुमलोग तो केवल गाकर चले गये, जिसका [हृदय] फटता है, वह जानता है। तुम्हारा उससे क्या लेना-देना?" का उदाहरण दिया था।

स्वे स्वेऽधिकारे या निष्ठा स गुणः परिकीर्त्तितः।
विपर्ययस्तु दोषः स्यादुभयोरेष निश्चयः॥

जिस व्यक्तिका जिसमें अधिकार है, वे वही करेंगे। अपने-अपने अधिकारमें रहना ही गुण है एवं उससे विपरीत कर्म दोष है। यही गुण और दोषका निर्णायक है।

वास्तव शिष्यका परिचय

एक बार श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिकी वार्षिक साधारण सभामें मठवासी-सेवकों द्वारा समिति-सञ्चालक पक्षके आदेश-निर्देशों—विशेषतः आवश्यकतानुसार विभिन्न शाखामठोंमें जाकर सेवाकार्योंमें नियुक्त होनेमें अनिच्छा प्रकाश या अस्वीकार करनेपर समिति-सञ्चालक-पक्षने श्रील गुरु-महाराजसे उन लोगोंको सीधा आदेश करनेको कहा। यह सुनकर गुरु-महाराजने सञ्चालक-पक्षसे कहा—"आप लोगोंका आदेश उल्लंघन करके ये वैष्णवापराध कर रहे हैं, अब मेरे द्वारा आदेश दिलवाकर आप इनको गुरुकी आज्ञाके लंघनरूप गुरु-अपराधी कराना चाहते हैं। इसके अतिरिक्त

आप अपने विचारसे जिनको मेरा शिष्य मानते हैं, उनको मैं अपना शिष्य नहीं मानता हूँ। मेरे केवल दो-तीन ही शिष्य हैं।" तब पूज्यपाद नारायण गोस्वामी महाराजने आश्चर्यचकित होकर उनसे कहा—"यह क्या? यहाँ उपस्थित अधिकांश लोग तो आपके शिष्य हैं।" प्रत्युत्तरमें उन्होंने कहा—"शिष्य किसे कहते हैं? *'गुरोराज्ञाह्यविचारणयीया'*—शास्त्रवाक्यके अनुसार जो गुरुदेवके आदेश-निर्देशोंका बिना विचार किये पालन करते हैं, उनका शासन स्वीकार करते हैं, वे ही वास्तव शिष्य हैं। यहाँपर जो सब हैं, वे मेरे आदेश-निर्देशोंका पालन करनेके लिए प्रस्तुत हैं या नहीं, पूछकर देखिए। केवल दो-तीन हैं, जो बिना कुछ बोले मेरे आदेशका पालन करनेके लिए प्रस्तुत हैं। इसलिए मैंने यही बात कही।"

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति ट्रॅस्टकी स्थापना

परमाराध्यतम श्रील गुरु-महाराज और पूज्यपाद श्रील नारायण गोस्वामी महाराज कोलकाता स्थित श्रीविनोदविहारी गौड़ीय मठमें अपने भजन-कुटीरमें आपसमें वार्त्तालाप कर रहे थे। तब श्रील नारायण गोस्वामी महाराजने कहा—"मेरी इच्छा है कि मैं आपसे पहले इस संसारका त्यागकर चला जाऊँ।" यह सुनकर स्मितहास्य करते हुए श्रील गुरु-महाराजने कहा—"ऐसा कदापि नहीं होगा। पहले मैं चला जाऊँगा। इसके बाद उत्पन्न प्रतिकूल परिस्थितिका सामना कर सेवकोंके अनुकूल निश्चिन्त भजनकी व्यवस्था कर आपको जाना होगा।"

एक दिन भाराक्रान्त हृदयसे उन्होंने कहा—"वर्तमान जिस प्रकार परिस्थिति है, उसमें मेरे लिए मठमें रहना असम्भव है एवं मेरी बात जो सुनते हैं, वे लोग भी मठमें नहीं रह सकेंगे।"

उनकी अनुपस्थितिमें समितिमें विशृङ्खला होगी, उसका उन्होंने पूर्वानुमान कर लिया था। इसकी चिन्ता करते हुए ईस्वी सन् १९९५ में उन्होंने 'श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति ट्रॅस्ट' नामसे एक पृथक् संस्थाका गठन किया था। उनका दृष्टिकोण सठीक था, परवर्ती समयकी घटनाओंको लक्ष्य करने पर यह सहज ही पता लग जाता है।

श्रीगुरुपादपद्मका अन्तर्यामित्व एवं प्रत्यक्ष निर्देश

श्रीसमितिमें मतभेद प्रारम्भ होनेपर अधिकारियोंने तब पूज्यपाद श्रीमद्भक्तिवेदान्त भारती महाराजको श्रीविनोदविहारी गौड़ीय मठका मठाध्यक्ष करके भेजा था मेरे कार्यों पर दृष्टि रखनेके लिए। कारण, तब मैं और पूज्यपाद जनार्दन महाराज गुरु-महाराजकी सेवाके दायित्वमें थे। जिस दिन गुरु-महाराजको कोलकातासे वैद्यवाटी मठमें स्थानान्तरित किया गया, उसी दिन उन्होंने मुझे कहा—"तू क्यों कुछ नहीं बोल रहा?" मैंने बताया—"हम परिस्थितिके शिकार हो गये हैं, अभी कुछ नहीं कहा जा सकता।" यह सुनकर वे मेरी ओर अहैतुकी कृपादृष्टि डालते हुए सम्पूर्ण गम्भीर हो गये। पूज्यपाद भारती महाराजने यह लक्ष्य किया था।

इसके कुछ मास बाद गुरु-महाराजकी शारीरिक अस्वस्थताके कारण कोलकाताके Wockhardt Hospital में भर्ती करनेके लिए नवनियुक्त सेवकगण उनको पुनः श्रीविनोदविहारी गौड़ीय मठमें ले आये। उनके दर्शनके लिए मठमें तब बहुत भक्त उपस्थित होनेके कारण मैं बाहरसे उनको दण्डवत् प्रणाम निवेदन करते हुए सेवाकार्य करनेके लिए कार्यालयमें चला गया। अपराह्णके समय जब उनके भजन कुटीरमें उनको दण्डवत् प्रणाम करनेके लिए गया, तब पूज्यपाद भारती महाराज भी मेरा अनुसरण करते हुए पीछे-पीछे वहाँ पहुँच गये। मुझे देखकर श्रील गुरु-महाराजने पूछा—"मैं जब आया, तू कहाँ था? तब तो तुझे नहीं देखा।" मैंने कहा—"बहुत भीड़ होनेके कारण बाहरसे प्रणामकर चला गया।" तब उन्होंने मुझे कहा—"सब लोग जब अपना-अपना अधिकार समझनेके लिए व्यस्त हैं, तब तू भी अपना भाग समझ ले।"

श्रीगुरु-महाराजके श्रीमुखसे इस प्रकार साक्षात् निर्देश सुनकर पूज्यपाद भारती महाराजने बादमें मुझे पूछा—"सत्य, गुरुदेवने क्या कहा, कुछ समझ सके क्या?" मैंने कहा—"जो समझना था, मैं समझ गया, आप अपने अनुसार समझें।"

अगले दिन गुरु-महाराजको अस्पतालमें भर्ती करनेके बाद नवनियुक्त सेवकगण उनकी सेवाके लिए उनके साथ थे। प्रतिदिन मठसे गुरु-महाराजके लिए प्रसाद जाता था। एक दिन पूज्यपाद भारती महाराजने मुझे गुरु-महाराजके दर्शनके लिए जानेके लिए कहा। मैंने कहा—"अब मेरा वहाँ जाना उचित नहीं है, क्योंकि अधिकारीगणमें-से कोई भी नहीं चाहते कि मैं वहाँ जाऊँ।" परन्तु उनके बार-बार कहने पर मैं उनके साथ अस्पताल गया। गुरु-महाराजके कक्षमें तब सेवकके रूपमें श्रीगोकुलानन्द ब्रह्मचारी, श्रीउत्तमकृष्ण ब्रह्मचारी और श्रीप्रेमप्रदीप ब्रह्मचारी थे। हम बाहर दर्शक-आसन पर बैठे रहे। वे लोग भारती महाराजसे प्रसाद लेकर गुरु-महाराजको प्रसाद पानेके लिए बुलाने लगे। किन्तु गुरु-महाराजने बता दिया कि वे आज प्रसाद नहीं पायेंगे। वे तीनों बहुत चेष्टा करने पर भी सफल नहीं हुए। तब उत्तमकृष्ण प्रभुने गोकुलानन्द प्रभुसे कहा—"सत्य प्रभु आये हैं, उनको बुलाओ। यदि वे गुरु-महाराजको मना सकें, एक बार अन्तिम चेष्टा करके देखा जाय।" तब गोकुलानन्द प्रभुने भारती महाराजसे कहा और बादमें उनके निर्देशके अनुसार इच्छा न रहने पर भी उन्होंने मुझे अन्दर बुलाया।

मैंने भीतर प्रवेशकर देखा कि गुरु-महाराज स्वभावसुलभ ढङ्गसे दीवारकी ओर मुखकर सोये हुए हैं। मैं पासमें जाकर उनके कानमें कहने लगा—"गुरु-महाराज मैं आया हूँ, आप शीघ्र ही प्रसाद पा लीजिए।" मेरी आवाज सुनते ही उन्होंने कहा—"तू आया है, मुझे उठा।" तब पूर्व अभ्यासके अनुसार मैंने उनको मेरा गला पकड़नेके लिए कहा, उन्होंने तत्काल ऐसा किया। मैंने उनको उठाकर स्वाभाविक रूपसे उनके श्रीमुखमें प्रसाद दिया, उन्होंने अत्यन्त तृप्तिपूर्वक उसे ग्रहण किया और पूछा—"तू मेरे पास क्यों नहीं रहता? इन लोगोंको तो नहीं रहना चाहिए, इत्यादि।" पूज्यपाद भारती महाराज और तीनों सेवक यह देखकर आश्चर्यचकित हो गये। तब वे लोग आपसमें चर्चा करने लगे—"सत्यप्रभु आये हैं, यह तो हममेंसे किसीने गुरु-महाराजको नहीं बताया, वे कैसे जान गये?"

गुरु-महाराज अन्तर्यामी हैं—यह उन्होंने हमें समझा दिया। उसी दिन पूज्यपाद भारती महाराजने मुझे कहा—"भाई, मैंने भूल की है। गुरु-महाराजके साथ तुम्हारी इस प्रकार अन्तरङ्गता है, यह मैंने आज अपनी आँखोंसे दर्शन किया। आजसे मैं और उन लोगोंके सङ्ग नहीं रहूँगा।" यह कहकर वे मठका दायित्त्व अन्यको देकर मेरे साथ चले आये अर्थात् उन्होंने पूज्यपाद श्रील नारायण गोस्वामी महाराजका आनुगत्य स्वीकार किया।

भावदशा या अन्तर्दशा

श्रीगुरुदेव भगवान्‌के निजजन हैं, आश्रय-विग्रह हैं। वे श्रीमती राधारानीकी कायव्यूह सखी रूप मञ्जरी हैं। वे सदैव अतिमर्त्य जगत्‌में विराजमान रहते हैं, इसे अपनी आँखोंसे दर्शन करनेका सौभाग्य उन्होंने हमें प्रदान किया था।

एक दिन मध्याह्नके समय श्रीविग्रहकी भोग आरतीके बाद गुरु-महाराजके लिए प्रसाद लेकर सेवकप्रभुने उनकी भजनकुटीमें प्रवेश किया। तब वे विश्राम कर रहे थे। "प्रसाद आ गया है, आप प्रसादसेवा करें"—यह बात सुनते ही वे भावविभोर हो गये। हम उनकी किसी शारीरिक अस्वस्थताके विषयमें सोचने लगे। कोई बात न बोलकर वे अन्तर्दशामें अपने सेवाराज्यमें विराजमान रहे। उनको विभिन्न प्रकारसे जगानेकी चेष्टा करके हम व्यर्थ हो गये। पूज्यपाद जनार्दन महाराजके निर्देशसे ब्रह्मचारियोंने कीर्तन करना प्रारम्भ कर दिया। श्रीमन्महाप्रभुके

समान उनके श्रीअङ्गोंमें अष्टसात्त्विक विकारोंके लक्षण स्पष्ट दिखायी देने लगे। प्राय ४५ मिनटके बाद वे धीरे-धीरे बाह्यदशामें लौट आये। तब उनको कोई शारीरिक कष्ट हो रहा है या नहीं—हमारे द्वारा यह प्रश्न करने पर उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया।

अगले दिन पूज्यपाद जनार्दन महाराजके निर्देशसे मन्दिरमें श्रीविग्रहके भोगके बाद गुरु-महाराजके लिए सेवकप्रभु प्रसाद लेकर आये। प्रसाद देखते ही वे पूर्व दिनके समान उसी प्रकार अन्तर्दशामें प्रविष्ट हो गये। उनके श्रीअङ्गोंमें किसी प्रकार प्राणोंका स्पन्दन न देखकर उपस्थित सभी क्रन्दन करने लगे एवं 'राधिका चरण रेणु', 'राधाकुण्डतट कुञ्जकुटीर', 'रमणी-शिरोमणि वृषभानुनन्दिनी', 'श्रीराधाकृष्ण पदकमले मन' आदि श्रीराधा-निष्ठा विषयक कीर्तन और महामन्त्रका कीर्तन करने लगे। प्रायः एक घण्टेके बाद वे बाह्यदशाको प्राप्त हुए। तब पूज्यपाद जनार्दन महाराज और मेरे परिप्रश्नके उत्तरमें उन्होंने बताया कि श्रीराधाकुण्डमें श्रीराधाकृष्णकी मध्याह्न-लीलामें योगदान करनेके लिए वे वहाँ गये थे। जनार्दन महाराजने कहा—"हमारे लिए थोड़ा प्रसाद ला सकते थे।" श्रील गुरुदेवने कहा—"वहाँ कोई किसीको प्रसाद नहीं देता है, लूटकर छीनकर खाना पड़ता है। वहाँ सभी कम आयुकी किशोर-किशोरी हैं।"

जनार्दन महाराजने कहा—आप तो वृद्ध हैं, तब किस प्रकार उनके साथ छीनाझपटी करके प्रसाद पाया?

इसके उत्तरमें उन्होंने कहा—तुमलोग मुझे वृद्ध देख रहे हो। परन्तु मैं वृद्ध नहीं हूँ।

इस लीलासे उन्होंने समझा दिया कि वे द्वितीय स्वरूप (व्रजमें श्रीरागमञ्जरीके रूप) में श्रीराधाकुण्डमें श्रीश्रीराधाकृष्णकी नित्यलीलामें प्रतिदिन भाग लेते हैं। इस प्रकार कुछ दिनों तक लगातार वे श्रीमन्महाप्रभुके समान अधिकांश समय अन्तर्दशामें कृष्णान्वेषण लीलामें निमज्जित रहे एवं कभी-कभी बाह्यरूपमें अपनी परामाराध्या 'ठाकुरानी' को पुकारते, तो कभी **'कृष्ण रे, बाप रे, कोथा मोर हरि। कोन दिके गेला मोर प्राण करि चुरि॥'** बोलते-बोलते शय्यापर छटपट करते थे।

अन्तिम समयमें वे बाह्य व्यवहार छोड़कर **'व्रजे राधाकृष्ण सेवा मानसे करिबे'** एवं **'निरन्तर सेवे कृष्ण अन्तर्मना हइया'** सर्वदा अन्तर भगवद्भजनमें आविष्ट रहते थे। वे कहते थे—"मुझे कोई नहीं समझ पा रहा है। मैं राधारानी, गुरुदेव एवं महाप्रभुकी सेवामें इतना व्यस्त रहता हूँ कि मुझे तनिक भी समय नहीं है।"

इसके कुछ दिनों बाद एक दिन प्रातःकाल नाश्ता करनेके बाद वे थोड़ा विश्राम कर रहे थे। कुछ समयके बाद जनार्दन महाराजने उनके श्रीअङ्ग पर हाथ लगाकर देखा कि उनके शरीरके वस्त्र भीग गये थे एवं अधिक ज्वर आ गया था। उन्होंने गुरु-महाराजको पूछा—"थोड़ी देर पहले तो आप ठीक थे, अचानक इतना ज्वर कैसे आ गया?" उन्होंने कहा—"मैं मायापुर गया था। वहाँ आज खूब वर्षा हो रही है। वहाँसे लौटते समय जब मैं नावमें था, तब बारिशमें भीगकर मुझे ज्वर आ गया।" हम आश्चर्यचकित होकर बोले—"आप तो कोलकाताके हालदार बागान मठमें हैं। मायापुर कब गये?" उन्होंने कहा—"तुमलोग वह सब समझ नहीं सकते।" तब जनार्दन महाराजने पूछा—"आपके साथ और कौन-कौन थे?" उन्होंने कहा—"मेरे साथ मेरे गुरुदेव श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज, श्रील सरस्वती प्रभुपाद और श्रील नरहरि प्रभु थे।" "आपने कौन कौन-से मठोंका दर्शन किया?" उन्होंने कहा—"योगपीठ, श्रीचैतन्य मठ, चाँदकाजीकी समाधि, श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ आदिका दर्शन किया।" 'कहींपर प्रसाद नहीं पाया?' उन्होंने कहा—"श्रीचैतन्य गौड़ीय मठके पुजारीने हमें प्रसाद दिया था।" इसके बाद हमने इस बातकी सत्यताको प्रतिपादित करनेके लिए नवद्वीपमें फोन किया, तो पूज्यपाद परिव्राजक महाराजने बताया कि 'हाँ, आज सुबह ९ बजेसे प्रायः ११ बजे तक यहाँ मूसलधार वर्षा हुई है।'

उनकी ऐसी लीला द्वारा वे एक स्वरूपमें हमारे निकट विराजित थे एवं अन्य दो स्वरूपोंमें वे व्रजलीला और नवद्वीप लीलामें प्रकटित थे, इसे उन्होंने हमारे समान मायाबद्ध जीवोंके निकट प्रकाशित किया। सद्गुरु, महाभागवतगण एक ही समय दो लीला करनेमें समर्थ हैं, इसे हम गोस्वामियोंके चरित्रमें भी दर्शन कर सकते हैं। मैं नहीं जानता कि कौन-सी सुकृतिके फलस्वरूप मुझे उनकी इस अन्तर्दशा, भावदशाका दर्शन करनेका अवसर-सौभाग्य प्राप्त हुआ था। 'दाँत रहते दाँतकी मर्यादा समझ नहीं आती।' आज साधन-भजनमें मेरा अनाग्रह देखकर वे अभिमानवश मेरा परित्याग कर चले गये, अब मैं हृदयमें उनका अभाव अनुभव कर रहा हूँ।

श्रीराधा-ठाकुरानीका पक्षपातित्व

श्रील भक्तिविनोद ठाकुरकी भाषामें—

वृषभानुसुता, चरण-सेवने,
हइब ये पाल्यदासी।
श्रीराधार सुख, सतत साधने,
रहिब आमि प्रयासी॥

श्रीराधार सुखे, कृष्णेर जे सुख,
जानिब मनेते आमि।
राधापद छाड़ि', श्रीकृष्ण-सङ्गमे,
कभु ना हइब कामी॥

सखीगण मम, परम सुहृत्,
युगल-प्रेमेर गुरु।
तदनुगा ह'ये, सेबिब राधार
चरण-कलपतरु॥

राधापक्ष छाड़ि', ये-जन से-जन,
ये भावे से भावे थाके।
आमि त' राधिका- पक्षपाती सदा,
कभु नाहि हेरि ताँ'के॥

श्रील गुरुदेव इस वाणीके मूर्त्तिमान् प्रतीक थे। वे हरिकथा बोलते समय सदैव राधारानीका पक्ष लेते थे। वे राधारानीको 'ठाकुरानी' सम्बोधित करते थे, कदापि 'राधारानी' शब्द उच्चारण नहीं करते। वे कहते थे—'गौड़ीयगण राधारानीके पक्षके लोग हैं।'

अन्तिम उपदेश

तत्पश्चात् श्रील गुरु-महाराजकी विशेष अस्वस्थतावशतः चिकित्साके लिए उनको कोलकाताके Peerless Hospital में भर्ती कराया गया था। जिस दिन भर्ती कराया गया था, उसी दिन रातको मैं अकेले उनकी शय्याके पास एक कुर्सी पर बैठा था। रातको उन्होंने मुझे कहा—**"मैं अकर्मण्य हो गया हूँ। मुझसे और विशेष कुछ नहीं होगा। तुमलोग पूज्यपाद नारायण महाराजके आनुगत्यमें रहकर मठ-मन्दिरके सेवाकार्य और साधन-भजन करना।"**

अन्तर्दशामें विप्रलम्भ-भावमें विभावित रहते समय एक दिन उन्होंने हमें बताया था—

श्याममेव परं रूपं पुरी मधुपुरी वरा।
वयः कैशोरकं ध्येयमाद्य एव परो रसः॥

श्यामरूप (कृष्णरूप) ही सर्वश्रेष्ठ रूप है, मधुपुरी (मथुरा) ही श्रेष्ठ पुरी है, कैशोर-वयस ही ध्येय है एवं आद्य अर्थात् शृङ्गार रस ही श्रेष्ठ रस है। यही गौड़ीयजनोंका मूल प्रचारका विषय है। तुमलोग जगत्में प्रचुर परिमाणमें इस कथाका ही प्रचार करो, तब मैं प्रसन्न होऊँगा।

आज इस शुभ-शतवार्षिकी-आविर्भाव-पूर्तिके अवसर पर उनके श्रीचरणकमलोंमें मेरी यही एकमात्र प्रार्थना है—अलक्षित रूपमें रहकर भी वे मुझपर प्रचुर आशीर्वाद करें, जिससे उनकी विचारधारा, उनके आदेश-निर्देश-उपदेशोंका सब प्रकारसे पालन करते हुए मैं इस जगत्में उनकी महिमा प्रकृष्ट रूपमें प्रतिस्थापित कर सकूँ, एवं उनके उपास्य श्रीश्रीगौर-राधा-विनोदविहारीजीकी महिमा जगत्में प्रचार कर सकूँ।

आन्तरिक-कृतज्ञता

—श्रीमद्भक्तिवेदान्त सिद्धान्ती महाराज

मैं सर्वप्रथम अपने परमाराध्य शिक्षागुरुपादपद्म नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजके अभय श्रीचरणकमलोंमें असंख्य दण्डवत प्रणाम ज्ञापन करता हूँ, जिनकी दृढ़ अभिलाषासे विश्वके अनेकानेक सौभाग्यवान् मनुष्योंको श्रीचैतन्य महाप्रभु द्वारा आचरित और प्रचारित कृष्णभावनामृतको जानने, समझने और उसमें निमज्जित होनेका स्वर्ण अवसर प्राप्त हुआ है। वर्ष १९९२ई. में, दिल्लीमें मेरा भी उन्हींके आश्रितजनोंके माध्यमसे सर्वप्रथम कृष्णभावनामृतसे सम्पर्क हुआ था।

द्वितीयतः मैं अपने उन परमाराध्य शिक्षागुरुपादपद्म नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजके अभय श्रीचरणकमलोंमें असंख्य दण्डवत प्रणाम ज्ञापन करता हूँ, जिनकी विशेष करुणा एवं प्रयाससे विश्वके अनेकानेक सौभाग्यवान् व्यक्तियोंको श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजके गौरवाणी प्रचारके वास्तविक वैशिष्ट्य, उद्देश्य तथा उनकी अन्तर्निहित भावनाओंको सुनने तथा समझनेका सुअवसर प्राप्त हुआ। जिनके विपुल प्रचार एवं अथक प्रयाससे सम्पूर्ण विश्वके भक्तोंको गौड़ीय मठके वास्तविक गौरव, आचार-विचार, गरिमा एवं उसकी विभिन्न शाखाओं-प्रशाखाओंके साथ-साथ उसके अनेकानेक विशिष्ट महाभागवत-आचार्योंसे सङ्ग करने, उनकी सेवा करने तथा उनके वैशिष्ट्योंको ठीकसे समझनेमें अत्यधिक सहायता प्राप्त हुई। वर्ष १९९४ई. में श्रील गुरुदेवसे भेंट होनेसे पूर्व भी मुझे तथा प्रायः इस्कॉनके सभी भक्तोंको कभी-कभी गौड़ीय मठका नाम तो सुनायी पड़ता था, किन्तु वह हीनता, तुच्छता, घृणाकी भावनासे मिश्रित होता था।

श्रील गुरुदेव—श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजके प्रचार-सेवा कार्यके माध्यमसे ही प्रायः अधिकांश विश्ववासी गौड़ीय भक्तोंको ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज तथा ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम गोस्वामी महाराजके नाम, उनके वैशिष्ट्य, उनकी अद्भुत गुरु-निष्ठा तथा उनकी भजन-प्रणालीके साथ परिचय प्रारम्भ हुआ। श्रील गुरुदेवके मुःखनिसृत वचनोंमें ही मैंने श्रवण किया कि श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज और श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम गोस्वामी महाराज उनके शिक्षागुरु हैं। इन्हीं दोनों महापुरुषोंके माध्यमसे ही उन्हें अपने परमाराध्य गुरुपादपद्म ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी सुष्ठुरूपसे सेवा करनेकी शिक्षा प्राप्त हुई। इन्हीं दोनों महापुरुषोंके प्रयाससे ही उन्होंने कीर्त्तन करना, प्रचार करना, लेख लिखना इत्यादि सबकुछ सीखा। श्रील गुरुदेवके मुःखसे पुनः पुनः श्रवण किया—"श्रील वामन महाराज मेरे रहने, खाने-पीने, आने-जाने शारीरिक सुख-सुविधा तथा औषधि इत्यादि सबकुछ की व्यवस्था करते थे। श्रील वामन महाराज हमारे गुरुदेवके अन्तरङ्ग परिकर थे, एकनिष्ठ सेवक थे, मुझपर उनकी बहुत कृपा है, मैं उनका चिरऋणी रहूँगा। श्रील वामन महाराज अत्यधिक सहिष्णु और गम्भीर थे। वे इतने अधिक सेवा-निष्ठ थे कि १०४° ज्वर होनेपर भी सेवा करनेसे पीछे नहीं हटे थे। गुरुदेव श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजका उनके प्रति इतना स्वाभाविक स्नेह और कृपा थी कि श्रील वामन महाराजकी अङ्गुलीके हस्त-पद-चालित प्रेसमें आनेकी बात सुनकर वे बालकोंकी भाँति रोने लगे, स्वयं उन्हें चिकित्सा हेतु कोलकत्ता लेकर गये। किसी अन्य समय उनकी चिकित्सा हेतु उन्हें शिमला लेकर गये। श्रील वामन महाराजकी स्मरण शक्ति अद्भुत थी। वे अप्राकृत लेखक थे, अहङ्कार शून्य थे।

कभी भी अपनी प्रशंसा नहीं करते थे तथा अन्योंके करनेपर भी लज्जा अनुभव करते थे। किसी भी स्थान पर आर्थिक सेवा गुप्तरूपमें ही करते थे, किसीको कभी बतलाते नहीं थे, आचार्योचित गोपनीयता रखनेमें सुदक्ष थे। वैष्णवोचित वैराग्यकी मूर्त्ति थे तथा वैष्णव सिद्धान्तोंमें परिपूर्ण थे। हमारी भूल होने पर भी अनुकूल समय देखकर अत्यधिक शालीनताके साथ हमारा संशोधन करते थे। गुरुभ्राताओं विशेषतः मेरे रहने पर स्वयं कथा नहीं बोलकर सदैव हमें ही हरिकथा कहनेका सुयोग प्रदान करते थे। अमानी-मानद धर्ममें सुप्रतिष्ठित थे। उनमें मठवासी भक्तों विशेषतः शिष्योंको अत्यधिक प्रीतिपूर्वक रखनेकी कला थी। मुझसे १६-१७ वर्ष पूर्व मठमें आने पर भी सदैव अपने समकालीन भक्तों जैसा व्यवहार करते थे—यह उनके उदार-चरित्रका दिग्दर्शन मात्र है। जैसा वैराग्य और निष्ठा उनमें थी, उसकी आज-कलके लोग कल्पना तक भी नही कर सकते। किसी भी प्रकारकी सेवा करने हेतु सदैव प्रस्तुत रहते थे। गुरु-महाराज द्वारा स्थान-स्थान पर दी जानेवाली वक्तृताओंको स्पष्ट करके लिखकर रखते थे तथा पत्रिकामें प्रकाशित करते थे। सुन्दर-सुन्दर लेखोंको ढूँढकर प्रकाशित करते थे।" इत्यादि-इत्यादि वचन श्रील गुरुदेवके मुखसे श्रवण करके श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजके साथ हृदयका जो सम्बन्ध हुआ, वह शायद उनके साक्षात् सङ्गसे कदापि सम्भवपर नहीं हो पाता।

तृतीयतः मैं अपने परमाराध्य दीक्षा-गुरुपादपद्म नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराजके अभय श्रीचरण-कमलोंमें असंख्य दण्डवत प्रणाम ज्ञापन करता हूँ, जिनकी अशेष करुणाने मुझमें श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर श्रील प्रभुपादकी गोष्ठीके वैष्णवोंके श्रीचरणकमलोंके प्रति अगाध श्रद्धा तथा अप्राकृत विश्वास उदय कराया है।

चतुर्थतः अभिन्न गुरुपादपद्म नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजके अभय श्रीचरणकमलोंमें असंख्य दण्डवत प्रणाम ज्ञापन करता हूँ, जिनकी शुभ शतवार्षिक-आविर्भाव-तिथिके उपलक्ष्यमें इस अधम दासको उनकी अनन्त अप्राकृत गुणावालियोंको स्मरण करने, उनके उपदेश-निर्देश, आचार-विचारपर मनन करने, उनके निगूढ़ भावोंको जानने, समझनेका सुअवसर प्राप्त हुआ है। परमगुरुदेव, सम्पूर्ण गुरु-परम्परा, आराध्य श्रीश्रीगौराङ्ग महाप्रभु, श्रीश्रीराधाविनोदविहारीजीके प्रति उनकी अगाध निष्ठाका उनकी लेखनी, उनकी हरिकथाओं तथा उनकी पत्रावलीके माध्यमसे हमें जो परिचय प्राप्त होता है, वही निष्ठा मेरे जीवनका लक्ष्य हो, मैं उनकी विचार-धाराका पालन कर पाऊँ अपने जन्मको सार्थक बना पाऊँ, यही प्रार्थना है।

हमारे गुरुदेव श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजके प्रति उनके निम्नोक्त कतिपय शुभकामनामय और स्नेहपूर्ण वचन—एक-ही-साथ उनके उदार और विशाल हृदयस्वरूप, स्नेह और ममतासे युक्त वास्तविक शुभाकांक्षी तथा उत्साह प्रदाता अभिभावकस्वरूप, सुसमाञ्जस्य करनेकी अद्भुत क्षमता रखनेवाले निर्मत्सर साधुस्वरूप, सत्यनिष्ठ, भागवतीय सुसिद्धान्तोंमें निष्णात नित्यसिद्ध महाभागवत सद्गुरुस्वरूप, अपने गुरुभ्राताके प्रति अत्यधिक विश्वासयुक्त गर्वकारी, आर्शीवाद प्रदानकारी इत्यादि—अनेक सुस्पष्ट, सुन्दर अलौकिक छवियोंको उद्घाटित करते हैं। यथा—

१) पूज्यपाद नारायण महाराज! आप शुद्धभक्ति कथाका प्रचार करनेके उद्देश्यसे ही विदेश जा रहे हैं। आपको लाभ-हानिकी चिन्ता नहीं रहनेपर भी मैं वहाँके वासियोंके लिए यह स्वर्ण अवसर और सौभाग्य समझता हूँ।

२) आप पाश्चात्य देशोंमें श्रीमन्महाप्रभुकी वाणीके प्रचारके उद्देश्यसे शुभयात्रा कर रहे हैं, यह जानकर विशेष आनन्दित और उत्साहित हुआ। आप उनके योग्य सन्देशवाहक हैं।

३) सर्वाभीष्टप्रदाता श्रीगिरिराज महाराजकी अहैतुकी कृपा और शुभाशीष आपके ऊपर वर्षित होंवे। आप भगवद् वाणीके प्रचारके द्वारा अवश्य ही उनके मनोऽभीष्टके संरक्षणमें सक्षम होंगे, यह मेरा दृढ़ विश्वास है।

४) आप दीनवत्सल हैं। आप केशवानुगजन हैं। आप वैकण्ठ-वार्त्तावाहक हैं। आप परोपकारी हैं। आप आम्नायवाणी प्रचारकवर हैं।

५) वृद्धावस्थामें पाश्चात्य देशोंमें श्रीगौरवाणीके प्रचारका धैर्य और उत्साह निःसन्देह सत्साहस ही है। आपका स्वास्थ्य ठीक रहें तथा आपकी लम्बी आयु हो।

६) स्वदेश प्रत्यावर्त्तनके शुभ अवसर पर मैं आपको आन्तरिक अभिनन्दन ज्ञापन करता हूँ। आपको मेरी शुभकामनाएँ।

७) आप अपने स्वगणों सहित जययुक्त होवें।

८) आपकी प्रचार यात्रा आत्मसुखके उद्देश्यसे लोगोंके द्वारा किये जानेवाले परिभ्रमण या मूल्यहीन आवारा लोगोंकी आवारगीसे बहुत भिन्न है।

९) आप परमाराध्यतम जगद्गुरु श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी प्रभुके मनोऽभीष्टको पूर्ण करनेके लिए अपने सुख-दुःखके प्रति दृष्टिपात नहीं कर श्रीगौड़ीय वेदान्त वार्त्ता प्रचारके लिए व्रती हुए हैं। अतएव आप विशेष धन्यवाद योग्य हैं।

१०) श्रीरूप प्रभु और उनके अनुगत लोगोंने श्रीगौर-राधाविनोदविहारीके गुह्यतम तत्त्व और सेवाका प्रकाशकर जो परोपकारित्वका श्रेष्ठ निदर्शन प्रदर्शन किया है, आप उसके ही यथार्थ उद्घोषक हैं।

११) श्रीगौरसुन्दर अपनी वाणीको सार्थक करनेके लिये अपने अनुगत भक्तोंके हृदयमें प्रेरणा और सामर्थ्यका सञ्चार करते हैं। अन्यथा वार्द्धक्यकी बाधा अतिक्रमण कर अनिश्चित शारीरिक अवस्थामें इस प्रकार श्रीमन्महाप्रभुके प्रेमधर्मकी वाणीका प्रचार सम्भव नहीं होता।

१२) प्रेम-प्रयोजन वाणी द्वारा ही आपने विभिन्न देशवासियोंको नूतन आलोक प्रदान करते हुए उन्हें जीत लिया है। समस्त गौरभक्तवृन्द इससे आनन्दमें आप्लुत हैं।

१३) आप दीर्घायु और सुस्वास्थ लाभकर श्रीब्रह्म-मध्व-गौड़ीय-सारस्वत सम्प्रदायकी सात्त्वत-वाणीको यथायथरूपमें समग्र विश्वमें प्रचार करें—यही श्रीगौर-राधा-विनोदविहारी, श्रीगिरिराजजी, श्रीनृसिंहदेवके चरणोंमें प्रार्थना करता हूँ।

१४) श्रील सरस्वती प्रभुपादके सबसे प्रिय शिष्य श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजने श्रीचैतन्य महाप्रभुके अटल भक्तिके सन्देशके संरक्षणके लिए विश्व-प्रसिद्ध श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिकी स्थापनाकी थी। उनकी आन्तरिक इच्छाको जानते हुए आपने अपनी वृद्ध अवस्थाको अनदेखा कर दिया तथा गौड़ीय वेदान्त सिद्धान्तोंको समुद्रके उस पार प्रचार करनेके दायित्वको धारण करनेके लिए आपने अपने पग आगे बढ़ाये। यह आपकी महावदान्यता है।

१५) अनेक ब्रह्मचारी जो कहते हुए घूम रहे हैं—"गुरुदेवके (श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजके) साथ नारायण महाराजकी नहीं बनती इसलिए इस (मथुरा) मठमें रहना उचित नहीं है।" ऐसी अवस्थामें क्या किया जाए, यह चिन्ताका विषय हुआ है।

१६) आपसे यह मेरा विनीत निवेदन है कि—आप स्वयं ही Math Management Committee and Sub Committee के सम्पादक हैं, अतएव जो सेवकगण आपके और मेरे बीच मतभेद बनानेकी चेष्टा करते हैं, उनको चिह्नितकर पत्र पढ़ते ही मठ और मिशनसे बाहर कीजिए तथा उनका समितिमें किसी जगहपर भी स्थान न हो।"

अन्तमें मैं उन समस्त भक्तों विशेषतः श्रीपाद प्रेमानन्द प्रभु और श्रीमती उमा दीदीके चरणोंमें अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापन करता हूँ जिनकी कथा तथा सङ्गसे मेरी नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजके चरणकमलोंमें अन्ततः कुछ रति-मति हुई है।

श्रीश्रीभागवत-पत्रिका और Rays of The Harmonist के समस्त सेवकोंके प्रति भी कृतज्ञता, जिन्होंने श्रील गुरुदेवकी प्रेरणानुरूप श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजकी दिव्य वाणीका हिन्दी तथा अंग्रेजी भाषामें अनुवाद करके समस्त विश्ववासियोंको उनके सङ्ग और कृपाका सुअवसर प्रदान किया है।

सपरिकर श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजकी जय हो!

प्रणत वैष्णव-दासानुदास

त्रिदण्डिभिक्षु श्रीभक्तिवेदान्त सिद्धान्ती

श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज

—श्रीपाद परमेश्वरी दास ब्रह्मचारी

आज मेरे गुरुपादपद्म ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजजीकी आविर्भाव शतवार्षिकीके उपलक्ष्यमें उनके दिव्यातिदिव्य जीवन-चरित्र, उनके अमूल्य उपदेशोंका केवल अपने आत्मकल्याणके लिए ही स्मरण करनेकी चेष्टामात्र कर रहा हूँ। कारण, शास्त्रोंमें कहा गया है—*'वैष्णवेर गुणगान करिले, जीवेर त्राण'* अर्थात् वैष्णवोंका गुणगान करने अथवा श्रवण करनेमात्रसे ही जीवका उद्धार हो जाता है। शास्त्रोंमें एक बात और भी कही गयी है—

वन्दना करिते मुञि कत शक्ति धरि,
तमोबुद्धि दोषे मुञि दम्भमात्र करि।
तथापि मूकेर भाग्य मनेर उल्लास,
दोष क्षमि मो अधमे कर निज दास॥

अर्थात् वैष्णवोंकी वन्दना करना त्रिगुण-आबद्ध जीवोंके लिए सम्भव नहीं है, क्योंकि वैष्णव-तत्त्व त्रिगुणातीत तत्त्व है। *'नित्यसिद्धा मुकुन्दवत्'* अर्थात् नित्यसिद्ध महापुरुष भगवान्‌की ही भाँति त्रिगुणातीत होते हैं। जगत्‌में एक विशेष बात देखी जाती है—जिसकी पूजा करनी हो, जिसे प्रसन्न करना हो, उसीके समान होना पड़ता है। शास्त्र भी कहते हैं—*'नादेवो देवमर्चयेत्'* अर्थात् बिना देवता हुए देवपूजन सम्भव नहीं है। तात्पर्य यह है कि देवता सात्विक-प्रधान होते हैं, इसलिए देवताओंकी पूजा करनेके लिए सात्विक होना आवश्यक है। उसी प्रकार वैष्णववृन्द निर्गुण होते हैं—

हरिर्हि निर्गुणः साक्षात्, पुरुषः प्रकृतेः परः।
सः सर्वदृक् उपद्रष्टा, तं भजन निर्गुणो भवेत्॥

(श्रीमद्भा. १०/८८/५)

अर्थात् भगवान् श्रीहरि साक्षात् निर्गुण हैं, प्रकृतिसे परे हैं, उनका भजन करनेवाला भी निर्गुण हो जाता है। ऐसे ही मेरे गुरुपादपद्म अप्राकृत महापुरुष हैं। उनके जीवनमें ऐसी-ऐसी अलौकिक घटनाएँ घटी हैं, जो उनके अप्राकृतत्त्वको सिद्ध करती हैं।

मनसा-देवीका दर्शन

जब गुरुपादपद्मकी आयु ४-५ वर्षकी रही होगी, उस समयकी एक घटना है। श्रील गुरु-महाराजके घरमें प्रतिवर्ष विशेष तिथिमें नागोंकी देवी—मनसा देवीकी पूजा होती थी। एकदिन उन्होंने कौतुहलवश अपनी दादीसे इस विषयमें जिज्ञासा की कि यह मनसा देवीकी पूजा क्या होती है? तो दादीने उत्तर दिया मनसा देवी नागोंकी देवी हैं, रात्रिके समय उनके लिए एकान्त-स्थानपर भोग-द्रव्य रख दिये जाते हैं। अर्द्धरात्रिके समय देवी आती हैं तथा उस भोगको ग्रहण करती हैं। यह सुनकर बालक सन्तोषके मनमें देवीका दर्शन करनेकी बड़ी उत्कण्ठा हुई। उन्होंने जब देवीका दर्शन करनेकी इच्छा व्यक्त की, तो दादीने कहा—देवीका दर्शन किसीको नहीं होता। परन्तु इससे उनका मन शान्त नहीं हुआ। उन्होंने सोच लिया था कि किसी भी प्रकारसे देवीका दर्शन करना ही है। अतः जिस दिन देवीकी पूजा थी, उस दिन पूजाके पश्चात् रात्रिके समय देवीके भोगके लिए पूजाके स्थानपर अनेक व्यञ्जन रख दिये गये। रात्रिके समय जब सबलोग सो गये, तो बालक सन्तोष उठे तथा चुपचाप पूजा-स्थलपर पहुँच गये। वहाँपर पासमें ही दो तालके पेड़ एक-दूसरेसे सटे हुए थे। वे उन दोनों वृक्षोंकी ओटमें छिप गये तथा उत्कण्ठापूर्वक देवीकी प्रतीक्षा करने लगे। ठीक मध्यरात्रिके समय उन्होंने देखा कि अकस्मात् वहाँका सारा वातावरण एक अद्भुत प्रकाशसे जगमगा उठा। अभी वे विचार कर ही रहे थे कि यह प्रकाश कहाँसे आ रहा है, उन्होंने देखा कि एक बहुत बड़ा नाग धीरे-धीरे सरसराता हुआ भोगके स्थानपर आया।

उसके फणपर एक मणि थी, जो जगमगा रही थी, उसी मणिके प्रकाशसे वहाँका सारा वातावरण जगमगा उठा था। उनके देखते-ही-देखते वह नाग एक सुन्दर स्त्री बन गया। उस स्त्रीके ललाटपर सुन्दर तिलक सुशोभित हो रहा था, गलेमें तुलसीकी माला थी। उसने भोगके प्रत्येक द्रव्यमेंसे कुछ-कुछ खाया। यह देखकर वे स्थिर नहीं रह सके और मूर्च्छित हो गये।

प्रातःकाल जब घरके लोग उठे, तो उन लोगोंने उन्हें यहाँ-वहाँ खोजना आरम्भ किया। खोजते हुए जब वे लोग पूजा-स्थलपर गये, वहाँ उन्होंने सन्तोषको मूर्च्छित अवस्थामें पड़ा हुआ देखा। उन्हें उठाकर घरमें लाया गया, मुखमें जलके छींटे मारकर उनकी मूर्च्छा दूर की गयी। जब सबने उनसे मूर्च्छाका कारण पूछा तो उन्होंने सारी घटना सुनाई। यह सुनकर घरके लोगोंके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा। वे विचार करने लगे कि यह कैसे सम्भव है कि एक मनुष्यको मनसा देवीका दर्शन हो जाय। परन्तु उनकी बातोंपर अविश्वास भी नहीं किया सकता था, क्योंकि जो अवस्था उनकी हुई थी, उससे इतना तो स्पष्ट था कि कुछ तो हुआ है। अब सबको विश्वास हो गया था कि वास्तवमें बालकको देवीके दर्शन हुए। अब उन्हें लगने लगा था कि यह बालक कुछ विशेष है।

गृहत्याग एवं उत्तमसेवाका आदर्श

जब सन्तोषकी आयु लगभग ९-१० वर्षकी थी तभीसे ये मठमें रहने लगे। मठमें रहते हुए इन्होंने गुरु-वैष्णवोंकी सेवाका उत्तम आदर्श स्थापित किया। ये मठकी समस्त प्रकारकी सेवाएँ करते थे। साथ ही वैष्णवोंकी भी सेवा किया करते थे। अपनी सेवाके द्वारा इन्होंने समस्त वैष्णवोंका हृदय जीत लिया था। शौचालय साफ करना, वैष्णवोंके कमरोंमें झाड़ू-पोंछा लगाना, उनके वस्त्र धो देना आदि समस्त प्रकारकी सेवाओंको मन लगाकर किया करते थे।

श्रील प्रभुपादके अप्रकट होनेके पश्चात् मठमें कुछ अशान्ति होनेपर कुछ लोगोंके मिथ्यारोपके कारण जब श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज एवं उनके कुछ सहयोगी गुरु-भ्राताओंको कारागारमें जाना पड़ा, उस समय छोटेसे बालककी जो निष्ठा देखी गयी, वैसी निष्ठा 'न भूतो न भविष्यति' कहावतको पूर्णरूपसे चरितार्थ करती है। यहाँतक कि विरोधी लोगोंने उन्हें बहुत प्रकारसे समझा-बुझाकर अपनी ओर करनेकी चेष्टा की, उन्हें विभिन्न प्रकारके प्रलोभन भी दिये गये। परन्तु ये अपनी निष्ठासे किञ्चित् भी विचलित नहीं हुए। यही इनके अलौकिकत्वका प्रमाण है, अर्थात् इन्हें भलीभाँति अनुभव था कि ये लोग ही अर्थात् श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी एवं अन्यान्य वैष्णवगण ही उनके निजजन हैं। वैष्णव-महाजनने कहा है—*'तव निजजन परम बान्धव, संसार कारागारे'* अर्थात् यह संसार तो कारागार है, इसमें एकमात्र भगवान्के निजजन ही मेरे परम बान्धव हैं। यहाँपर जितने भी मेरे स्वजन बने हुए हैं, वास्तवमें इनसे मेरा पारमार्थिक किसी प्रकारका सम्बन्ध नहीं है। प्रारब्धके कारण ही इस संसारमें सभी लोग एक-दूसरेसे जुड़े हुए हैं, अन्तमें एक दिन सब बिछड़ जाते हैं। ऐसा था इनका सम्बन्धज्ञान। बिना सम्बन्धज्ञानके गुरु-वैष्णवोंके प्रति ऐसी निष्ठा सम्भव नहीं है। इस जड़ जगत्में भी सम्बन्धज्ञानका उदाहरण हमें दिखाई देता है। हमारे परिवारपर किसी प्रकारकी विपत्ति आनेपर हम उन लोगोंको विपत्तिमें छोड़कर भागते नहीं, अपितु अपने सामर्थ्यानुसार उनकी सहायता करनेकी भरसक चेष्टा करते हैं, क्योंकि हमें भलीभाँति ज्ञान होता है कि यह मेरा परिवार है। इसके द्वारा उन्होंने हमारे सामने गुरु-वैष्णव-निष्ठाका ज्वलन्त आदर्श प्रस्तुत किया था। बाहर रहकर उन सबके लिए प्रसादकी व्यवस्था करना, साथ-ही-साथ कभी वकीलोंके पास तो कभी कचहरीमें भागदौड़ करना—यह कोई साधारण बात नहीं है।

एक आदर्श-आचार्यलीला

बादमें जब वे श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके आचार्य पदपर प्रतिष्ठित हुए, तो उन्होंने एक आदर्श आचार्यका उदाहरण प्रस्तुत किया। आचार्यके विषयमें शास्त्रोंमें कहा गया है—

आचिनोति यः शास्त्रार्थमाचारे स्थापयत्यपि।
स्वयं आचारते यस्मात् आचार्यस्तेनकीर्तितः॥

(वायु पुराण)

अर्थात् जो शास्त्रानुसार स्वयं आचरणको स्थापित करते हैं, तत्पश्चात् जगत्में प्रचार भी करते हैं, उसे आचार्य कहते हैं।

वे कहते थे कि सभी शास्त्र मेरे आचरणके लिए हैं। उनकी प्रत्येक क्रिया शास्त्रानुसार ही होती थी। शास्त्रोंमें जो वैष्णवोंके २६ गुण वर्णित हैं, उनमें वे सब गुण पूर्णमात्रामें विद्यमान थे। श्रीमद्भागवतमें गुरुके विषयमें कहा गया है—

तस्मात् गुरुं प्रपद्येत् जिज्ञासु श्रेयः उत्तमम्।
शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपसमाश्रयम्॥

(श्रीमद्भा. ११/३/२१)

एक जिज्ञासु साधकको अपने उत्तम कल्याणको जाननेके लिए ऐसे गुरुके पास जाना चाहिए जो शब्द-ब्रह्म अर्थात् समस्त शास्त्रोंमें पारङ्गत हो, उसे भगवान्की अनुभूति हो तथा वह संसारसे पूर्णरूपसे विरक्त हो। श्रील गुरु-महाराजमें ये तीनों ही गुण सुन्दर रूपसे विराजमान थे। शास्त्र-ज्ञानके विषयमें उनकी प्रसिद्धि थी—dictionary of slokas, भगवान्की अनुभूतिके विषयमें चर्चा की जाय तो, इसके विषयमें अनेकों प्रमाण पाये जाते हैं जो सिद्ध करते हैं कि वे एक उपयुक्त गुरु थे। इस विषयको प्रमाणित करनेके लिए मैं एक घटनाका वर्णन कर रहा हूँ।

श्रील गुरु-महाराजसे श्रीमती राधिकाजीका वस्त्र माँगना

जब श्रीजगन्नाथ पुरीमें नीलाचल गौड़ीय मठकी स्थापना हो रही थी, तो श्रील गुरु-महाराज वहींपर विराजमान थे। जिस दिन विग्रहोंकी स्थापना हुई, उसी दिन रात्रिके समय श्रीटोटा गोपीनाथजीके साथ जो राधिकाजी विराजमान हैं, वे श्रीगुरु-महाराजके स्वप्नमें आईं तथा बोली—"तुम अपने ठाकुरके लिए इतने सारे वस्त्र आदि लाये हो, परन्तु मेरे पास ढङ्गके वस्त्र नहीं हैं, मेरा लहङ्गा फटा हुआ है, अतः मुझे भी एक जोड़ी वस्त्र प्रदान करो। स्वप्न देखकर श्रील गुरु-महाराजको बहुत आश्चर्य हुआ। वे प्रातःकाल उठकर श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजके साथ एक जोड़ा नये वस्त्र लेकर श्रीटोटा गोपीनाथजीके मन्दिरमें गये। उस समय वहाँपर ठाकुरजीकी आरति हो रही थी। आरतिके पश्चात् श्रील गुरु-महाराजने पुजारीसे कहा—"तुम यह नई पोशाक ठाकुरको धारण कराओ तथा यह पोशाक जो ठाकुरजीको धारण करा रखी है, उसे मुझे दे दो। सुनकर पुजारीने ठाकुरजीको नई पोशाक धारण कराई तथा वह पुरानी उतरी हुई पोशाक श्रील गुरु-महाराजको प्रदान की। श्रील गुरु-महाराजने कौतुहल-पूर्वक जब राधाजीके लहङ्गेको खोलकर देखा तो अवाक् रह गये। उनका सारा शरीर रोमाञ्चित हो गया, क्योंकि उन्होंने देखा कि वह लहङ्गा ठीक बीचमें-से फटा हुआ था। अतः स्वयं श्रीमती राधिकाजी जिनसे वस्त्र माँगती हैं, उनके अलौकिकत्वके विषयमें क्या कहा जाय। ऐसा एकबार नहीं कई बार हुआ है। इससे सिद्ध हो जाता है कि श्रील गुरु-महाराज श्रीमती राधिकाजीकी अत्यन्त प्रिय दासी हैं, क्योंकि शास्त्रोंमें वर्णन है—

भक्तेर द्रव्य प्रभु काढ़ि काढ़ि खाय।
अभक्तेर द्रव्य प्रभु उलटिया ना चाय॥

(चै.भ)

अर्थात् भगवान भक्तोंकी वस्तुओंका छीनकर भी खाते हैं, परन्तु अभक्तकी वस्तुओंकी ओर मुड़कर भी नहीं देखते।

दीनताकी प्रतिमूर्ति

श्रील गुरु-महाराज दीनताकी प्रतिमूर्ति थे। आचार्यपदपर विराजमान होनेपर भी उनके हृदयमें उस पदका लेशमात्र भी अहङ्कार नहीं था। वे अपने गुरु-भ्राताओंको यथायोग्य सम्मान प्रदान करते थे। विशेषरूपसे नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज तथा नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम गोस्वामी महाराजके प्रति उनका विशेष सौहार्द भाव था। समितिके सञ्चालनका

पूर्ण दायित्व उन्होंने अपने गुरुभ्राता श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजको सौंप रखा था। मठ सञ्चालन-सम्बन्धी कोई भी निर्णय श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजका ही होता था। उनके निर्णयका श्रील गुरु-महाराज पूर्णरूपसे समर्थन करते थे, जो एक साधारण मानवके लिए सम्भव नहीं है। गुरु-भ्राताओंके प्रति ऐसा अद्भुत सौहार्द-भाव किसी मर्त्यमानवके लिए पूर्णता असम्भव है?

इन्हीं वचनोंके साथ मैं श्रीगुरु-महाराजके श्रीचरणोंमें यह सकातर प्रार्थना करते हुए अपना वक्तव्य समाप्त कर रहा हूँ कि उन्होंने जिन आदर्शोंको मेरे जैसे बद्धजीवोंके कल्याणके लिए जगत्में स्थापित किया, मैं उन आदर्शोंपर चलनेका प्रयास कर सकूँ तथा अपने आचरणके द्वारा उन्होंने जो शिक्षाएँ प्रदान कीं, उनका पालन कर सकूँ।

अप्राकृत-चरित्र

—श्रीसञ्जय दास

मैं सर्वप्रथम अपने परमाराध्यतम गुरुपादपद्म नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज एवं अभिन्न गुरुपादपद्म नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज तथा नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम गोस्वामी महाराजके श्रीचरणकमलोंमें असंख्य कोटि दण्डवत प्रणाम ज्ञापन करता हूँ।

श्रील गुरुदेव एवं तद्-अभिन्न विग्रह श्रील वामन गोस्वामी महाराजके शतवार्षिकी आविर्भावके उपलक्ष्यमें समस्त विश्ववासी भक्तवृन्द अत्यन्त हर्ष-उल्लासपूर्वक इस महद्-अनुष्ठानमें योगदान देकर अपने पारमार्थिक मङ्गलको वरण कर रहे हैं। श्रीवृन्दावन दास ठाकुरने श्रीचैतन्य भागवतमें लिखा है—

ईश्वरेर जन्म तिथि ये हेन पवित्र।
वैष्णवेर सेइ मत तिथिर चरित्र॥

(श्रीचैः भाः आः ३/४८)

अर्थात् जिस प्रकार ईश्वरकी जन्मतिथि पवित्र है, उसी प्रकार वैष्णवकी जन्मतिथि भी पवित्र है।

श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजने, श्रीगौर-विनोद-सरस्वती धारामें निष्णात एक वैष्णव परिवारका अवलम्बनकर, श्रीगौर-गोविन्द विहित कीर्त्तनसे मुखरित परिवेशमें अपनी शुभ-आविर्भाव-लीलाको प्रकाशित किया था। उनके पिता श्रीसर्वेश्वर दासाधिकारी एवं माता श्रीमती भगवती देवी आदर्श स्थानीय गृहस्थ वैष्णव तथा उनके पूर्वाश्रमके पितृव्य (चाचा) श्रीश्रीमद्भक्तिकुशल नारसिंह गोस्वामी महाराज श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके तत्कालीन प्रधान स्तम्भोंमें अन्यतम थे। उनकी माता श्रीमती भगवती देवी, बुआ श्रीमती निर्मला बोस एवं उनके चाचाने जगद्गुरु श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर प्रभुपाद एवं पिता श्रीसर्वेश्वर दासाधिकारीने श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजका श्रीचरणाश्रय प्राप्त किया था। बाल्यकालसे ही उनका सम्पूर्ण व्यवहार अति सन्तोषजनक था, अतः सभी उन्हें 'सन्तोष' नाम से सम्बोधित करते थे।

प्रायः केवल ९ वर्षकी आयुमें ही जनक-जननी एवं बन्धुवर्गके अतुलनीय स्नेहका परित्यागकर वह सपार्षद श्रील प्रभुपादके श्रीचरणोंकी सेवामें नियुक्त हुये थे, श्रील वृन्दावन दास ठाकुरने श्रीनित्यानन्द प्रभुके गृहत्यागके प्रसङ्गमें श्रीचैतन्य भागवतमें लिखा है—

प्रभु केने छाड़े, जार हेन अनुराग।
विष्णु-वैष्णवेर एइ अचिन्त्य प्रभाव॥

(श्रीचैः भाः मः ३/१००)

जिन (माता-पिता) का ऐसा अनुराग था, उनको प्रभु (श्रीनित्यानन्द) ने क्यों छोड़ दिया? यही विष्णु-वैष्णवोंका अचिन्त्य प्रभाव है।

मठवासकी प्रारम्भिक अवस्थासे ही जागतिक प्रतिष्ठा-वर्जनरूपी आदर्श इन महापुरुषकी प्रत्येक क्रियामें परिलक्षित होता था। अमानी-मानद धर्ममें सुदीक्षित एवं श्रीहरि-गुरु-वैष्णव सेवाके बृहद्-व्रतको आजीवन धारण करनेवाले इन महापुरुषने निज-आदर्शके द्वारा श्रीगुरुप्रदत्त 'सज्जन-सेवक' नामको विशेष अर्थ प्रदान किया है। इस विषयमें एक जीवन्त उदाहरण प्रस्तुत करना प्रासङ्गिक होगा—

एक समय परम गुरुदेव श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजने अपने आश्रितजनोंसे भक्तिकी परिभाषा प्रदान करनेके लिये कहा। वहाँ उपस्थित सभी शिष्योंने अपने-अपने विचारानुसार शास्त्रीय उदाहरण प्रस्तुत करते हुये—'हृषीकेश सेवनं', 'सा परानुरक्ति ईश्वरे', 'अन्याभिलाषिता शून्यं' आदि विभिन्न प्रमाणोंके अनुसार भक्तिकी परिभाषा प्रस्तुत की, किन्तु श्रीसज्जनसेवक ब्रह्मचारीने भक्तिकी परिभाषा देते हुए, श्रीमद्भागवतमें श्रीप्रह्लाद महाराजके द्वारा कथित—

गुरुशुश्रुषया भक्त्या सर्वलब्धार्पणेन च।
सङ्गेन साधुभक्तानामीश्वराराधनेन च॥

(भाः ७/७/३०)

अर्थात् श्रीगुरुदेवकी प्रेमपूर्वक सेवा एवं अपना सर्वस्व श्रीगुरुको समर्पितकर, निष्कपट भक्तोंके सङ्गमें निवास करते हुए ईश्वरकी आराधना करनी चाहिये।

एवं भगवद् कथित—

नाहमिज्या प्रजापतिभ्यां तपसोपशमेन व।
तुष्येयं सर्वभूतात्मा गुरुशुश्रुषया यथा॥

(भाः १०/८०/३४)

श्रीभगवान् कहते हैं कि मैं सबकी आत्मा और सबके हृदयमें अन्तर्यामी रूपमें विराजमान हूँ, मैं पञ्चमहायज्ञ, उपनयन, वेद-अध्ययन, तपस्या अथवा शम आदिसे उतना सन्तुष्ट नहीं होता, जितना श्रीगुरुदेवकी सेवा-शुश्रुषासे होता हूँ।

—आदि वचनोंके द्वारा श्रीगुरुकी निष्कपट सेवा ही सर्वोत्तम प्रकारकी भक्ति है, यह स्थापित किया, जिसे श्रवणकर श्रीपरम गुरुदेव अत्यन्त सन्तुष्ट हुए। इस प्रसङ्गमें स्वयं श्रीपरम गुरुदेव प्रायः कहा करते थे—'यदि मठमें सभी सेवकोंकी सेवाको तोला जाये, तो सज्जनसेवकका पलड़ा ही सदैव भारी होगा।'

श्रील रूप गोस्वामीने श्रीभक्तिरसामृतसिन्धुमें लिखा है—

अतः श्रीकृष्णनामादि न भवेद् ग्राह्यमिन्द्रियैः।
सेवोन्मुखे हि जिह्वादौ स्वयमेव स्फुरत्यदः॥

(श्रीभः रः सिः पूः विः २/१०९)

अर्थात् श्रीकृष्ण नामादि प्राकृत इन्द्रियोंके द्वारा ग्राह्य वस्तु नहीं हैं, सेवोन्मुख अवस्थामें श्रीकृष्णका नाम-रूप-गुण-लीला भक्तकी अप्राकृत जिह्वा, चक्षु आदि इन्द्रियोंमें स्वयं स्फुरित होते हैं।

नित्यसिद्ध भगवद्-परिकर होनेपर भी इन महापुरुषने अपने आदर्श सेवामय जीवनके द्वारा श्रील रूप गोस्वामीके इस विचारका विशेष वैशिष्ट्य स्थापित किया है। इन महापुरुषने अत्यन्त बाल्यकालसे ही प्रायः श्रील प्रभुपादके आश्रित सभी महाजनोंकी सेवाका सुयोग वरण किया था। वह स्वयं कहा करते थे—'हरि-गुरु-वैष्णवोंकी सेवाके प्रभावसे मेरे हृदयमें सबकुछ स्फुरित होता है। एक समय प्रसङ्गवशः किसी भक्तके द्वारा पूछनेपर उन्होंने कहा था कि यदि मैं सात दिन और सात रात्रि तक श्लोक कहूँ तो भी मुझे जितने श्लोक स्मरण हैं, वह समाप्त नहीं होंगे, मैंने बाल्यकालमें जो श्लोक कण्ठस्थ किये थे, वह इस वृद्धावस्थामें भी मुझे भलीभाँति

स्मरण हैं। इसलिये इन्हें गौड़ीय गगनकी 'Living Dictionary' कहा जाता है। उनकी लेखनीका गाम्भीर्य गौड़ीय साहित्यके वैशिष्ट्यका संवर्द्धन एवं श्रील प्रभुपादकी विशिष्ट् विचारधाराके माहात्म्यकी उद्घोषणा करनेवाला है। भजन-राज्यके अत्यन्त गूढ़ विषयोंको भी सहज-सरल एवं बोधगम्य रूपमें प्रस्तुत करना, उनकी हरिकथाका वैशिष्ट्य था।

श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामीने श्रीचैतन्य-चरितामृतमें वैष्णवोंके छब्बीस गुणोंका वर्णन किया है, यह महापुरुष उन छब्बीस गुणोंकी प्रतिमूर्त्ति स्वरूप थे, प्रबन्ध विस्तारके भयसे उन सबका वर्णन करनेमें लेखनी सङ्कुचित हो रही है, किन्तु उक्त छब्बीस गुणोंके अन्तर्गत स्वरूपभूत—'कृष्णैकशरणता' नामक गुण, जिसका जाज्वल्यमान आदर्श इन महापुरुषके अप्राकृत चरित्रमें सम्पूर्ण रूपमें दृश्यमान होता है, उस विषयमें कुछेक शब्द लिखनेका लोभ सम्वरण करना कठिन है। 'कृष्णैकशरणता' के सम्बन्धमें वह प्रायः ही कहते थे—*'निज बल चेष्टा प्रति भरसा छाड़िया, तोमार इच्छाय आछि निर्भर करिया॥* अर्थात् मैं अपने बल एवं चेष्टाओंके प्रति भरोसा छोड़कर, केवल भगवान्की इच्छापर ही निर्भर हूँ। इन्हें प्रायः ही यह भी कहते सुना जाता था—*'कर्मावलम्बकाः केचित् केचित् ज्ञानावलम्बकाः। वयं तु हरिदासानां पादत्राणावलम्बकाः॥* अर्थात् कुछ लोग कर्म एवं कुछ लोग ज्ञानका अवलम्बन करते हैं, किन्तु हम लोग केवल भगवद्-भक्तोंके श्रीचरणोंका अवलम्बन करते हैं, जो भवसागरसे उद्धार करनेवाले हैं। इन महापुरुषका सम्पूर्ण जीवन पूर्व महाजनोंके द्वारा कथित उक्त विचारोंमें सुप्रतिष्ठित था।

श्रीमद्भागवतमें वर्णित है—

'परमो निर्मत्सराणां सतां' (१/१/२) अर्थात् यह भागवत धर्म परम निर्मत्सर साधुओंका धर्म है, यह महापुरुष इस आदर्शका साक्षात् विग्रह स्वरूप थे। इन्होंने स्वयं अपनी लेखनीमें एक स्थान पर अपनी मनोवृत्तिका किञ्चित् परिचय प्रदान करते हुये लिखा है—'मैं भलीभाँति जानता हूँ कि मैंने जीवनमें ज्ञानतः कभी किसीका अनिष्ट करनेकी चिन्ता नहीं की।' *'जीवन निर्वाहे आनेर उद्वेग ना दिबे। पर उपकारे निज सुख पासरिबे'*—अर्थात् जीवन निर्वाहके लिये किसीको उद्वेग देना तो दूर, अपितु दूसरोंके उपकारके लिये अपने सुखका भी त्याग कर देना, यही इन महापुरुषके जीवन यापनका मूलमन्त्र था।

जीवमात्रके पारमार्थिक मङ्गलके लिये इन महापुरुषकी अक्लान्त चेष्टा अविस्मरणीय है। इस सन्दर्भमें भी उनकी लेखनीके द्वारा उनके मनोभावका किञ्चित् दिग्दर्शन प्राप्त होता है, उन्होंने लिखा है—'जीवनमें निःस्वार्थ भावसे लोगोंका उपकार करनेकी मेरी इच्छा है; मैंने यह प्रवृत्ति परम-उदार श्रीगुरुपादपद्मसे प्राप्त की है।'

सतीर्थ गुरुभ्राताओंके प्रति उनका स्नेह उनके उदार चरित्रका सुष्ठु परिचय प्रदान करता है। विशेषकर श्रील गुरुदेव श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज एवं श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम गोस्वामी महाराजके साथ वह एक अत्यन्त विशिष्ट एवं अप्राकृत प्रीतिसूत्रमें आबद्ध थे।

इन महापुरुषने जिस प्रकार अपने सतीर्थ गुरुभ्राता श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम गोस्वामी महाराजकी अप्रकट तिथिके दिन अपनी अप्रकट लीलाको प्रकाशित किया तथा श्रील गुरुदेव श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजके मठवासकी प्रथम रात्रिकी भाँति उनकी अप्रकट लीला-रात्रिके समय भी आविर्भूत होकर उनके नित्यलीला गमनमें सहयोग प्रदान किया एवं श्रील गुरुदेवने भी जिस प्रकार श्रील वामन गोस्वामी महाराजको आविर्भूत होते देखकर उनके सङ्गसुखमें ही नित्यजगतमें गमन करना स्वीकार किया, वह इन तीनों गुरुभ्राताओंकी अकृत्रिम प्रीतिका अत्यन्त उत्कृष्ट परिचय प्रदान करता है।

श्रीरघुनाथ दास गोस्वामीने स्वरचित 'श्रीविलाप-कुसुमाञ्जली'में अपने जिन हृदयगत भावोंको कृपापूर्वक किञ्चित् प्रकट किया है, उनके उन्हीं भावोंमें विभावित होकर अत्यन्त दीनतापूर्वक अपने हृदयके विरहमय उद्गार प्रकट करते हुए इन

महापुरुषने एक स्थानपर कहा है—"मैं नहीं जानता कि द्विभुज मुरलीधर श्रीश्यामसुन्दर श्रीमती राधिका सहित किसदिन इस 'अनाथिनी सेविका' को आत्मसात करेंगे? श्रीरूपानुग गुरुवर्गका यही विशेष परिचय है एवं यही श्रीरूपानुग भजनराज्यकी सर्वोत्तम सम्पद है, उन्होंने कहा है—'व्रजनवयुवद्वन्द्व श्रीश्रीराधा-गोविन्दकी प्रेष्ठालि (प्रिय सखियों-मञ्जरियों) के आनुगत्यमें सेवा प्राप्ति ही समस्त लाभकी पराकाष्ठा स्वरूप है।"

वह श्रीगोलोक-वृन्दावनके माधुर्यमय प्रकोष्ठमें स्थित श्रीविनोद-कुञ्जमें अपनी गुरुरूपा सखीके आनुगत्यमें लीला परायण श्रीराधाकान्त सहित श्रीमती राधिकाके सेवासुखमें निरन्तर निमग्न हैं एवं औदार्यमय प्रकोष्ठमें श्रीगौरसुन्दरकी सङ्कीर्त्तन-विलास लीलामें गणसहित उनकी सेवामें भावविभोर हैं। श्रीगौरसुन्दरकी इच्छासे उसी सेवासुखको वितरण करनेके लिये अत्यन्त कृपापूर्वक उनका इस जगतमें शुभ-आविर्भाव है।

ऐसे नित्यसिद्ध श्रीराधा निजजन, श्रीगौर-अन्तरङ्ग गुरुवर्गकी गुणावली अप्राकृत एवं पारावार शून्य है, उनका भजन-आदर्श उनके ही समान नित्य है, उनकी लोकातीत गुणावलीका श्रवण-कीर्त्तन-स्मरण ही आश्रितजनोंका भजनबल है। श्रीगुरुपादपद्मसे अभिन्न ऐसे 'केशवानुग-सरस्वती-अनुचर' श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजजीके श्रीचरणकमलोंमें मेरा शत-शत नमन है।

—दासाभास
सञ्जय दास

परमाराध्यतम श्रीगुरुपादपद्मके शुभ-शतवार्षिक-आविर्भाव महोत्सवके उपलक्ष्यमें दीनाकी पुष्पाञ्जलि

—श्रीयुक्ता उमा दासी

सन् २०२१ई. मेरे लिए अति गुरुत्वपूर्ण है। इस वर्ष मेरे परमाराध्यतम दीक्षागुरु—श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज एवं मेरे भजन-शिक्षागुरु—श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज, दोनोंके शतवार्षिक-आविर्भाव-महोत्सवके उपलक्ष्यमें सर्वत्र ही भक्तगण अपने-अपने भावानुसार श्रील गुरुद्वयकी महिमा कीर्तन-रूपी पुष्पाञ्जलि प्रदान कर रहे हैं।

"योग्यता विचारे, किछु नाइ पाइ, तोमार करुणा सार।"—महाजनोंकी इस वाणीको सत्यकर श्रील गुरुपादपद्मने मुझे हरिनाम तथा दीक्षा प्रदानकर अपने श्रीचरणोंमें आश्रय प्रदान किया। गुरुवर्गोंसे सुना है—*'दीक्षाकाले भक्त करे आत्मसमर्पण। सेइकाले कृष्ण तारे करे आत्मसम॥'* (चैः चः अः ४/१९२) —इस विचारसे प्रकृत शिष्य होनेकी योग्यता अभी तक प्राप्त नहीं कर पानेके कारण मैं तथाकथित शिष्या हूँ।

जो भक्तगण श्रील गुरु-महाराजके चरणकमलोंमें ममतायुक्त सम्बन्ध द्वारा समर्पित आत्मा हैं, वे ही उनके श्रीचरणकमलोंकी महिमा कीर्तनके अधिकारी हैं। श्रील गुरु-महाराजने मेरी जैसी क्षुद्र, नगण्य, अधम जीवको अपनी अहैतुकी कृपाके द्वारा सब समय अपने अशोक, अभयामृत चरणकमलोंके आश्रयमें रखा है, यही उनकी महानुभावता है।

समर्पित आत्मा भक्तगण जो भी करते हैं वह गुरु-महाराजकी प्रेरणाके द्वारा ही करते हैं। किन्तु मेरे हृदयमें गुरु-महाराज कुछ प्रेरणा देकर करवा

रहे हैं, यह सोचना तो धृष्टता और दाम्भिकताका सूचक है। मैं अपनी प्राकृत बुद्धि और ज्ञानके द्वारा श्रील गुरु-महाराजकी अप्राकृत महिमाका गान करनेमें अक्षम हूँ, तथापि 'गङ्गा जल द्वारा गङ्गा-पूजा'—इस उक्तिके अनुसार मैं उन श्रील गुरुपादपद्मकी अपार, अगाध, गम्भीर महिमाका एक कण स्पर्श करनेकी चेष्टा द्वारा जीवनको धन्य करना चाहती हूँ।

मेरे इस पारमार्थिक शुद्धभक्ति-मार्गमें प्रवेश करनेका मूल कारण है—मेरे वर्त्मप्रदर्शक गुरु श्रील भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराजकी अहैतुकी कृपा। मैं उनके अभय श्रीचरणकमलोंमें शत-शतबार प्रणाम करती हूँ। उनकी अहैतुकी कृपाका एक बिन्दु भी यदि मैं ग्रहण कर सकूँ, तो मेरा मनुष्य जन्म सार्थक हो जायेगा।

श्रील गुरुपादपद्मकी भाषामें, यदि कोई श्रीगुरु-वैष्णवोंकी महिमाके कीर्तनकी इच्छाकर पृथ्वीको कागज, हिमालयकी चोटीको कलम तथा सातों समुद्रोंको स्याहीके रूपमें ग्रहण करे, तो भी श्रीगुरु-वैष्णवोंकी महिमाका कीर्तन करनेमें समर्थ नहीं हो सकता। वे सर्वदा अपनी ही महिमासे महिमान्वित होते हैं। जैसे सूर्य, चन्द्र कृपापूर्वक उदित होकर हमारे नेत्रगोचर होते हैं, उसी प्रकार श्रीगुरु-वैष्णवोंकी कृपासे ही उनकी महिमाको समझा जा सकता है। तथापि शास्त्रोंमें कहा गया है—*"श्रीगुरु-वैष्णवेर गुणगान, करिले जीवेर त्राण।"* इस सिद्धान्तानुसार अपनी जिह्वा तथा हृदयको पवित्र करनेके लिए निरन्तर उनकी महिमाका गुणगान करना चाहिए।

श्रील गुरु-महाराजमें वैष्णवोंके २६ गुण परिपूर्णतम-रूपमें विद्यमान होनेपर भी उनमें बिन्दुमात्र भी अभिमान नहीं था। वे सर्वदा ही कहते थे—"मेरा कोई शिष्य नहीं है, ये सब मेरे गुरुदेवके वैभव हैं।" एकबार परम गुरुदेव श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजने अपने शिष्योंकी तालिका तैयार करवायी, उसमें मेरे गुरुपादपद्मका नाम नहीं था। यह देखकर श्रील गुरु-महाराजने परम गुरु-महाराजसे पूछा—"गुरुदेव! तालिकामें मेरा नाम क्यों नहीं है? मैं तो आपका प्रथम शिष्य हूँ। अतः मेरा नाम तो तालिकामें सबसे पहले होना चाहिए था।"

श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादके अप्रकट होनेके बाद श्रील परमगुरुदेव तथाकथित श्रीमठके परिचालकोंके जघन्य षडयन्त्रका शिकार होकर कारागारमें अवरुद्ध थे। उस समय मेरे गुरु-महाराजने कारागारमें बन्दी वैष्णवोंकी सेवाके लिए कारागारमें ही अवस्थित परम गुरुदेवसे दीक्षा ग्रहण की थी। श्रील गुरु-महाराजको श्रील प्रभुपादसे हरिनाम प्राप्त हुआ था, इसलिए परम गुरुदेव उन्हें गुरुभ्राता मानते थे, किन्तु श्रील गुरु-महाराजने कभी भी श्रील प्रभुपादके आश्रित होनेका अभिमान प्रकाशित नहीं किया। उन्होंने परम गुरुदेवको कहा कि श्रील प्रभुपाद आपके हैं तथा आप मेरे हैं।

श्रील प्रभुपादके समय छोटे-से बालक सन्तोषने सभी वैष्णवोंकी सेवाकर उनसे आशीर्वाद प्राप्त किया। बादमें वे हमसे कहते थे—"वैष्णवोंकी सेवासे मैंने जो आशीर्वाद प्राप्त किया है, उसीके कारण मैं अभी भी मठमें अवस्थान कर रहा हूँ।" उनका जीवन सेवामय था। गुरु-महाराज कहते थे कि 'विश्राम' शब्द सेवकके शब्दकोषमें नहीं पाया जाता, क्योंकि सेवामें विश्राम शब्द नामक कोई वस्तु नहीं हो सकती। सेवककी सेवा ही उसका विश्राम है। सेवकका प्रकृत विश्राम—*"अशोक-अभय, अमृत-आधार, तोमार चरणद्वय। ताहाते एखन विश्राम लभिया, छाड़िनु भवेर भय॥"* है।

एकबार मैने श्रील गुरु-महाराजसे प्रश्न किया—"प्रभुपादकी प्रकटलीलाके समय मठमें रहते समय क्या आप कभी मङ्गलारातिमें अनुपस्थित रहे? क्योंकि उस समय श्रील प्रभुपादका कठोर नियम था कि जो कोई भी मङ्गलारातिमें उपस्थित नहीं होता था, उसका प्रसाद बन्द हो जाता था। क्या आपको कभी ऐसा दण्ड मिला?" इसके उत्तरमें गुरु-महाराजने

कहा—"मुझे कभी भी ऐसी सजा नहीं मिली, क्योंकि श्रीनरहरि प्रभु प्रतिदिन मङ्गलारतिसे पहले हमारे कमरेमें आकर हमें बहुत स्नेहपूर्वक जगाकर आलस्यकी अवस्थामें ही मङ्गलारतिके दर्शनके लिए मन्दिरमें ले जाते थे।"

श्रील गुरु-महाराज कहते थे—"मठमें यदि कोई व्यक्ति सेवाके लिए आया है, तो उसे इतना स्नेह करना चाहिए कि वह घरमें मिले अपने माता-पिताके स्नेहको भूल जाय।"

गुरु-महाराज सब समय कहते थे—"यदि मैं शरणागत, समर्पित आत्मा हूँ, तब गुरुदेव मेरे मङ्गलके लिए कुछ कहेंगे, अन्यथा यदि मैं दाम्भिक और प्रतिष्ठाकामी हूँ, तो वे मौन रहकर वञ्चना कर देंगे। गुरुदेव द्वारा बद्धजीवकी वञ्चना करनेकी इच्छा न होने पर भी यदि जीव उनके उपदिष्ट पथमें नहीं चलते हैं तो यह जीव द्वारा आत्म-वञ्चना ही है।"

श्रील गुरु-महाराज हम लोगोंको शिक्षा देनेके लिए प्रायः कहा करते थे—"मैंने बहुत कुछ पढ़ लिया है, जान लिया है, इसका महत्व नहीं है। हमें पढ़ना और जानना चाहिए, जीवनमें पालन करनेके लिए।" वे कहते थे—"शास्त्रके सब उपदेश निर्देश मेरे लिए ही हैं।"

श्रील गुरु-महाराज तृणादपि-सुनीचताके मूर्तविग्रह थे, सहिष्णुताका प्रतीक और अमानी-मानद धर्ममें सुप्रतिष्ठित थे। अपने सतीर्थ गुरुभ्राताओंके प्रति विशेष सम्मान सूचक व्यवहार करते थे। विशेषकर पूज्यपाद त्रिविक्रम महाराजको ज्येष्ठ भ्राताकी भाँति सम्मान करते और परम पूज्यपाद श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज समस्त मठों एवं श्रीनवद्वीप-धाम आदि परिक्रमाके समय परिचालना करते, उसीमें गुरु-महाराज सहमति प्रकट करते। एक आचार्य होते हुए भी ऐसा निराभिमान बहुत दुर्लभ है। कोई यदि गुरु-महाराजके गुरु-भाईयोंके प्रति असम्मान व्यक्त करते, तो गुरु-महाराज उनके प्रति कठोर मनोभाव प्रकाश करते थे। गुरु-महाराज तबतक उसका मुख नहीं देखते थे, जब तक वह उनसे क्षमा न माँग ले तथा वैष्णव भी लिखितरूपमें उसे क्षमा नहीं कर देते।

पूज्यपाद श्रीसुन्दरानन्द ब्रह्मचारी प्रभुके लिए श्रील गुरु-महाराजके सेवक-वात्सल्यकी बात अभी भी मुझे स्मरण है। एक आकस्मिक दुर्घटनामें उनके देहत्यागके बाद श्रील गुरु-महाराज उस स्थानसे सीधे चुँचुड़ामें हमारे घरपर आये। उस समय सेवकके प्रति उनके जिस अप्राकृत स्नेह एवं दिव्य विरहभावको देखनेका अवसर मिला वह अत्यन्त अद्भुत था। उनका सेवक वात्सल्य कोई जागतिक पुत्र, बन्धु आदिके शोक जैसा नहीं था। श्रीमन्महाप्रभुने रामानन्दरायसे प्रश्न किया था—*"दुःख मध्ये कौन दुःख हय गुरुतर?"* राय कहे—*"कृष्णभक्त विरह बिना दुःख नाहि देखि पर॥"* श्रीसुन्दारानन्द प्रभुके सौभाग्यका वर्णन कौन कर सकता है? इस जगतमें हमारे जैसे बद्धजीव इसका वर्णन नहीं कर सकते।

एक बार गुरु-महाराज हमारे घरपर आये। दोपहरका प्रसाद परिवेशन करते समय मैंने पूछा, किसी विशेष सब्जीमें लवण कैसा है, तब गुरु-महाराजने मेरी ओर अवाक् दृष्टिसे देखा और कहा—"मैं तो प्रसाद सेवा कर रहा हूँ।" अर्थात् वे तो कृष्णका अधरामृत सेवन कर रहे हैं, प्राकृत कोई दाल, अन्न नहीं। प्रसादके प्रति उनकी सब समय सेवाबुद्धि रहती थी। हरिनाम करते समय गुरु-महाराजको कभी लेटे हुए या आलस्य अवस्थामें नहीं देखा। सब समय सावधान होकर हरिनाम करते हुए श्रीश्रीराधाकृष्णकी साक्षात् सेवा करते थे।

गुरु-शिष्यका सम्बन्ध नित्य है, जितने परिमाणमें शिष्य गुरुके चरणोंमें समर्पण करता है, उतने परिमाणमें गुरु भी शिष्यको आत्मसाथ करते हैं। हे गुरु-महाराज! आपका अप्राकृत स्नेह पाकर भी मैं उसकी उपलब्धि नहीं कर पायी, विशेषरूपसे आप मुझ जैसी अयोग्या एवं अधमाको भी कृपापूर्वक

उपदेश-निर्देश प्रदान करते थे, जिससे मैं भजनमार्गमें अग्रसर हो सकूँ। इसलिए आज आपके अभय श्रीचरणकमलोंमें मेरी सकातर प्रार्थना है कि आपकी अहैतुकी कृपाकी एक बूँद भी यदि मुझे मिल जाय, अर्थात् नित्यलीलामें नयन मञ्जरी एवं विनोद मञ्जरीके आनुगत्यमें अपनी आराध्या ठाकुरानीकी सेवामें निरत होते हुए भी यदि आप मेरे प्रति विशेष कृपादृष्टि रखते हुए युगलकिशोरकी सेवाके लिए हृदयमें शुभ प्रेरणा, सत्सङ्गके माध्यमसे स्नेह एवं शासन द्वारा मुझ अनधिकारी, अयोग्याको अधिकार योग्यता प्रदान करेंगे, तो मेरा जीवन सार्थक हो जायेगा। हे गुरुदेव! जीवनके अन्तिम क्षणोंमें मैं सर्वदा आपका स्मरण कर सकूँ।

हे गुरुपादपद्म! अन्तमें आपकी शतवार्षिक-आविर्भाव-पूर्तिके अवसरपर आपकी वाणीके द्वारा आपके श्रीचरणोंमें हृदयरूपी पुष्प एवं श्रद्धारूपी अर्घ्य निवेदन करनेका प्रयास कर रही हूँ। *'भक्ति पुष्प कोथा पाइ, भक्ति चन्दन नाइ, कि दिये पूजिब तोमाय?'* नित्य परमाराध्यतम श्रील गुरुपादपद्म! आपकी जय हो! आपकी जय हो! आपकी जय हो!

—श्रीगुरु-वैष्णव-सेवाभिलाषिनी
अधमा उमा

[श्रीश्रीभागवत-पत्रिका, वर्ष-२(२००५ई), संख्या-(७-८)से संग्रहीत अंशसे भी संयोजित एवं पुनःव्यवस्थित]

भक्ति-रस-निर्झर स्रोत श्रील वामन गोस्वामी महाराज

—डा. मधु खण्डेलवाल, (साहित्याचार्या)

श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें अपने शान्त कक्षमें आसीन श्रील वामन गोस्वामी महाराजका जब मैंने प्रथम बार दर्शन किया, तो ऐसा प्रतीत हुआ मानो एक अद्भुत प्रकाश-मण्डल अपनी अदम्य आभा बिखेर रहा हो, अहैतुकी करुणा-वारिका एक विराट सिन्धु तरङ्गायित हो रहा हो, अनन्त अनुभूतियोंको हृदयमें संजोये हुए कोई रस-निधि हो, दार्शनिक वस्तु परक सिद्धान्तोंकी अपराजेय मरीचि-मालाओंसे समन्वित मार्त्तण्ड हो, सुकृतिवानोंके लिए गोलोकीय वार्त्ताओंका अटूट सेतु हो, गाम्भीर्य एवं निर्मल हास्यका अप्रतिम सङ्गम हो, त्रिताप-दग्ध-जनों पर पीयूष वर्षण करता मेघमण्डल हो, हृत्-कर्ण-रसायन कथाओंका पावनकारी सरोवर हो, आर्त्त एवं शरणागतोंको त्राण प्रदान करनेवाला मेखलाकार शिखरोंसे युक्त भूधर हो, भागवतीय अवरोह-पन्थाका अविचल स्तम्भ हो, अभय, अशोक एवं अमृतका पुञ्जीभूत मकरन्द हो, भक्तोंकी वाञ्छाओंको परिपूर्ण करनेवाला कल्पतरु हो अथवा किसी तरुवर (विषय-विग्रह श्रीकृष्ण) के आश्रित लताके (आश्रय-विग्रह राधाके) प्रफुल्लित कुसुमोंकी (सखियोंकी) राग-मञ्जरी हो।

जब मैंने उनके कक्षके द्वार पर प्रवेश किया था तो वे किसी ब्रह्मचारीसे प्रश्न कर रहे थे—'नाम्ना' में कौन-सी विभक्ति होती है? 'भेषज' को हिन्दीमें क्या कहते हैं? ब्रह्मचारीने मुझसे उत्तर देनेके लिए कहा। मेरे उत्तरसे वे सन्तुष्ट थे। मैं उन निर्मल ज्योतिःस्वरूपके तेजसे अभिभूत-सी होती हुई उन्हें निर्निमेष नेत्रोंसे देख रही थी, मेरी आँखोंसे अविरल अश्रुधारा बह रही थी, मैं अवाक् खड़ी थी कि वे

बोले—"माँ! यह भक्तिमार्ग ही ऐसा है, जहाँ हमें भी रोना है, तुम्हें भी रोना है।"

दूसरे दिन श्रद्धालुभक्त अपराह्नमें हरिकथा श्रवणके लिए पुनः उपस्थित हुए, मैं भी पहुँची, परन्तु समस्त कथा बङ्गाली भाषामें चल रही थी। मेरा हृदय अपनी इस अज्ञतापर क्रन्दन कर रहा था और मैं आपनेको कोस रही थी कि उन वात्सल्यमूर्तिने मुझपर अमन्दोदया वर्षण करते हुए पूछा—"कुछ समझमें आया?" मैंने विनम्रतापूर्वक निवेदन किया—"आप हिन्दीमें कथा कहिये।" उन्होंने सुमधुर स्मितके साथ कहा—"Majority is always granted", यह कहने पर भी उन्होंने सम्पूर्ण कथा हिन्दीमें ही कही। इस सञ्जीवनीसे मुझे अपने जीवनकी सार्थकताका अभिप्राय समझमें आया। तभी पाश्चात्य देशकी एक महिला अंग्रेजी भाषामें उनसे कुछ कह रही थी और वे हास्यपरक वाणीमें कह रहे थे—"I do not know English" और कुछ क्षणोंमें ही पाश्चात्य कवि विलियम शेक्सपीयरका अंग्रेजी काव्य धाराप्रवाहमें कहने लगे। उनको रोकनेका सामर्थ्य भला किसमें था? सभी लोग विस्मित होकर हँस रहे थे।

श्रीगौर-पूर्णिमा पर उनके दर्शनके लिए मुझे उनके निजी सेवकने प्रतिबद्ध कर दिया था। अतः मैं रात्रिमें जब उनकी श्रीचरण-पादुकाको प्रणाम करने गयी, तो उन सेवकने मुझसे कहा, "दीदी! आप आयी नहीं, गुरु-महाराजने आपको आज तीन बार याद किया था।" इस कथनने मेरे भविष्यकी भूमिका तैयार कर दी, मुझमें मानो परम चेतनाका सञ्चार होने लगा, ग्रन्थ-अनुशीलनमें और रुचि बढ़ गयी, मेरे अनर्थ दूर होनेका समय आ गया था। योग्य-अयोग्यका विचार न करनेवाली उनकी अद्भुत महावदान्यता प्रकट हो रही थी।

वे साक्षात् ज्ञानस्वरूप, त्रिकालज्ञ एवं समस्त गुणगणधाम थे। अपने आचरणसे उन्होंने भजन-परिपाटीकी शिक्षा दी थी। अपनी अत्युज्ज्वल कान्तिसे वे सभीको आकर्षित कर लेते थे। शब्द-शब्द एवं पद-पद पर स्तम्भित कर देनेवाली उनकी प्रज्ञा, मेधा एवं स्मृति, हृदयको द्रवीभूत कर देती थीं। मेरे चित्त-प्राङ्गणमें उनकी जन-जनके प्रति स्वस्ति-भावना, जन्म-जन्मान्तरमें नाम-जपकारीकी परम सिद्धि एवं निःस्पृहताकी सान्द्रता उद्वेलित होती रहती हैं, उन हिलोरोंसे मुझे उनके विश्वव्यापी संरक्षणमें भक्ति-विनोदन तो परिलक्षित होता है, परन्तु हृदय उनकी अतल गहरायीकी थाह न पाकर बिलखता रहता है, नहीं जानती क्रन्दनके किस स्तरपर मुझे उन करुणा-वरुणालयका कृपा-कटाक्ष प्राप्त होगा।

महागुणों द्वारा विभूषित वे भगवत्-तुल्य महाभागवत थे। परदुःखदुःखी, परदुःखकातर वे जैवधर्म—कृष्णोन्मुख वृत्तिके सहायकके रूपमें गाँव-गाँव, घर-घर जाते थे, जहाँ कोई प्रचारक जानेके लिए सोच भी नहीं सकता था। बिना किसी सूचनाके, बिना किसी आडम्बरके, अमानी-मानद भावसे जब वे दीन-हीनोंके घरमें उपस्थित होते, वहाँ पर सुलभ सामग्रीसे प्रसाद पाते, साधारण चटाई पर शयन करते, तो वे सभी उन परमहंसकी साधुता, वैष्णवता एवं निष्कपटतासे आत्म-विक्रीड़ित हो जाते थे। अश्रु-स्नात एवं भाव-ऋद्ध ये ग्रामीण आज भी उनकी विरह-स्मृतिमें पुलकान्वित होते रहते हैं।

गुरुदेव श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजका पाश्चात्य-प्रचार बहुत बढ़ गया था, और जो दर्शन मुझे सर्वदा सुलभ रहते थे, वे न मिल पानेके कारण मेरा त्रास भी बहुत बढ़ गया था। दिसम्बरके शीतकालीन अवकाशमें मैं शेवड़ाफुलिमें श्रील महाराजके दर्शनके लिए जाती थी और उन परमाराध्यतमके दर्शन करके सान्त्वना प्राप्त कर लेती थी। इसी मध्य गुरु-पूर्णिमाके अवसर पर मैंने अपने गुरुदेवसे जिज्ञासा की कि "हे गुरुदेव! आपका और मेरा क्या सम्बन्ध है?" मुझे एकटक अवलोकन करते हुए उन्होंने उत्तर दिया—"रूप-रघुनाथ जैसा।" मैंने पुनः कहा—"गुरुदेव! मुझे श्रील वामन गोस्वामी महाराज बहुत स्नेह-....।" मै अपनी बात पूर्ण भी न कर पायी थी कि

गुरुदेवने कहा—"बेटी! तुम बहुत भाग्यशाली हो कि वे तुमसे इतनी स्नेह-प्रीति करते हैं।" आहा! मुझे मेरे गुरुदेवने स्पष्ट रूपसे इङ्गित कर दिया कि वैष्णव ठाकुरोंका हृदय एक ही होता है, वे सभी नित्यानन्द ठाकुरके प्रकाश हैं, वे सभी राधाजीकी नख-मणिकी चन्द्रिकाएँ हैं, वे सभी अपने-परायेका विचार न करके शिष्योंका परम कल्याण चाहते हैं। इसी सन्दर्भमें मैं यह निवेदन करना चाहूँगी कि प्रपूज्यचरण श्रील भक्तिश्रीरूप सिद्धान्ती गोस्वामी महाराजने भी यदि मुझपर ऐसा कृपा-वर्षण न किया होता, तो क्या मेरे लिए वेदान्तसूत्रका अनुवाद करना सम्भव होता?

अपने जीवन-कालमें श्रील वामन गोस्वामी महाराजने विरुद्धाचारियोंका कभी समर्थन नहीं किया, सर्वकाल नाम-रसमें तन्मय रहते और उच्चस्वरसे सङ्कीर्तन करते। उनके प्रबन्धोंमें दार्शनिक दृष्टिसे शास्त्रीय आलोचना, औपनिषदिक प्रमाण एवं गुरुवर्ग-वाणीका विलास प्राप्त होता है। उनके वक्तव्य मित-सार होते। अयोग्य एवं अशोध्यको कभी भी निराश न करनेवाले वे परम मङ्गलमूर्तिस्वरूप थे। शैशव कालसे ही तो उनका जीवन वैष्णवोचित एवं समष्टि-मङ्गलके लिए रहा। वे प्रवीण महात्मा ऐसे उपादेय मानस-संस्थान थे, जहाँ गुरु-शुश्रूषा, गौर-गदाधर उपासना, युगल-किशोर आराधना, ब्रज-नवद्वीप-श्रीक्षेत्र आदि धामोंका प्रकृत स्वरूप, पथ-परिक्रमाका महत्व, वैष्णव-सेवा, ग्रन्थ अनुशीलन, वृन्दा-पूजन, अष्टकालीय लीलाओंका स्मरण, समकालीन आचार्योंके प्रति समतुल्य आदर-भाव, अर्चा-विग्रहकी अर्चन-प्रणाली, मानव-जातिसे प्रेमका असंकुचन आदि सभी वैष्णव-व्यवहार सीखा जा सकता था अथवा आज भी उनका आदर्शमय जीवन प्रकाश-स्तम्भवत् हमारे सम्मुख विराजमान है।

एकबार परमपूज्य श्रीप्रेमानन्द प्रभुने मुझसे कहा कि आजकल गुरु-महाराज जयपुरमें हैं। मैं एक विवाह अनुष्ठानमें वहीं थी। यह समाचार मेरे हृदयको असीमित आनन्द देनेवाला था। वे तालकटोरा स्थित भवनमें वास कर रहे थे। मैं अपनी सखीके साथ इस भवनका संधान करती रही, परन्तु कोई संज्ञान न पा सकी। विकल-चित्तसे श्रीगोविन्ददेवजीके मन्दिरमें आ गयी। चार परिक्रमा पूर्ण करके मन्दिरकी दहलीज पर अश्रुपूरित नेत्रोंसे प्रणाम किया। मेरे जैसा अभागा कौन होगा, उनके दर्शन कैसे करूँ? तभी हृदयसे एक आवाज आयी कि एक बार परिक्रमा और कर ली जाय। परिक्रमा करते हुए जैसे ही श्रीगोविन्ददेवजीके सम्मुख पहुँची, वहाँ पर श्रीशुभकृष्ण ब्रह्मचारी एवं श्रीअनङ्गमोहन ब्रह्मचारी खड़े थे। हर्षातिरेकसे मैंने उनसे निवेदन किया—"हमें महाराजजीके पास पहुँचा दो।" वे अविलम्ब ही हमें उनके श्रीचरणोंमें ले गये। मेरी अविरल अश्रुधाराएँ उन्हें अनन्त दण्डवत् प्रणाम करने लगीं। उनके श्रीमुखारविन्द पर अपार शान्ति एवं निर्मल हास्यकी छटा थी। मैं अवाक् थी, परन्तु अश्रु विराम नहीं पा रहे थे। मैं रोती जा रही थी। वे अपलक दृष्टिसे देखते जा रहे थे। १० मिनट, १५ मिनट, लगभग २० मिनट बाद उन्होंने मेरी सखीसे पूछा, "यह क्यों रो रही है?" उसने कहा, "इसे कुछ भाव आ गया होगा।" उन्होंने मुझसे कहा, "कल प्रातः चार बजे आना।" मानसरोवर बस्तीसे तालकटोरा आना सम्भव न था, पर गुरुवाक्य तो अव्यर्थ होते हैं, अकल्पनीय रूपसे गाड़ीकी व्यवस्था हो गयी और मैं वहाँ प्रातः चार बजे पहुँच गयी। उन्होंने मुझे भजन-प्रणाली सिखायी, राधाकृष्ण और गौर-गदाधरकी महिमा समझायी। एक साधकके जीवनमें क्या इतना ही पर्याप्त नहीं है? सौभाग्यकी चरमातिशयता इससे अधिक क्या हो सकती है? इसीके बल पर तो मैं सांसारिक भयंकर विपदाओंको सह पाती हूँ अथवा उन्हें पार कर जाती हूँ। उनकी अमृत-निर्झर-वाणी मेरे हृत्-क्रन्दनका सिञ्चन करती रहे; मेरे मानस-मन्दिरमें उनकी अनुभव-वेद्य मुस्कान सदैव उदित होती रहे—यही उन महाभागवतके श्रीचरणोंमें प्रार्थना है।

श्रील महाराजजी हृदयमें अपार प्रेमका प्लावन लिये श्रीगौर-गदाधर एवं श्रीश्रीराधाकृष्णका गुणानुवाद

करते थे, तो दूसरी ओर साधक-साधिकाओंके जटिल प्रश्नों एवं व्यावहारिक समस्याओंका सुचारु रूपसे निराकरण कर उनकी भक्ति-लताका अभिसिञ्चन करते थे। "आजकल सद्गुरु कहाँ मिलते हैं?"—यह प्रवाद उनके दर्शन एवं आचरणसे सदा-सदाके लिए निरस्त हो चुका है। उनके उच्च आदर्श तथा भजनकी सिद्ध अवस्था—ये दोनों मेरी हृत्-तन्त्रीको सदैव आकर्षित करते रहते हैं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि मेरी भाव-समृद्धिका कोषागार उनकी चिदानन्दमयी कृपादृष्टिसे जन्म-जन्मान्तर तक परिपूर्ण एवं अक्षय रहेगा। भगवान् श्रीकृष्णने अपनी गुणावलीका उनमें सञ्चार करके उन्हें आत्मतुल्य बना लिया था।

एक बार मैं अपने माता-पिताके साथ नवद्वीप पहुँची। हमें नवद्वीपसे हावड़ा स्टेशन आते समय शेवड़ाफुलि उतरना था। माता-पिता दूसरे कम्पार्टमेण्टमें थे। क्लान्तिके कारण शेवड़ाफुलि उतरनेका उनका विचार निश्चित न था, परन्तु वे उतर गये। भीड़की अधिकताके कारण न तो मैं उतर पायी और न ही यह जान सकी कि वे उतरे हैं या नहीं। देखभर लेती तो अगले स्टेशन पर उतर कर दूसरी गाड़ी पकड़कर शेवड़ाफुलि पहुँच सकती थी। अतः भ्रमित-सी हावड़ा स्टेशन ही पहुँच गयी। उन दोनोंके दिखायी न देनेपर Announcement करवाने लगी। अन्ततः घबरायी हुई शेवड़ाफुलि वाली ट्रेन पर चढ़ गयी। टिकट लेना भूल ही गयी। स्टेशन पर उतरते ही श्रीपाद भक्तिसार महाराजको देखा, जो श्रील महाराजजीके निर्देश पर मुझे लेने आये थे। उन्होंने कहा था "वह अवश्य आएगी।" वहाँ जाकर देखा कि श्रील महाराजजी एवं माँ-पिताजी निश्चिन्त होकर मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। चित्तकी विकलता दूर हुई। सभीका हृदय प्रफुल्लित था। श्रील महाराजजीने मुझे निज हस्ताक्षराङ्कित एक चित्र-छवि प्रदान की, जिसे प्राप्तकर मुझे सम्बन्ध-ज्ञानकी अनुभूति हुई और आत्मीयताकी गहनताकी भी। हाँ, हाँ, मैं उनकी छत्र-छायासे कभी वञ्चित नहीं हो सकती। शास्त्रमें कहा गया है कि गुरु, भगवान्, कृष्ण-प्रेष्ठके लिए यदि हमारे मन, तन, हृदय, प्राण पूर्णरूपेण समर्पित हैं, तो वे हमारी अवहेलना नहीं करते।

मुझे दृढ़ विश्वास है कि गुरुपादपद्म श्रील नारायण गोस्वामी महाराज द्वारा उपदिष्ट-निर्दिष्ट अनुवाद-सेवा तथा गुरुपादपद्म अभिन्न श्रील वामन गोस्वामी महाराज द्वारा दिग्दर्शित भजन-प्रणालीका निर्वाह करते हुए मुझे जन्म-जन्मान्तर तक उनका सान्निध्य अवश्य प्राप्त होता रहेगा।

एक वर्ष श्रीगौर-मण्डल परिक्रमाके अवसर पर नवद्वीपमें मैं उनके कक्षमें बैठी थी, उसी अवसर पर गुरुपादपद्म श्रील नारायण गोस्वामी महाराजका उनके कक्षमें आगमन हुआ और अपनी सुमधुर वाणीमें उन्होंने श्रील वामन गोस्वामी महाराजका अभिवादन करते हुए कहा 'श्रीवामनाय नमः'। प्रत्युत्तरमें श्रील वामन गोस्वामी महाराजने अपनी सुस्निग्ध वाणीमें कहा 'श्रीनारायणाय नमः'। आहा! कैसा परस्पर समादर! कैसी अनुरक्ति! कैसी भावाभिव्यक्ति! कैसा सौहार्द! कैसा बन्धुत्व! मैं चमत्कृत हो उठी।

सन् २००२ ई. मई मासमें श्रील महाराजजीका ब्रजागमन हुआ। उस दिनके कार्यक्रममें वे वृन्दावन-दर्शन करके गोवर्धन मठमें पहुँचने वाले थे। बहुत-से भक्तगण वहाँ पहुँचे थे, मैं भी लगभग चार बजे वहाँ पहुँच गयी। अचानक ही उन्होंने अस्वस्थ लीला की। ग्रीष्मकी अधिकताके कारण उनकी नासिकासे रक्त प्रवाहित हो चला था। सेवक प्रभु द्वारा सूचनी आयी कि महाराजजीको पूर्ण विश्रामकी आवश्यकता है, अतः आजकी बेलामें दर्शन सम्भव नहीं है। निराश मनसे बहुत-से भक्त लौट गये। दर्शन किये बिना मैं तो लौटने वाली नहीं थी। अतः कुछ भक्तोंके साथ मैं भी प्रतीक्षा करती रही, तभी धुँधमें प्रकाशकी एक किरण शुभ समाचार लायी कि महाराजजीने भक्तोंको अपने कक्षमें बुलाया है। हर्षातिरेकके साथ हम सब उनके कक्षमें पहुँच गये। पूज्या श्रीयुक्ता उमा दीदी भी वहीं थीं। आज श्रील महाराजजीने मुझपर पुनः अनुग्रह-वर्षण

किया। अपलक दृष्टि एवं सुनिर्मल स्मितसे वे मुझे देखने लगे, मानो मेरे हृदयके विरह-तापको दूर कर रहे थे अथवा जन्म-जन्मान्तरके कल्मषको, मानो भक्तिलताके बीजका अभिसिञ्चन कर रहे थे अथवा गुरुदेवकी मनोऽभीष्ट सेवा-वृत्तिका, मानो कृपामृत-वर्षणसे मेरे अज्ञान-तिमिरका छेदन कर रहे थे अथवा मेरी अनर्थगत परम्पराका। सहसा कहने लगे—"हमने श्रीलोकनाथ गोस्वामीकी समाधि पर तुम्हारा नाम देखा था—मधु खण्डेलवाला (?)!" अब पूज्या उमा दीदी मुझे डाँटते हुए कहने लगीं—"तुम यहाँसे उठो। तुम्हारे रहने पर वे किसी औरसे बात नहीं करते।" मैंने दीदीकी बात मान ली। बादमें जब मैंने दीदीसे इस विषयमें पूछा, तो उन्होंने स्वयं ही उत्तर दिया कि गुरुवर्ग अपने शिष्योंको पहचान लेते हैं। इतना सुनना तो मेरे लिए पर्याप्त था।

ऐसी-ऐसी अद्भुत लीलाएँ हैं गुरु-द्वयकी। मैं तो जातिस्मर नहीं हूँ, वे दोनों तो त्रिकालज्ञ हैं। इन घटनाओंका स्मरण कर-करके मेरा हृदय अहर्निश क्रन्दन करता है, बिलखता है, सान्त्वना देनेपर भी कहाँ मानता है! ओह! उन दोनोंकी चरणरजमें मेरा नतमस्तक अजस्त्ररूपसे आलोड़ित होता रहे, ऐसी मेरी दैन्य प्रार्थना है। गुरु-द्वयके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करनेके लिए न तो मेरे पास भाव हैं और न ही भाषा, एक दम्भ मात्र है, जो व्यक्त हो गया। वे दोनों ही निजगुणोंसे मेरे भावोंको अनुग्रहपूर्वक ग्रहण कर लेंगे और त्रुटियोंको क्षमा कर देंगे। शिशुकी तोतली बोली क्या माता-पिताका स्नेहाकर्षण नहीं करती?

एक बार श्रील महाराजजीको पुष्पमाल्य अर्पण करनेकी मेरी इच्छा हुई। मैं श्रीनृसिंहपल्लीसे सर्वविध सुन्दर एक पुष्पमाला ले आयी और उनको पहनाने लगी कि कहने लगे—"मैं प्रसादी माला ही ग्रहण करता हूँ।" मैंने कहा—"यह पुष्पमाल्य श्रीनृसिंहदेवका ही निर्माल्य प्रसाद है।" तब सन्तुष्ट होकर उन्होंने उसे शिरोधार्य किया और बादमें धारण किया। पग-पग पर आचरणीयगत शिक्षाएँ प्रदान करनेका यह भी एक क्रम था। उन श्रुतिधरको वेदपुराण, उपनिषद् एवं गौर-वाङ्मय ही कण्ठस्थ हो, ऐसा नहीं है, एक बार मैंने श्रील महाराजजीसे 'रसका आस्वादन करते ही रहना चाहिए'—इस अर्थसे सम्बन्धित प्राकृत साहित्यके श्लोककी एक पंक्ति कही—'पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा'। अरे! यह क्या! उन्होंने तो इस श्लोकके चारों चरण ही सुना दिये। कैसा अगाध पाण्डित्य था उनका!

वे महामहिम, परम भागवत गौर-गोविन्दकी उपासनाके पारद पंखोंपर विराजमान होकर अपने नित्यधाम गोलोकमें चले तो अवश्य गये हैं, परन्तु उनकी अप्राकृत एवं दिव्य छवि शाश्वत रूपसे सब भक्तोंके हृदय-पटल पर विराजमान है। 'वस्तुतत्त्व'के सम्बन्धमें उनकी अनुभूति-प्रवण वाणीकी गूँज आज भी भक्त-परम्परासे प्रतिध्वनित हो रही है, कलि-दोषोंसे तप्त एवं आहत भक्तों पर उनका ज्ञानामृत ग्रन्थोंके रूपमें आज भी कृपा-वर्षण कर रहा है, सर्वमाङ्गल्यकी उनकी कामना भक्तोंके हृदय-पुष्पोंमें मकरन्द बनकर आज भी सुवासित हो रही है, भक्तोंके उद्वेलित हृदयोंको उनकी निर्मल स्मित कान्ति आज भी अबाधित रूपसे परम आत्मीयता प्रदान कर रही है। उनकी शास्त्रीय पारदर्शिता, प्राञ्जलता एवं सान्द्रता हिम-शिखरोंके समान आज भी मायिक जगत् द्वारा प्रदत्त निर्मम बाधाओंसे हमारी रक्षा कर रही हैं। उनके हृदयकी प्रेम-वन्याके सीकर-कण(ओसकण) आज भी प्लावित हो रहे हैं, जिसमें हम सब अवगाहन कर सकते हैं—यही मेरा अभीष्ट है। मैं मात्र कृपा-लेशकी प्रार्थना नहीं करती, अपितु उस कृपा-प्राप्तिकी योग्यताकी भी प्रार्थना करती हूँ। जय हो! जय हो!

पूज्य श्रीभक्तिवेदान्त गोविन्द महाराजने मुझे श्रील महाराजजीके विषयमें लिखनेके लिए कहा, तदर्थ मैं उनकी चिर ऋणी रहूँगी। अनन्त काल तक यह लेखनी उनका गुणगान करती रहे—श्रीराधागोविन्दके चरणोंमें यही प्रार्थना है।

श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजके अप्राकृत जीवनादर्शकी शिक्षाप्रद कतिपय मधुर-स्मृतियाँ

श्रीपाद रसिकरञ्जन दासाधिकारी

(दुमका, झाड़खण्ड)

अर्थ(धन)के विनिमयसे ग्रन्थादिका संग्रह सम्भव नहीं

मैंने एकबार पूज्यपाद वामन महाराजको मेरे लिए कुछ ग्रन्थ खरीदने हेतु १०० रुपये दिये थे। उन्होंने कोलकातासे श्रीमद्भागवत दशम-स्कन्ध, श्रीहरिनाम-चिन्तामणि, दामोदराष्टकम् तथा और भी अनेक ग्रन्थ लाकर मुझे दिये थे, जिन सबका नाम वर्तमानमें मुझे स्मरण नहीं है। मेरे मनमें आया कि इन समस्त ग्रन्थोंका मूल्य तो १०० रुपयेसे अधिक होगा। अतः कितना अधिक है, जाननेके लिए मैंने पूज्यपाद महाराजको पत्र भेजा जिसके उत्तरमें उन्होंने लिखा—"मैंने आपके लिए ग्रन्थ खरीदकर एक महा-अनर्थकी सृष्टि की है। अर्थ(धन)के विनिमयसे क्या ग्रन्थादि(अप्राकृत परब्रह्मके शाब्दिक अवतार) को संग्रह किया जा सकता है? प्राकृत अर्थ द्वारा क्या अप्राकृत अमूल्य सम्पद संग्रहीत हो सकती है? *'अप्राकृत वस्तु नहे प्राकृत गोचर'*—यही इस सम्बन्धमें यथार्थ प्रमाण है।" उनकी इस लेखनीमें कितना स्नेह एवं कितने मूल्यवान उपदेश निहित हैं, यह सोचकर हम अवाक् हो जाते हैं। शुद्ध-वैष्णवोंमें कोई व्यापारिक लेन-देनका विचार ही नहीं रहता। अप्राकृत स्नेह, भक्ति—इन सबका वास्तवमें ही कोई जागतिक-मूल्य निर्णय नहीं किया जा सकता।

क्या सर्प भी भागवत सुननेकी इच्छा करता है?

सन् १९६६ मार्गशीर्ष मासकी एक घटना है। विभिन्न स्थानों पर प्रचार करते समय एक बार वीरभूम जिलेके खयरासोल थानेके अन्तर्गत 'सगरभाङ्गा' नामक ग्राममें मेरी दीदीके घरमें पूज्यपाद श्रील वामन गोस्वामी महाराजका शुभागमन हुआ। उनके घरमें सायंकाल हरिकथाका आयोजन हुआ था। तब उस क्षेत्रमें बिजलीकी कोई व्यवस्था नहीं थी, इसलिए लालटेन लाइटमें हरिकथाका अनुष्ठान चल रहा था। परमपूजनीय श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज अपने स्वभावसुलभ ढङ्गसे हरिकथाका परिवेशन कर रहे थे। अचानक कहाँसे एक विराट गोखर विषधर सर्प आ गया। वह सर्प महाराजके सम्मुख पास ही फन उठाकर खड़ा हो गया। हम सब अत्यन्त भयभीत हो गये कि कहीं यह महाराजको डंस न ले। अन्य कोई-कोई उसे मारनेकी चेष्टा करने लगे। इससे वहाँ शोरगुल मच गया। परन्तु पूज्यपाद महाराजने सभीको इस विषयमें सावधान कर कहा—"आपलागोंके समान ये (नागराज) भी भागवत-कथा सुनने आये हैं। इनसे भयभीत होनेका कोई कारण नहीं है। यह सर्प आपकी कोई हानि नहीं करेगा। आप सब लोग शान्त होकर बैठ जाएँ। इसे कोई भी आघात करनेकी चेष्टा न करें। मैं आपलोगोंको अभय प्रदान कर रहा हूँ।" श्रील महाराजके इस प्रकार कहने पर सभी श्रोता शान्त होकर अपने-अपने स्थानपर बैठ गये। श्रील महाराज हरिकथा कहने लगे। वे सर्प-महाशय बीच-बीचमें अपना फन हिला रहे थे। महाराज आँखें बन्दकर हरिकथा परिवेशनमें निमग्न रहे। इस प्रकार प्रायः १० मिनट हरिकथा श्रवणकर वह सर्प धीरे-धीरे अन्यत्र चला गया। श्रोतागण पुनः बेचैन हो उठे कि कहीं उसके द्वारा बादमें कोई अनर्थ न हो जाय। श्रील महाराजने पुनः उन सभीको शान्त रहनेके लिए कहा। किसीकी भी कोई क्षति न कर रातके अंधेरेमें

वे सर्प दृष्टिसे अगोचर हो गया। इस घटनाको मैंने अपनी आँखोंसे देखा है। घटनासे हम विस्मित हो गये—"क्या सर्प भी भागवत सुननेकी इच्छा करता है?" महाराजको इस विषयमें पूछने पर उन्होंने कहा—"ये सर्पाकार होनेपर भी कोई विशेष साधक हो सकते हैं। आपलोग जब बेचैन होकर शोर मचा रहे थे, वे तनिक भी विचलित नहीं हुए। उनमें कोई हिंसा प्रवृत्ति ही नहीं थी।" श्रील महाराज सहज ही उनको समझ गये थे। ऐसा कहा भी जाता है 'जौहरी रत्नको पहचानता है।' हम केवल बाह्यदृष्टिसे एक गोखर साँप देख रहे थे, किन्तु महाराज बाह्य आकार न देखकर उसका यथार्थ स्वरूप दर्शन कर रहे थे। पूज्यपाद महाराजसे भागवतकथा श्रवणकर वह सर्प धन्य हो गया था। यही उनका वैशिष्ट्य है। [अथवा] यह सर्प कोई और नहीं, स्वयं अनन्तदेव आकर अपने भक्तकी महिमा प्रकाशित कर गये।

रसिकशेखर श्रीकृष्णके पार्षदोंमें अतुलनीय रसिकता-बोध

श्रील गुरुमहाराज [श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज]के प्रकटकाल की एक घटना है। मेरे एक गुरुभ्राता, जिनका नाम अभी मैं स्मरण नहीं कर पा रहा हूँ, नवद्वीप मठमें अवस्थान कर रहे थे। वे युवक होनेपर भी आँखोंसे कुछ कम देखते थे। पूज्यपाद वामन महाराज प्रसाद सेवा करके कहींपर किसी कार्यके लिए जायेंगे, इसलिए उनके प्रसादकी थाली प्रस्तुत कर वे गुरुभ्राता पहरा दे रहे थे, जिससे कुत्ता मुँह न लगा दे। तब मठके चारों ओर प्राचीर(चारदीवारी)का कार्य सम्पूर्ण नहीं हुआ था, इसिलए बीच-बीचमें कुत्ते आकर उत्पात मचाते थे। इतनेमें श्रील वामन महाराज आकर आसन ग्रहणकर प्रसाद सेवा करने लगे। उस गुरुभ्राताने कम दृष्टिशक्तिसे देखा कि कोई आया है, इसलिए पूछा—"कौन, वामन महाराज?" महाराज प्रसाद पाते-पाते किसी चिन्तामें मग्न थे, इसलिए उस गुरुभाईकी बात उनको सुनायी नहीं दी। इधर बारम्बार 'कौन' प्रश्नका उत्तर न पाकर वह सोचने लगा कि निश्चय ही कुत्ता आकर भोजन कर रहा है। तब वह क्रोधपूर्वक पासमें रसोईके ईन्धनकी एक लकड़ी हाथमें लाकर उसीसे कुत्ता समझकर मार बैठा। वह प्रहार जाकर महाराजकी नाकमें लगा जिससे श्रील महाराजकी नाकसे तत्क्षण ही भीषण रक्तपात होने लगा। तब श्रील महाराजके कण्ठसे 'उफ्' शब्द सुनकर वह गुरुभ्राता समझ गया कि महा अनर्थ हो गया है। उस समय महाराजकी चिकित्साके लिए सभी बेचैन हो उठे। गुरुमहाराजने उस गुरुभ्राताकी आँखोंकी चिकित्सा करायी। मोटे लेन्सका चशमा लग जानेपर उसकी नजर साफ हो गयी। किन्तु श्रील वामन महाराजको उस नाकपीड़ाके कारण बहुत दिनों तक कष्ट हुआ था। पत्रालाप करते हुए मेरे द्वारा उनकी नाककी अवस्था पूछने पर उन्होंने जो उत्तर दिया था, उसे पाठ करने पर आज भी मैं हँसीको रोक नहीं पाता। उनका अत्यन्त रसिकता-बोध मुझे सदैव विमुग्ध करे रखता। यहाँपर उस पत्रका कुछ अंश उल्लेख कर रहा हूँ।

"मेरी 'नाकका असुख' ठीक हो गया है। शूर्पनखाकी नाक काटी गयी थी, पर मेरी नाक टूट गयी थी। जैसा भी हो, नाक कटने, नाक-कान कटनेसे नाक टूटनेको अच्छा मानता हूँ। नाक-कान कट जानेसे[अर्थात् लज्जाहीन हो जानेसे] लोग नाकको भूमिपर रगड़कर दण्ड देते हैं। जब कि नाक टूट जाने पर उसे देखकर लोग नाक सिकोड़ते हैं। दबी-नाकवाले व्यक्तिको देखने पर भी लोग नासिका कुञ्चन करते (सिकोड़त) हैं। जो भी हो, मेरी नाक टूटनेके क्षेत्रमें शल्य चिकित्सकोंने मेरी प्रार्थना नाकच (नकारा) नहीं की अथवा उसके लिए मुझे नाकानि-चुबानि खानी नहीं पड़ी (अर्थात् असुविधा नहीं सहनी पड़ी) है अथवा उन्होंने मुझे नाकाल (त्रसित) नहीं किया है। मैं मन-ही-मन सोच रहा

था कि नाक टूट जानेके बाद मेरे नाकीसुर (नाकसे निकलने वाले सुरमें) कुछ परिवर्त्तन [सुधार] होगा, परन्तु हाय! वह दोगुना बढ़ गया है। अभी मेरी नाकीसुर या गधे जैसी आवाज सुनकर लोग मुझे 'नाकेश्वरी' सोचकर मेरा वध न कर डालें—यही आशंका है। 'नाकेश्वरी' एक प्रकारके चीतेका नाम है। तिलक करके बैठे रहने पर हो सकता है तिलक-विरोधी लोग मुझे चीता समझकर यमालयमें भेज सकते हैं।"

पत्रमें उनकी भाषा विशेष ध्यान देने योग्य है। 'नाक' शब्दके साथ बङ्गला भाषामें जितनी बातें प्रचलित हैं, उन्होंने उन सबका यहाँपर उल्लेख किया है। ऐसी रसिकता साधारण देखी नहीं जाती है। रसिकशेखर श्रीकृष्णके पार्षदोंमें रसिकता-बोध अतुलनीय है। मेरे पास श्रील महाराजके द्वारा लिखित जितने भी पत्र हैं, उनमें पद-पदमें उनकी जो रसिकता व्यक्त होती थी, उसमें अति सुन्दर पारमार्थिक वार्त्ता रहती थी, वह सचमुच अतुलनीय है—अन्यत्र देखी नहीं जाती है।

रसिकताके छलसे स्वरूपका परिचय

श्रीधाम नवद्वीप स्थित श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठसे वैष्णवगण प्रचारके लिए बीच-बीचमें दुमका क्षेत्रमें आते थे और हमारे धादिका ग्राममें पदार्पण करते थे। उनके उत्तम निवासकी आवश्यकताको समझकर मैंने घरका निर्माण आरम्भ किया था। इस संवादको पत्रके माध्यमसे मैंने पूज्यपाद श्रील वामन गोस्वामी महाराजको अवगत कराया, तो उन्होंने कृपालिपि प्रदान कर लिखा था—

"धादिका आश्रममें श्रीवामनके विश्राम और भजन-साधनके लिए क्या एक कुटीर भिक्षास्वरूप प्राप्त होगी? अवश्य ही मैं त्रिपाद भूमि माँगनेके छलसे समस्त आश्रम या आश्रमस्थित सभीको ग्रास नहीं करूँगा—यह पहलेसे ही शपथ करके कह सकता हूँ। मैं निश्चितरूपसे भिक्षा-प्राप्तिसे वञ्चित नहीं होऊँगा, क्योंकि मैं वनमाली श्रीहरिकी दासी—कनकद्युति श्रीराधारानी तथा रसिकचूड़ामणि श्रीकृष्ण और उनकी प्रिया श्रीतुलसीकी प्रधानताको स्वीकार करता हूँ एवं उनके वास्तव तत्त्वको अनुभव करनेके लिए चेष्टित हूँ। थोड़ा-सा रहनेका स्थान मिल जानेपर अन्य सब कुछ संग्रह करनेके लिए कष्ट नहीं होगा, क्योंकि नींबू, नमक मेरे साथ रहेगा, केवल चावल, दाल, सब्जी, मसाला आदि गृहस्थोंसे माँगकर ले सकता हूँ।"

पत्रमें श्रील महाराजकी रसिकता देखकर आज भी मैं अत्यन्त मुग्ध और पुलकित हो जाता हूँ। क्या अद्भुत भाषा ज्ञान! यहाँ पर बताना चाहूँगा कि—मेरे ग्रामका नाम 'धादिका' है, मेरे बहनोईका नाम 'वनमाली प्रभु' है, उनकी पत्नी अर्थात् मेरी बड़ी दीदीका नाम 'हरिदासी' है, बहनका नाम 'कनकलता' है, मेरा नाम 'रसिकरञ्जन' है और मेरी पत्नीका नाम 'तुलसी' है। ये सब विष्णुमन्त्रसे दीक्षित हैं। इनमें-से प्रथम चार जन श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके आश्रित हैं और मेरी पत्नी श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजकी आश्रिता है। श्रील महाराजने अपने उस पत्रमें इन सभीके नामोंका उल्लेख करते हुए लिखा था—"मैं वनमाली श्रीहरिकी दासी—कनकद्युति श्रीराधारानी और रसिकचूड़ामणि श्रीकृष्ण, उनकी प्रिया तुलसीजीकी प्रधानताको स्वीकार करता हूँ।" पुनः रसिकताके बहाने उन्होंने यहाँ पर अपने स्वरूपका आभास भी किस प्रकारसे व्यक्त कर दिया—"मैं वनमाली श्रीहरिकी दासी हैं।" अपूर्व! उनका सब कुछ अपूर्व, अद्भुत है। मुझमें इतना भाषा-ज्ञान नहीं है कि मैं उनकी समस्त कथाओंको यथार्थ रूपसे समझ सकूँ।

श्रील गुरुमहाराजके पास अभी धन नहीं हैं

पूज्यपाद श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज पैदल चलकर बङ्गालके विभिन्न ग्रामोंमें प्रचार करते थे। उन दिनों भिक्षा संग्रह करना अत्यन्त कष्टपूर्ण था। फिर भी जब ५००/६०० रुपये संग्रह हो जाते, तब वे श्रील गुरुमहाराजके निकट मनी आर्डर (Money Order) भेजते थे। मैं डाकखानेमें जाकर मनी आर्डर कर देता था। वे बोलते थे—'श्रील गुरुमहाराजके पास अभी धन नहीं हैं।'

'क्या मैं अस्पृश्य हूँ?'

एक दिन पूज्यपाद वामन महाराजके साथ मैं और श्रीपाद धनञ्जय प्रभु मन्दार दर्शन करनेके लिए गये थे। वहाँ मन्दार पर्वतकी चोटी पर जाकर दर्शन करनेके बाद मन्दिर आकर हमने अन्न-प्रसाद सेवा की और धर्मशालामें विश्रामके लिए ठहरे। रातको पण्डाजीने हमें पूड़ी-सब्जी प्रसाद सेवा करनेके लिए दी एवं विश्रामके लिए कम्बल, चादर देकर बिछौना प्रस्तुत कर दिया। धनञ्जय प्रभु और मैं बैठे रहे, कारण—महाराजजीके पास एक ही बिछौने पर शयन करनेके लिए हमें संकोच हो रहा था। यह देखकर महाराजजीने कहा—"क्या मैं अस्पृश्य (अछूत) हूँ, मेरे पास सो नहीं सकते?" तब हम बाध्य होकर उनके पास सो गये। अगले दिन मन्दारसे बस द्वारा दुमका पहुँच गये। परन्तु वहाँ कोई रिक्शावाला नहीं था, हड़ताल पर थे। दुमकासे धादिका ८ किलोमीटर दूर है, कैसे जाएँ—मैं सोच रहा था कि तभी पूज्यपाद महाराजने कहा—"क्या हमारे पैर नहीं हैं?" तब पैदल चलते हुए हम धादिका ग्राममें पहुँच गये। पूज्यपाद महाराज इतनी तेज चलते थे कि उनके साथ हमें दौड़ना पड़ता था।

[आविर्भाव-शतवार्षिकी-स्मारक-स्मरणिकासे अनुदित]

श्रीपाद गोवर्धन बाबाजी महाराज

(गोवर्धन)

किसी पर शासन करनेका अधिकार मुझको नहीं है

श्रील गुरु महाराजजी बहुत निरीह थे। श्रील प्रभुपादजीके आदर्शानुसार सभी शिष्योंमें प्रभु बुद्धि करते थे। गुरु महाराज कहते थे—"तुम सब मेरे प्रभु हो। मैं तुम लोगोंपर क्यों शासन करूँ?" इस विषयमें मैं एक उदाहरण द्वारा श्रील गुरु महाराजके आदर्शके विषयमें कुछ कहना चाहता हूँ। जिन दिनों मैं श्रील गुरु महाराजजीका सेवक था, उन दिनों श्रील गुरु महाराजजी लिखनेमें बहुत व्यस्त रहते थे, प्रसाद इत्यादि पानेका भी ध्यान नहीं रखते थे। कभी-कभी मुझे मन मारकर उन्हें दो-चार बातें भी सुनानी पड़ती थीं, कलम भी हाथसे छीन लेनी पड़ती थी, तथापि गुरु महाराज मुखसे कभी भी कुछ नहीं कहते थे। श्रील गुरु महाराजके प्रसाद ग्रहण करनेके उपरान्त जब मैं भी प्रसाद पानेके बाद थोड़ा विश्राम करनेके लिए बरामदेमें लेटता, उस समय गुरु महाराज अन्दरसे दरवाजा बन्दकर फिरसे अपनी लेखन-सेवामें लग जाते। किन्तु वे हमें कभी नहीं कहते कि 'मेरे लिए यह काम करना आवश्यक है,

इसलिए बाधा मत दो'। गुरु महाराजजी सदा कहते थे—"किसी पर शासन करनेका अधिकार मुझको नहीं है। शासन श्रील प्रभुपाद, श्रील गुरुमहाराज, श्रीश्रीराधाविनोदबिहारी करेंगे। मैं किसी पर शासन करने क्यों जाऊँ?"

उन दोनोंकी परस्पर प्रीतिके दर्शनका सौभाग्य

श्रील गुरु महाराजजीकी शिक्षा और पूज्यपाद नारायण महाराजजीकी शिक्षा एक ही प्रकारकी है। कोई कितना भी प्रयास क्यों न करे, किन्तु मेरी दृष्टिमें अथाह प्रयास करने पर भी कोई उनको अलग नहीं कर सकता। विभिन्न आचार्योंके विभिन्न वैशिष्ट्य होते हैं, किन्तु इसका अर्थ यह तो नहीं कि उनमें भेद है।

उन दोनोंकी परस्पर प्रीतिको दर्शन करनेका हमें सौभाग्य प्राप्त हुआ है। जब पूज्यपाद नारायण महाराजजी पहली बार विदेशसे कलकत्ता आये थे, तब गुरु महाराजजीने एक दिन पहले सबको कहा,—"जाओ, मन्दिरको बहुत अच्छी तरहसे सजाओ। जिस कमरेमें श्रील महाराज रहेंगे, उसको भी अच्छेसे सजाओ।" जब गुरु महाराज सन्ध्याके समय मन्दिर दर्शन करने आये और मन्दिरको सजा हुआ नहीं देखा, तब कहने लगे कि "यदि तुम लोगोंके पास समय नहीं है तो मैं स्वयं ही फूल लेने जा रहा हूँ।" ऐसा सुनकर ब्रह्मचारी तुरन्त बाजार जाकर अनेक प्रकारके फूल इत्यादि ले आये। ठाकुरजीके मन्दिरको अच्छी तरहसे सजानेके बाद जब भक्त गुरु महाराजजीके घरको सजाने पहुँचे, तब गुरु महाराजजीने कहा कि,—"पहले ठाकुर सेवा, उसके बाद वैष्णवोंकी सेवा, उसके बाद मेरी सेवा।" गुरु महाराज कहने लगे,—"यद्यपि मेरे कमरेको सजानेकी कोई आवश्यकता नहीं है, तथापि मेरे कमरेको सजा हुआ न देखकर नारायण महाराजके मनमें कष्ट होगा। गुरु-वैष्णवोंकी प्रीति ही हमारा लक्ष्य है, इसलिए मेरा कमरा भी सजा दो।" जब पूज्यपाद नारायण महाराज आये, तब गुरु महाराजने नाट्य मन्दिरमें उनका अभिनन्दन किया। उसके बाद ऊपर जाकर दोनोंने एक-दूसरेको प्रणाम किया। श्रील नारायण महाराजजी कलकत्ता मठमें पाँच-छः दिन तक रहे। श्रील नारायण महाराज प्रत्येक दिन श्रील गुरु महाराजसे मिलने आते थे। यदि किसी कारणवश नहीं आते, तो स्वयं गुरु महाराजजी उनसे मिलने जाते थे।

तुम्हारा आज कितना हरिनाम हुआ है?

श्रील गुरु महाराजजीके समक्ष कोई किसीके विरुद्ध अभियोग(शिकायत) करनेका भी साहस नहीं करता था, क्योंकि जब भी कोई किसीके विरुद्ध अभियोग करनेकी इच्छा लेकर आता था तो गुरु महाराज उसको पूछते,—"तुम्हारा आज कितना हरिनाम हुआ है? जाओ, हरिनाम करो। किसीकी निन्दा-चर्चा मत करो। कौन वैष्णव क्या कर रहा है, यह सब तुम्हें देखनेकी आवश्यकता नहीं। उसके लिए श्रील गुरुमहाराज, श्रील प्रभुपाद, श्रीराधाविनोदविहारी बैठे हैं।" इसलिए गुरु महाराजजीके निकट कोई भी किसी वैष्णवकी निन्दा नहीं कर पाता था, परन्तु आज गुरुजीको अप्रकट समझकर अधिकांश नामधारी भक्त इसी कार्यमें लिप्त हैं। अभी पूज्यपाद नारायण महाराजजी हमारे बीच वर्तमान हैं, किन्तु हमलोग उनको पहचान नहीं पा रहे हैं। हम उन्हें साधारण मनुष्य समझ रहे हैं।

[श्रीश्रीभागवत-पत्रिका, वर्ष-२(२००५ई॰), संख्या-(७-८)से उद्धृत]

श्रीभक्तिवेदान्त अकिञ्चन महाराज

(गोवर्धन)

क्रन्दन करते-करते हरिनाम करो

हमारा कर्तव्य क्या है? हम लोगोंको कैसे शान्ति मिलेगी? सन् १९८५ ई॰ में मैंने यह प्रश्न मथुरामें श्रील गुरुपादपद्मसे पूछा था। मैंने यह एक प्रश्न तीन सालमें तीन बार पूछा था। श्रील गुरुमहाराजने तीनों बार एक ही उत्तर दिया कि क्रन्दन करते-करते हरिनाम करो यही श्रेष्ठ साधन और कर्तव्य है।

अहैतुकी कृपा-उपदेश

सन् १९७५ ई॰ में श्रील गुरुपादपद्मने इस अधमको श्रीहरिनाम दीक्षा प्रदान की। जब मैं मन्त्र ग्रहण करके वापस जा रहा था, तब पुनः मुझे गुरुमहाराजीने बुलाया और अहैतुकी कृपापूर्वक बताया—"जो एक लाख नाम नहीं करता है, उसके हाथसे महाप्रभु कुछ भी ग्रहण नहीं करते हैं।"

क्या तुम मुझे गिरगिट बनाओगे?

बङ्गालके अन्तर्गत रायगञ्जमें ॐ विष्णुपाद श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीके साथ मैं प्रचार करने गया था। वहाँ एक यज्ञ किया गया, धर्मसभा भी हुई। श्रील महाराजजीने मुझे एक वस्त्र दिया, बादमें श्रील गुरुमहाराजजीने भी मुझे एक वस्त्र दिया। उसी समय यह अधम दीनहीन सेवक गुरुपादपद्मके कृपावस्त्रको लौटा रहा था, क्योंकि दो वस्त्रोंकी कोई आवश्यकता नहीं थी। तब गुरुपादपद्म श्रीमद्भागवतसे नृग महाराजजीका उपाख्यान स्मरण कराते हुए, बोले—"तुम क्या मुझे गिरगिट बनाओगे?" इस प्रकार गुरुपादपद्मकी अहैतुकी कृपारूप उपदेशामृतको प्राप्त कर मैंने पुनः वही कृपावस्त्र ग्रहण किया।

'यदि तुम मेरे पुत्र होते'

एक बार गुरुमहाराज कहींपर शुद्ध-भक्तिका प्रचार करने गये थे। साथमें चिन्मय प्रभु (श्रीभक्तिवेदान्त भागवत महाराज) भी थे। वे उनके गुरुभाई थे। वे गुरुमहाराजजीके साथ एक ही कमरेमें ठहरे हुए थे। रातमें चिन्मय प्रभुको बहुत खाँसी हो रही थी। तब चिन्मय प्रभु श्रील गुरुदेवके सोनेमें व्याघात करना नहीं चाहते थे, इसलिए बाहर जाना चाहते थे। यह देखकर स्नेहमय गुरुपादपद्म बोले—"यदि तुम मेरे पुत्र होते तो क्या तुम्हें मैं बाहर भेज देता। अतः तुम्हें बाहर जानेकी आवश्यकता नहीं, यहीं सो जाओ।" इस घटनासे श्रील गुरुदेवकी अपने गुरुभाईयोंके प्रति कितनी स्नेह और ममता थी, यह ज्ञात होता है।

आप लोग बाहर क्यों घूम रहे हैं

एक बार श्रील गुरुमहाराज आसामके नक्सलवादी क्षेत्रमें प्रचार करने गये थे। वहाँपर एक कॉलेजमें श्रील गुरुमहाराज भाषण दे रहे थे। सभी छात्र यह धार्मिक भाषण न सुनकर बाहर घूम रहे थे। तब गुरुमहाराजजीने साम्यवादके ऊपर इतना सुन्दर धार्मिक भाषण देना आरम्भ किया कि बाहर घूम रहे सभी छात्र इस भाषणको माईकमें सुनकर अन्दर आये और पूरा हॉल छात्रोंसे भर गया। उनमेंसे तीन लोग तब भी बाहर घूम रहे थे। उन्हें देखकर श्रील गुरुमहाराज बोले—"आप लोग बाहर क्यों घूम रहे हैं, आप भी अन्दर आओ और कथा श्रवण करो।" यह सुनकर वे तीनों बोले—"आप हमें 'आप' सम्बोधन करके

बुला रहे हैं। आप हमें जानते नहीं, जब आप हमारे बारे में सुनेंगे तो आप हमें कभी इतना सम्मान नहीं देंगे। हम तीनोंने बहुतसे लोगोंका खून किया है। हम लोग नक्सल हैं। किन्तु आप हमें एक बात बताइए कि हम तो अच्छे घरके लड़के थे, क्यों ऐसे बन गये और इससे उद्धार पानेका क्या उपाय है?" तब गुरुमहाराज बोले—"यह सब असत्सङ्गका फल है। जैसे वराहदेवका पुत्र नरकासुर ज्ञानी और धार्मिक होने पर भी असुर हो गया और उसने १६,१०० रानियोंको बन्दी बनाकर रखा था। श्रीकृष्णने उस नरकासुरका वधकर रानियोंको अपनाया था। आप लोगोंकी अवस्थासे भी उद्धार पानेका उपाय है। जैसे बाल्मीकिने हजारों लोगोंका खून किया था, जिनके जनेऊसे एक कुआँ भर गया था, ऐसे पापी भी शुद्धभक्तका सङ्ग प्राप्त करके भगवान्‌का नाम लेकर बाल्मीकि ऋषि बन गये। आप लोग भी उसी प्रकार हरिनाम करके भक्ति याजन करो, उसीसे ही आप लोगोंका उद्धार हो जायेगा।" बादमें उन लोगोंने गुरुजीसे मन्त्र-दीक्षा ग्रहणकर अपने जीवनको सफल बनाया।

[श्रीश्रीभागवत-पत्रिका,
वर्ष-२(२००५ई॰), संख्या-(७-८)से उद्धृत]

श्रीद्विजकृष्ण दास ब्रह्मचारी

(गोवर्धन)

श्रील गुरुपादपद्मकी नाम-निष्ठा

श्रील गुरुमहाराज प्रतिदिन अपतित रूपसे तीन लाख नाम करते थे। उनके निरन्तर नाम जपको देखकर सभी आश्चर्यचकित हो जाते थे। जब भी भक्त उनका दर्शन करते उन्हें नाम जप ही करते देखते। गुरुदेव कहते कि यदि किसी दिन निर्धारित संख्या जप नहीं हो, तो अगले दिन उस दिनकी निर्धारित संख्या जपकर पिछले दिनकी बची संख्याको पूर्णकर क्षमा प्रार्थना करनी पड़ेगी।

पालन-पोषण करनेवालोंका गुण-कीर्त्तन

श्रील गुरुमहाराज जब विश्राम करते थे, उस समय भी उनका हाथ माला जपकी मुद्रामें ही रहता था। ऐसा देखकर उनके सतीर्थगण कहते थे, "महाराज! आप शयन-जागरण सब समय ही नाम लेते रहते हैं। आप धन्य हैं।" यह सुनकर गुरुमहाराज मुस्कराते हुए कहते कि, "जो मेरा पालन-पोषण करते हैं, क्या मैं उनका गुण-कीर्त्तन नहीं करूँ?"

मैं गुरुदेवका खाता हूँ, गुरुदेवका पहनता हूँ

श्रील गुरुमहाराज अपने पाठ-वक्तृतामें सब समय कहते थे—*'महाजनो येन गतः स पन्थाः।'* अर्थात् वे महाजनों एवं गुरुवर्गका पदानुसरण करनेके लिए कहते थे, कभी भी अपना कर्त्तृत्व नहीं रखते थे। श्रील गुरुदेव 'शरणागति' कीर्त्तनके लिए सभीको प्रेरित करते थे और स्वयं भी करते थे। गुरु महाराजजी बोलते थे कि "महाजनोंका अनुसरण करनेसे मङ्गल और अनुकरण करनेसे मृत्यु अवश्यम्भावी है।" गुरुदेव यह भी कहते थे कि शिष्यका ऐसा अभिमान होना चाहिए कि मैं गुरुदेवका खाता हूँ, गुरुदेवका पहनता हूँ, गुरुदेव ही मेरे सर्वस्व हैं।

मैं उन्हें आदेश तो नहीं दे सकता, किन्तु प्रार्थना अवश्य कर सकता हूँ

श्रीगुरुपादपद्म श्रील वामन गोस्वामी महाराज अपने जन्मदिन अर्थात् व्यासपूजाके दिन किसीसे भी पूजा

ग्रहण नहीं करते थे। व्यासपूजामें प्रचुर प्रतिष्ठा मिलती है, इसलिये श्रीगुरुदेव लज्जा करते थे। श्रीगुरुपादपद्म अपने आविर्भावसे एक-दो दिन पहले ही कहीं चले जाते थे और किसीको इस विषयमें कुछ भी पता नहीं होता था कि वे कहाँ गये? श्रीगुरुपादपद्मके मठमें नहीं रहनेके कारण सभी निराश हो जाते थे और फिर वे उनका चित्रपट रखकर ही व्यासपूजा करते थे। कुछ वर्षों तक ऐसे ही व्यासपूजा होती रही। एकदिन समस्त ब्रह्मचारियोंने एकत्रित होकर श्रील नारायण गोस्वामी महाराजसे अनुरोध किया कि हमारे श्रीगुरुपादपद्म अपनी व्यासपूजापर कहीं बाहर चले जाते है और हम उनकी व्यासपूजा नहीं कर पाते हैं। इसलिये आप कृपा करके इसका कुछ समाधान करें। उन्होंने श्रील नारायण गोस्वामी महाराजसे इसलिये निवेदन किया कि केवलमात्र वे ही गुरुमहाराजको व्यासपूजापर उपस्थित रहनेके लिये कहनेका साहस कर सकते थे। तब श्रील नारायण गोस्वामी महाराजने कहा—"मैं उन्हें आदेश तो नहीं दे सकता, किन्तु प्रार्थना अवश्य कर सकता हूँ।"

तत्पश्चात् श्रीनवद्वीप-धाम परिक्रमासे पहले हम सब मथुरासे श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ नवद्वीपमें पहुँचे। श्रीगुरुमहाराज अपनी भजनकुटीमें थे और तभी श्रील नारायण गोस्वामी महाराज हरिनाम करते-करते उनकी भजनकुटीमें आये और उनसे जिज्ञासा करने लगे, —"महाराजजी! दीक्षाकालमें शिष्य श्रीगुरुके चरणोंमें आत्मसमर्पण करता है। जब उसने श्रीगुरुदेवके चरणोंमें समर्पण कर दिया, तब श्रीभगवान्, भक्ति, श्रीवृन्दावन-धाम आदि जो कुछ भी प्राप्त होगा, वह केवल श्रीगुरुके माध्यमसे ही प्राप्त होगा और यदि शिष्य गुरुकी पूजा-अर्चन ही नहीं कर पायेंगे तो वे किसका आश्रय लेकर रहेंगे? किसके माध्यमसे भगवान्को जानेंगे और उनको कैसे प्राप्त करेंगे?" इस प्रकारसे उन्होंने अनेक वचनोंसे श्रील वामन गोस्वामी महाराजसे उनके चरणाश्रितजनों द्वारा की जानेवाली गुरुपूजा स्वीकार करनेका इङ्गितपूर्वक निवेदन किया। ऐसा सुनकर श्रील वामन गोस्वामी महाराजने कुछ कहा तो नहीं, किन्तु अपना मस्तक अवश्य हिलाया। उसके बादसे ही श्रील वामन गोस्वामी महाराजकी साक्षात् उपस्थितिमें व्यासपूजा आरम्भ हो गयी। इस प्रकार प्रत्येक वर्ष विभिन्न मठोंमें उनकी व्यासपूजा होने लगी।

मैंने तुम लोगोंको समय दिया था

एक समय श्रील गुरुमहाराज दक्षिण २४ परगणा स्थित Canningमें किसी भक्तके घरपर ठहरे हुए थे। वहाँसे उन्होंने कलकत्ताके पास एक गाँवमें प्रचारके लिये जानेका कार्यक्रम बनाया और वहाँके लोगोंको पत्र भेजकर पहले ही पहुँचने की तिथि और कार्यक्रमके विषयमें सूचित कर दिया। उन्होंने पत्रमें यह भी लिखा कि कीर्त्तन और कथाके बाद दोपहरमें वहाँपर हम लोग प्रसाद सेवन भी करेंगे। निर्धारित दिनमें श्रील गुरुमहाराज तीन ब्रह्मचारियोंको और कीर्त्तनके लिये मृदङ्ग आदि सब समान लेकर सुबह-सुबह ही उस भक्तके घरसे निकले और चलते-चलते नावके घाटपर पहुँचे। उसदिन बहुत तेज तूफान आ रहा था। बङ्गालमें अनेक बार ऐसा होता है। तूफानके समयमें नावें चलना बन्द हो जाती हैं, क्योंकि नावके डूबनेका भय रहता है। श्रील गुरुमहाराज तटपर खड़े हुए सोच रहे थे, —"मैंने उनको आनेका समय दिया है, वे लोग मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। अब मैं कैसे वहाँपर पहुँचुँ?'

कुछ विचार करके श्रील गुरुमहाराजने अपने साथ जो ब्रह्मचारी थे उनको निर्देश दिया कि तूफान रुकनेके बाद जब नाव चलेंगी, तब वे लोग सब समान लेकर नावमें नदी पार करके आ जायें। तब सेवकने पूछा,— "गुरुमहाराज आप कैसे जायेंगे?" श्रील गुरुमहाराजने कहा,—"मैं ऐसे ही चला जाऊँगा।" तब गुरुमहाराजने एक छोटा-सा कपड़ा पहना और नदीको तैर करके

पार किया तथा दूसरे तटपर उन लोगोंके घरपर पहुँच गये।

तब गाँवके लोगोंने गुरुमहाराजसे पूछा कि आप नदी कैसे पार करके आये? श्रीगुरुमहाराजने बताया,—"मैं तो तैर करके आ गया।"

यह सुनकर सभी आश्चर्यचकित हो गये। वे लोग व्यथित और भयभीत हुए और रोते-रोते प्रार्थना की,—"हे गुरुमहाराज! आपने ऐसा क्यों किया? आप तूफानके थम जानेके बाद नावसे आ जाते।" तब श्रील गुरुमहाराजने कहा,—"मैंने तुम लोगोंको समय दिया था। मैं सब समय, समयका ध्यान रखता हूँ।" श्रील गुरुमहाराजके जीवनमें यह एक विशेष बात थी कि वे सदैव समयके अनुसार ही चलते थे।

[श्रीश्रीभागवत-पत्रिका,
वर्ष-२(२००५ई॰), संख्या-(७-८)से उद्धृत]

श्रीभक्तिवेदान्त श्रीधर महाराज

(परेशानन्द दास, आसाम)

शिष्य-वात्सल्य

एक बार हमलोग श्रील गुरुमहाराजजीके साथ श्रीवासुदेव गौड़ीय मठ, वासुगाँवसे बिजीनि जा रहे थे जहाँपर सनातन-धर्मसभाका आयोजन होना था। मार्गमें अकस्मात् श्रील गुरु महाराज हमसे कहने लगे—"यहाँपर एक वृद्धा भक्त रहती हैं, चलो हम पहले उससे मिल लें, तत्पश्चात् धर्मसभामें जाएँगे।" यह सुनकर हमने उनसे पूछा—"आपको कैसे पता है कि वह यहाँ पर रहती हैं?" गुरु महाराज मुस्कराते हुए कहने लगे कि यदि कोई मुझे कुछ कहता है तो मैं उसे कभी भी नहीं भूलता। २०-२५ वर्ष पूर्व जब उसने मुझसे दीक्षा ली थी, तभी उसने मुझसे प्रार्थना की थी कि मैं उसके घर आऊँ। इस प्रकार बातचीत करते-करते हमलोग उसके घर पर पहुँच गये। जाकर देखा कि वे वृद्धा माँ एकान्त मनसे हरिनाम कर रही थीं। हठात् गुरुमहाराजका दर्शन कर हड़बड़ा गईं। पहले तो उसको विश्वास ही नहीं हुआ कि गुरु महाराज उसकी टूटी-फूटी झोंपड़ीमें आ सकते हैं। कुछक्षण पश्चात् ही उसको विश्वास हुआ कि यह स्वप्न नहीं है, अपितु सत्य ही गुरु महाराज आए हैं। गुरु महाराज भी उसको देखकर मन-ही-मन मुस्करा रहे थे। उसने तुरन्त गुरु महाराजजीको प्रणाम किया। उन्हें बैठनेके लिए आसन देकर उनकी पूजा की। तत्पश्चात् उसने अपना वह घर तथा अन्य सभी सम्पत्ति गुरु महाराजको अर्पित कर दिया। बादमें श्रीगुरुमहाराजने उसको मठमें रहनेका स्थान दे दिया।

वैष्णवोंके प्रति अपनत्व

एक बार वासुगाँवसे हम कुछ भक्त गुरुमहाराजके साथ प्रचार करनेके लिए कहीं जा रहे थे। बसमें हम बैठ चुके थे। कुछ क्षण बाद श्रीचैतन्य गौड़ीय मठके कुछ ब्रह्मचारी बसमें चढ़े। उन्हें देखते ही गुरुमहाराज हमसे कहने लगे—"देखो, इन सबका टिकट ले लेना।" हमने कारण पूछा—'क्यों?' गुरु महाराज बोले,—"मेरा नियम है कि मेरे साथ जितने भगवान्के भक्त यात्रा करते हैं उनका किराया मैं स्वयं चुकाता हूँ।" इस घटनाके द्वारा स्पष्ट होता है कि उनमें वैष्णवोंके प्रति कितना अपनत्व भाव था।

महाप्रसाद ठण्डा और बासी नहीं होता

एक समय गुरुमहाराजको टोङ्गलामें किसी भक्तके घर जाना था। परन्तु वहाँ पहुँचते-पहुँचते बहुत देर हो गई। उन लोगोंने गुरुमहाराजके लिए ठाकुरजीका प्रसाद थालीमें सजा कर रखा था। घरमें प्रवेश करते ही गुरुमहाराज कहने लगे—"मुझे बहुत भूख लगी है, जल्दीसे प्रसाद लाओ।" यह सुनकर उनके सेवक वह थाला ले आये। इतनेमें गृहस्वामी बोले कि यह प्रसाद गुरुजीके लिए योग्य नहीं है, क्योंकि यह ठण्डा हो चुका है। गुरुजीके लिए अभी हम गरम-गरम प्रसाद ले आते हैं। ऐसा कहकर वे उस थालीको अन्दर ले गये तथा पुनः गुरुजीके लिए रसोई बनाना आरम्भ कर दिया। इधर गुरुमहाराज अपने सेवकसे बोले—"मेरे बैगमें कुछ मुड़ी (भूना हुआ चावल) है, मुझे लाकर दो।" सेवकने ऐसा ही किया। उन्होंने एक मुट्ठी मुड़ीको पानीमें भिगोकर खा लिया और सो गये। कुछ समय बाद गृहस्वामीने आकर जब गुरु महाराजजीको प्रसाद पानेके लिए जगाया, तो गुरु महाराज रुष्ट होकर बोले—"उस गरम-गरम भोजनको तुम्हीं खा लो। तुमने उसे अपने लिए ही बनाया है। क्या तुम्हें अभी तक इतना भी ज्ञान नहीं है कि महाप्रसाद साक्षात् भगवत्कृपाके समान होता है—ठण्डा और बासी नहीं होता। मैं मात्र महाप्रसाद ही पाता हूँ और कुछ नहीं।" महाप्रसादके प्रति गुरुमहाराजका कितना आदर भाव था, इस घटनासे यह प्रकाशित होता है।

गुरुसेवाके लिए शुभ-अशुभ तिथिका विचार-त्याग

टोङ्गलासे ही दो दिन पश्चात् द्वादशी तिथिको श्रीगुरुमहाराजको अन्यत्र एक सभामें उपस्थित होना था तथा उस दिन गुरुवार भी था। अतः गृहस्वामीने गुरुमहाराजसे कहा—"गुरुदेव! आज हम आपको नहीं जाने देंगे, कारण—आज गुरुवार है। गुरुवारको गुरुकी पूजा की जाती है, उन्हें विदा नहीं किया जाता। ऐसा होनेपर हमारा अकल्याण होगा।" यह सुनकर गुरु महाराज थोड़े रुष्ट होकर कहने लगे—"तुम अपने कल्याणकी चिन्ता करोगे या मैं तुम्हारे कल्याणकी चिन्ता करूँगा। क्या मुझे पता नहीं है कि तुम्हारा कल्याण कैसे होगा। वहाँ पर हजारों लोग कथा सुननेके लिए लालायित है। इस प्रकार मुझे गुरुसेवाका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। यदि तुम्हारे लिए मेरी गुरुसेवा रुक जाय तो क्या तुम्हारा कल्याण हो जाएगा। इसलिए शीघ्रतासे मेरा सामान बाँधकर प्रस्तुत करो।"

'मोर मन वृन्दावन'

एक बार गुरुमहाराज शिलिगुड़ि स्थित श्रीश्यामसुन्दर गौड़ीय मठमें अपनी भजन-कुटीमें एकान्तमें हरिनाम कर रहे थे। उसी समय उनकी भजनकुटीमें प्रवेश कर दण्डवत् प्रणाम कर मैंने पूछा—"गुरुमहाराज! मेरा बड़ा दुर्भाग्य है कि मैं आपकी कुछ भी सेवा नहीं कर सका। प्रत्येक मठमें आपके लिए कितनी सुन्दर भजनकुटीरोंका निर्माण किया गया है। किन्तु गौहाटीके मठ (जिस मठका दायित्व मेरे ऊपर है) में आपको बहुत कष्ट उठाना पड़ता है।" गुरुमहाराजने उत्तर दिया—"मैं ऐसे सुन्दर-सुन्दर कमरोंमें नहीं रहता हूँ।" मैंने पूछा—"तो आप कहाँ रहते हैं?" उन्होंने उत्तर दिया—"मेरे पूर्व गुरुवर्ग पेड़ोंके नीचे रहकर भजन करते थे। मैं भी सदैव पेड़के नीचे वास करता हूँ।" मैंने कहा—"मैं तो आपको पेड़के नीचे रहते हुए कभी नहीं देखा।" गुरुमहाराजने उत्तर दिया—

'वृन्दावने चौतारा, ताहे मोर मनोधेरा।'
'अन्येर हृदय मन, मोर मन वृन्दावन
मने वने एक करि जानि।'

मेरा मन सब समय वृन्दावनमें ही निवास करता है।"

जागतिक सौन्दर्यके प्रति अनासक्त

एक बार गुरुमहाराज गौहाटी स्थित किसी भक्तके घरमें अवस्थान कर रहे थे। उस समय हम

आठ-दस ब्रह्मचारी वहाँपर थे। मैंने गुरुमहाराजसे पूछा—"गुरुदेव! गौहाटीमें वशिष्ठ मुनिका आश्रम है, वहाँकी शोभा अत्यन्त मनोरम है एवं गङ्गा, यमुना, सरस्वतीकी त्रिधारा भी है। मेरी इच्छा है कि आपके साथ उस आश्रमका दर्शन करूँ।" गुरुमहाराजने उत्तर दिया—"देखो! इस जगतकी किसी भी प्राकृत शोभाका दर्शन करनेकी मेरी इच्छा नहीं है। तुमलोग यदि मुझे गोलोक धामका दर्शन करा सकते हो, तो जाऊँगा।" मैंने कहा—"गुरुदेव! आप गोलोकके रहनेवाले हैं, गोलोकके विषयमें आप ही जानते हैं।" तभी गुरुमहाराजने कहा—"तो भौम वृन्दावनमें एक बार जानेकी मेरी इच्छा है, क्या मुझे ले जा सकते हो?"

[श्रीश्रीभागवत-पत्रिका, वर्ष-२(२००५ई॰), संख्या-(७-८)से उद्धृत]

श्रीहरेकृष्ण दासाधिकारी

(नाढ़ाबेड़िया, दक्षिण २४ परगना)

गुरुवर्गका क्या एक अभिशाप है

एक दिन हम सब (ब्रह्मचारीगण) एक साथ एक स्थान पर बैठे थे। मुझे देखकर श्रील वामन महाराजने कहा—"अधिक अन्तरङ्गता, अधिक घुलना-मिलना घृणा उत्पन्न करता है। मैंने प्रभुपादके समय देखा है, गुरुदेवके समय देखा है तथा अपने समयमें भी देख रहा हूँ—जो मठसे चले गये हैं, उनमेंसे कोई भी सुखी नहीं हुए। गुरुवर्गका क्या एक अभिशाप है, नहीं जानता।"

[आविर्भाव-शतवार्षिकी-स्मारकसे अनुदित]

श्रीसुरेश्वर दासाधिकारी

(गोबरु, मेदिनीपुर प.ब.)

'श्रीगुरु-वैष्णवोंकी निष्कपट सेवा एवं भगवान्‌की कृपाके लिए क्रन्दन'

मेरे परमाराध्यतम श्रील गुरुदेव नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजने करुणापूर्वक मुझे अपने श्रीचरणोंमें आश्रय दिया था। 'मेरा क्या कर्त्तव्य है?' यह पूछनेपर

उन्होंने कहा था—"निष्कपट होकर श्रीगुरु-वैष्णवोंकी सेवा करना।"

छाड़िया वैष्णव-सेवा, निस्तार पायेछे केबा?

गुरु-वैष्णवगण केवल सेवासे ही प्रसन्न होते हैं। सम्बन्धयुक्त होकर निष्कपट भावसे गुरु-वैष्णवको सेवाके द्वारा प्रसन्न करने पर उनकी कृपा हमारे ऊपर बरसती है। तभी परमार्थ राज्यमें प्रवेशाधिकार प्राप्त होता है।

वैष्णवेर आवेदने कृष्ण दयामय।
एहेन पामर प्रति हबेन सदय॥

हरिनाम-दीक्षाके समय श्रील गुरुमहाराजने मुझे और भी उपदेश दिया था कि 'संसारमें मोहित होकर मनुष्य जिस प्रकार विषयोंके लिए क्रन्दन करता है, तुम ठीक उसी प्रकार भगवान्‌की कृपा पानेके लिए क्रन्दन करना। तब वे तुम्हारे प्रति सदय होंगे।'

विषये जे प्रीति एबे आछये आमार।
सेइमत प्रीति हउक चरणे तोमार॥

[आविर्भाव-शतवार्षिकी-स्मारकसे अनुदित]

श्रीयुक्ता माधवी (नियोगी) दासी

(डायमण्ड-हार्बर, दक्षिण २४ परगना)

उनका वात्सल्य-स्नेह आज भी मेरी स्मृतिमें है

आचार्य पदपर अभिषिक्त होनेके बाद श्रील महाराजने कृष्णचन्द्रपुरमें शैलबाला बुआ (श्रील प्रभुपादकी आश्रिता) के घरमें शुभागमन किया था। मैं और मेरी छोटी बहन माया श्रील महाराजजीका दर्शन करने वहाँ गयी थीं। महाराजजी मिट्टीके बरामदेमें कुर्सी पर बैठे थे। बुआजी उनको पुत्रके समान स्नेह करती थीं। इसलिए उन्होंने उनको एक कटोरीमें कुछ मूढ़ी (मुरमुरा) और मूंगफली खानेके लिए दिया था। नये आचार्य थे, इसलिए थोड़ा सहम कर हम कुछ दूरी पर बैठ गयीं। हठात् बुआजीके अलक्ष्यमें (अनदेखीमें) श्रील महाराजजी हमें कुछ मूंगफली देकर फिर कुर्सी पर बैठ गये। उनका यह वात्सल्य-स्नेह आज भी मेरी स्मृतिमें स्पष्ट है।

'रुपये-पैसे हैं तो?'

एक बार कोलकातामें संस्कृत पढ़ते समय माघ मासकी कृष्ण-पक्षीय तृतीया तिथिपर मैं अपने गुरुदेव—श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी व्यासपूजाके लिए कोलकातासे नवद्वीप चली गयी। पिताजीका खूब कठोर शासन था, घरमें लौटनेके लिए भय लग रहा था। पूज्यपाद महाराजने पिताजीको सूचित किया कि "माधवी अन्यत्र कहीं पर तो नहीं गयी, वह हमारे पास नवद्वीपमें श्रीगुरुदेवको पुष्पाञ्जलि प्रदान करने आयी थी। आप उसे डाँट-फटकार मत लगाना।" श्रील महाराजने मुझसे पूछा—"रुपये-पैसे हैं तो?" पॉकेटसे पाँच रुपयेका एक नोट निकालकर मेरे हाथमें देकर वे बोले—"इसे रखो।" उस नोटको आज भी मैंने श्रील महाराजकी स्मृतिमें यत्नपूर्वक रखा हुआ है। मैं पिता-माताका स्नेह भूल सकती हूँ, परन्तु महाराजजीके स्नेह और प्रीतिको कभी भूल नहीं सकती।

इससे अधिक कोई अपना नहीं हो सकता

एक दिन श्रील महाराज अस्वस्थ रहते समय कोलकाताके ठन्‌ठनिया कालीबाड़ीके निकट एक घरमें गोपन रूपमें अवस्थान कर रहे थे। तब हम

परिवार सहित उनका दर्शन करने गये थे। उनके सेवकने कहा—"कोई बात न करके केवल दर्शन करके ही बाहर चले आना।" सेवकके निर्देशके अनुसार हम घरके अन्दर जाकर महाराजको दण्डवत् प्रणाम कर थोड़ा बैठे ही थे कि महाराजने आँखें खोलकर हमें देखा और कहा—"माधवी, तुमलोग कब आये, सब ठीक हो?" मैंने कहा—"महाराज, आपको बात करनेका निषेध है, आप बात न करें।" महाराजने कहा—"माधवी, तुमलोग आये हो, तुमलोगोंके साथ बात न कर क्या मैं रह सकता हूँ? मुझे कोई कष्ट नहीं होगा।" मुझे लगता है कि इससे अधिक कोई अपना नहीं हो सकता। यह सब अनुभूतिकी बात है, किसीको बोलकर भी नहीं समझा सकती।

'तुम कृपण हो'

एक बार श्रील महाराज डायमण्ड हार्बरमें एक गृहस्थ भक्तके गृहमें आये हुए थे। श्रील महाराजके निर्देशसे गृहस्थ भक्तने मुझे संवाद दिया कि महाराजने मुझे साक्षात् करनेके लिए कहा है एवं यह बात मैं दूसरेको न बोलूँ। कारण—वे अस्वस्थ थे, उनको कष्ट हो सकता था। मैं अपनी कन्याओंको लेकर श्रील महाराजका दर्शन करने गयी, तब उन्होंने मुझसे कहा—"माधवी, मुझे थोड़ा पाठ करके सुनाओ तो।" उस दिन मैं भय, संकोच और लज्जासे मौन रह गयी। उन्होंने कहा—"तुम कृपण हो।" उस दिन मैं इस 'कृपण' शब्दका अर्थ नहीं समझ सकी। वर्तमानमें श्रीगुरुदेवके कृपाशीर्वादसे कुछ-कुछ समझ पाने पर भी मैं व्यक्त नहीं कर पाऊँगी।

[आविर्भाव-शतवार्षिकी-स्मारकसे अनुदित]

श्रीमती कृष्णमयी देवी

ग्वालजान, बहरमपुर (मुर्शिदाबाद)

'वैष्णवता माने ही है सरलता'

श्रीगुरुमहाराज कहते थे—"सुनो माँ, वैष्णवता माने ही है सरलता।" हम श्रीगुरुमहाराजके जीवनमें एवं आचरणमें शिशु-सुलभ सरलताका दर्शनकर अत्यन्त आश्चर्यचकित हो जाते थे। मैंने सुना है कि वेदान्त समिति तथा गौड़ीय-वैष्णव-समाज उनको 'भक्तिका अभिधान' मानते थे। समुद्रके समान गम्भीर ज्ञान-पाण्डित्य रहने पर भी शिशुके समान सरलता उनके चरित्रकी विशेषता थी।

गुरुदेव एवं भगवान्‌के स्वभावमें कोई अन्तर नहीं

एक दिनकी घटना मुझे आज भी स्मरण है, जिसे न कहकर मैं नहीं रह पा रही हूँ। घरमें मैं और मेरी सासके अतिरिक्त और कोई नहीं थे। श्रील गुरुमहाराज नवद्वीपमें आये हैं—यह सुनकर उनको बहरमपुर स्थित हमारे घरमें ले आनेके लिए मेरे पति बन्कुविहारी प्रभु नवद्वीप गये थे। ऐसी अवस्थामें दोपहर प्राय २:३० बजे मैंने देखा कि सामने वाले दरवाजेसे नृसिंहानन्द ब्रह्मचारीको लेकर श्रील गुरुदेव मेरे घरमें प्रवेश कर रहे हैं। यह देखकर मैं हतबुद्धि किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गयी। श्रीगुरुमहाराजने घरमें प्रवेश करते ही कहा—"माँ, मुझे बहुत भूख लगी है, जो भी प्रसाद है, ले आओ।" कोई भी सूचना दिये बिना ही वे चले आये थे, मेरी कोई प्रस्तुति नहीं थी, जिसे देकर उनकी सेवा करूँ? क्या करूँ, मैं कुछ भी समझ नहीं पा रही थी। उस दिन विशेष कुछ भोगकी सामग्री भी नहीं

थी। कुछ अन्न, थोड़ा-सा दाल, करेला भाजी और एक ही सब्जी (डंठल, कटहल बीज, आलू, बैगन सरसोंका पेस्ट देकर)। अत्यन्त लज्जाके साथ उस प्रसादको गुरुमहाराजको निवेदन कर हाथ जोड़कर मैं खड़ी रही। मुझे भीतरसे रोना आ रहा था, परन्तु उस समय इसके अतिरिक्त मेरे पास अन्य कुछ करनेका उपाय भी नहीं था। श्रीगुरुमहाराजने उसे विदुर[दरिद्र]के शाक-अन्नके समान ग्रहण कर कहा —"खूब तृप्ति हुई।" उस दिन मैंने प्रत्यक्ष अनुभव किया कि गुरुदेव एवं भगवान्‌के स्वभावमें कोई अन्तर नहीं है।

हरिभजन और कीर्तनमें सभी अधिकारी

श्रीगुरुमहाराज प्रायः ही बोलते थे—"हरिभजन और कीर्तनमें सभी अधिकारी हैं। नारी-पुरुषमें किसी प्रकारका अन्तर नहीं हैं, क्योंकि समस्त जीवात्मा भगवान्‌के ही अंश हैं।" इसलिए पाठ-कीर्तन अथवा प्रचारका अवसर आने पर मैं उनका आदेश पालन करनेकी चेष्टा करती हूँ। इसके लिए कुछ लोग मेरी आलोचना करते हैं। हरिभजनमें सभी अधिकारी हैं, किन्तु 'नाम'का आचार और प्रचार दोनों ही कार्य करने होंगे। श्रीगुरुदेवके प्रसन्न होनेपर जीवको समस्त प्रकारकी सिद्धियाँ—कृष्णप्रेम और गोलोक प्राप्त होता है।

[आविर्भाव-शतवार्षिकी-स्मारकसे अनुदित]

श्रीयुक्ता मालती दासी

(काकद्वीप, दक्षिण २४ परगणा)

गौड़ीय-गगनके श्रेष्ठ आचार्यसे दीक्षा प्राप्ति

सन् १९७५ की बात है। काकद्वीपमें समुद्र तटपर भगवान् श्रीनृसिंहदेवका एक बहुत प्राचीन मन्दिर था। उस मन्दिरके पुनः निर्माणके उपरान्त उद्बोधनके समय श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज वहाँ उपस्थित थे। मेरे पति एवं बाजार कमेटीके उद्यमसे मन्दिरकी प्रतिष्ठा हो गयी। मैंने पतिदेवसे पूछा—"कहाँसे महाराज आये थे?" इसके उत्तरमें उन्होंने कहा—"नवद्वीप-धामसे एक बड़े महाराज आये थे।" उस दिन मन्दिरमें जाकर मैंने वहाँकी धूलको शरीरमें लेपन किया था।

इस घटनाके १८ वर्ष बाद एक दिन मेरे पतिदेव मुझे महेश पण्डितका श्रीपाट दर्शन कराने ले गये थे। मन्दिरके एक सेवकने कहा था—"यदि नवद्वीप-धामकी परिक्रमा करना चाहते हो, तो श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ जाओ।" उनके निर्देशके अनुसार हम श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ गये। वहाँ हमने श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजका दर्शन किया। तब मेरे पतिदेवने कहा—"ये महाराज ही काकद्वीपके मन्दिरमें उद्बोधनके समय आये थे।" इसके बाद श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजका दर्शन करने पर एवं परिक्रमा कालमें उनकी हरिकथा सुनकर उनसे दीक्षा लेनेके लिए मुझमें प्रबल आग्रह हुआ तथा मैंने मन-ही-मन उनको गुरु स्वीकार कर लिया। परन्तु मेरे पतिदेवने कहा—"श्रील वामन गोस्वामी महाराज वर्तमान आचार्य हैं। केवल वे ही दीक्षा प्रदान करते हैं, अन्य कोई नहीं।"

श्रील नारायण गोस्वामी महराजके पास पहुँचकर मैंने उनको अपने मनकी बात बतलायी। श्रील

महाराजजीने कहा—"ठीक है! तुमने मुझे अपना गुरु माना है, तो मैं भी तुम्हें अपनी शिष्या मानता हूँ। जो शिष्य गुरुकी बात सम्पूर्ण रूपसे पालन करता है—वही वास्तविक शिष्य है। तुम मेरी योग्य शिष्या हो। मैं तुम्हें उत्तम वस्तु प्रदान करूँगा। सद्गुरु अपने शिष्यको उत्तम वस्तु ही प्रदान करते हैं। कल सुबह तुम गङ्गा स्नान करके अपने पतिके साथ वर्तमान गौड़ीय-गगनके श्रेष्ठ आचार्य श्रील वामन महाराजसे दीक्षा प्राप्त करो।" श्रील महाराजजीने स्वयं अपने हाथसे मेरा एवं मेरे पतिका नाम लिखकर दीक्षाके निवेदनके रूपमें श्रील वामन गोस्वामी महाराजजीके पास भेजा। इस प्रकार श्रील महाराजजीके कहनेपर मैंने अगले दिन श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजजीसे दीक्षा-मन्त्र प्राप्त किये।

रुपये-पैसोंसे लखपति होनेकी आवश्यकता नहीं

दीक्षाके बाद श्रील गुरुमहाराजने कहा—"गौरहरि लक्षपतिके घरके अतिरिक्त अन्यत्र कहींपर भिक्षा ग्रहण नहीं करते हैं।" उनकी इस बातको सुनकर मैंने मन-ही-मन विचार किया—"मैं तो लखपति नहीं हूँ। तब क्या गौरहरि मेरे गृहमें सेवा ग्रहण नहीं करेंगे?" अन्तर्यामी श्रीगुरुदेव मेरे मनको समझ गये और कहने लगे—"तुम सोच रही हो कि तुम लखपति नहीं हो। रुपये-पैसोंसे लखपति होनेकी आवश्यकता नहीं है। तुम प्रतिदिन एक लक्ष (लाख) हरिनाम करना। तब गौरहरि तुम्हारे हाथोंसे सेवा ग्रहण करेंगे।" यह सुनकर मेरे मनसे संशय दूर हुआ। उन्होंने फिर कहा—"माँ! तुम माताओंके कष्टको कोई नहीं समझता। माताओंको कोई खानेके लिए नहीं कहता, बल्कि सभी उनसे खानेके लिए माँगते हैं। इसलिए प्रातःकाल दोनों समयोंका आह्निक-मन्त्र एकसाथ करके कुछ खा लेना। शरीर ठीक रहने पर हरिनाम कर सकोगी।" गुरु महाराजजीके श्रीमुखसे ऐसी स्नेहपूर्ण अमृतमयी बात सुनकर मुझे ऐसा लगा कि मैंने तो इतनी मधुर वाणी पहले कभी नहीं सुनी है।

हमारे काकद्वीपका कोई कृतित्व नहीं है

दक्षिण २४ परगणाके गदामथुरा, पाथरप्रतिमामें रहनेवाली श्रीयुक्ता नारायणी बुआजीने मठके लिए कुछ जमीन दान की थी। उस जमीनसे धान संग्रहकर नवद्वीपमें ले जानेके लिए श्रील गुरुमहाराज प्रति वर्ष उनके घरमें आगमन करते थे। तब अच्छा रास्ता नहीं था, कोई गाड़ी भी नहीं थी। नदीके रास्ते नावमें धान लाना होता था। एक बार नदीमें उतार हो जानेके कारण नाव अटक गयी और धान भी अटक गया। गुरुमहाराजके साथ चिन्मय प्रभु रहते थे। गुरुमहाराज अपने साथमें किसी प्रकारका खाद्य नहीं लाते थे, केवल पासमें मूढ़ी रखते थे। जबतक धानके बोरोंको रखनेकी व्यवस्था नहीं हो जाती, तबतक वे काकद्वीपमें आकर प्रसाद भी नहीं पायेंगे। चिन्मय प्रभुने गुरुमहाराजसे कहा—"आप मेरे कन्धे पर आइए, मैं आपको तटपर ले जाऊँगा।" इसमें वे राजी नहीं हुए। वे कहने लगे—"तुमलोग पैदल चल सकते हो, तो मैं भी चल सकता हूँ।" फिर जो होना था, वही हुआ, गुरुमहाराजके चरण उस कीच दलदलमें ऐसे फँस गये कि वे एक कदम भी नहीं चल पाये। तब चिन्मय प्रभु गुरुमहाराजको कीचमें-से कन्धेपर उठाकर किनारे पर लाये और उनके चरण धुलाकर सेवा की। इस प्रकारसे अपनी सुविधा न देख अनेक कष्ट सहन करके गुरुमहाराजने बङ्गालमें सर्वत्र प्रचार किया है।

अधिक क्या, आज जो काकद्वीपसे प्रायः एक-सौ बोरी चावल, दाल, तेल, मिर्च, इमली आदि गौर-पूर्णिमाके उपलक्ष्यमें ट्रकमें भरकर आता है, वह केवलमात्र श्रील गुरुमहाराजकी चरणधूलि तथा शुद्धभक्तोंके पदरजका प्रभाव है। इसमें हमारे काकद्वीपका कोई कृतित्व नहीं है, केवल गुरुमहाराजकी कृपा ही है।

[आविर्भाव-शतवार्षिकी-स्मारकसे अनुदित]

श्रीमती भानुमती दासी

(गोबरु, मेदिनीपुर प.ब.)

मेरे नित्य गुरुदेव

हमारे गाँवमें परमाराध्य श्रील गुरुमहाराजके प्रथम दर्शन करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। परन्तु वैष्णवोचित आचरण न जाननेके कारण मैं हतभागिनी उनको दण्डवत् प्रणाम तक न कर सकी। मैं छिप-छिपकर गुरुदेवकी कथा सुनती थी। लगता था जैसे वे कितने जन्मोंसे परिचित हैं। गाँवसे उनको लौटते देखकर मेरा हृदय रो-रोकर टूट जाता था। सोचती थी—मैंने तो कदापि किसीके लिए इस प्रकार क्रन्दन नहीं किया है। अब समझ रही हूँ कि वे कोई और नहीं थे, मेरे नित्य गुरुदेव थे।

'कभी भी इनकी टिकट काट दूँगा'

एक बार गौरपूर्णिमासे पूर्व गोष्ठबिहारी प्रभुने कहा—"नवद्वीप जा रही हो, माला-झोला ले आना।" मैंने भी कहा—"हाँ, हरिनाम लेकर आऊँगी।" खूब गरीबीमें भी मुझे हरिनाम-प्राप्तिका सौभाग्य मिला था। नृसिंह प्रभुने मेरी दरिद्रताकी बात श्रील गुरुमहाराजको बतायी थी। परिक्रमाके लिए मठमें जानेपर भक्तोंको २५ रुपये देकर टिकट

काटना होता था। प्रभुगण द्वारा बार-बार टिकट काटनेके लिए बोलने पर गुरुमहाराज कहते थे—"वे लोग टिकट काट-काटकर [अर्थात् पैसा खर्च करके बस-ट्रेनकी टिकट काट-काटकर] ही तो मेरे पास आये हैं, और कितने टिकट काटेंगे? समय आनेपर मैं उन सभी की टिकट काट दूँगा [अर्थात् उन सबको भवसागरसे पार कर दूँगा]। मैं अभी 'पक्वफल' [प्रवीण/सिद्ध] हूँ, कभी भी इनकी टिकट काट दूँगा। [अर्थात् कभी भी इन सबको भवसागरसे पार कर दूँगा]। तब सभी टिकट काट देंगे।" इस कथाका तात्पर्य मैं बादमें समझ सकी। श्रील गुरुमहाराजने अपनी अप्रकटलीलाके बाद उस अप्राकृत भाव-राज्यसे सभीके टिकट काट दिये थे। श्रील प्रभुपादकी कथामें है—"आश्रय-विग्रहके आनुगत्यमें सभीको सेवा करनी होगी।" अब उस भाव, उस अनुभूति, उस आन्तरिकताका अभाव मैं साक्षात् अनुभव कर रही हूँ। परन्तु मैं श्रीनवद्वीप-धामसे खाली हाथ नहीं लौटी हूँ। मेरी अयोग्यता होते हुए भी श्रील गुरुमहाराजने कृपापूर्वक मुझे अपने श्रीचरणोंमें आश्रय दिया था।

[आविर्भाव-शतवार्षिकी-स्मारकसे अनुदित]

कुमारी पुष्परानी (शान्ति) देवी

(कूचबिहार)

मैं तो कुछ भी जानती, समझती नहीं

सन् १९८३ ई॰ में श्रील गुरुमहाराजने मेरी पर्णकुटीर (घासकी कुटिया)में पदार्पण करते हुए प्रचुर हरिकथाका परिवेशन किया था। उस समयमें गुरुमहाराजकी सेवा करते समय मैंने उनसे प्रश्न किया—"मैं तो कुछ भी जानती, समझती नहीं हूँ, किस प्रकार हरिभजन करूँगी?" इसके उत्तरमें श्रील गुरुमहाराजने कहा—"तुमको कुछ जाननेकी, समझनेकी आवश्यकता नहीं है। तुम केवल हरिनाम करो, हरिनामसे सबकुछ प्राप्त करोगी। तुम्हारे खाने-पहनने (भोजन-वस्त्र)का दायित्व मेरा है।" इस प्रकार कहकर वे वात्सल्य स्नेह-ममतासे प्राणोंको पूर्ण कर देते थे। [परमार्थ राज्यमें] किस प्रकार चलना होगा, वह भी बता देते थे। सदैव महाजन-पदावलीका कीर्तन तथा श्रीमद्भागवत ग्रन्थका पाठ करनेके लिए उपदेश देते थे।

आज भी मुझे रोना आता है

जिस दिन गुरुमहाराज मेरे घरमें ठहरे हुए थे, उस दिन रातको तेज आँधी-बारिश आयी थी। उस समय मेरे घरका छप्पर तिनकोंका था। रातको शयनके समय गुरुदेवकी शय्यापर छप्परमें-से वर्षा-जल गिरना आरम्भ हो गया। किसीको भी न बताते हुए वे पूरी रात सिरके ऊपर छतरी तानकर बैठे रहे थे। सारी रात उन्होंने तनिक भी विश्राम नहीं किया था। ऐसा हुआ सुनकर मैं क्रन्दन करूँगी, इसलिए यह बात मुझे न बतानेके लिए उन्होंने सेवक प्रभुको निषेध किया था। उनको ऐसा कष्ट दिया है, यह सोचकर आज भी मुझे रोना आता है। वे मुझे बहुत सान्त्वना प्रदान करते थे।

[आविर्भाव-शतवार्षिकी-स्मारकसे अनुदित]

नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजकी अलौकिक-चरितावलीके किञ्चित् संस्मरण

श्रीमद्भक्तिवेदान्त भक्तिसार महाराज

(चित्तरञ्जन, वर्धमान)

मेरे श्रीगुरुपादपद्म नित्यलीलाप्रविष्ट ॐविष्णुपाद श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज स्वयं भगवत् प्रेरित दिव्य महापुरुष थे, इसमें कोई संशय नहीं है।

करुणामय श्रीगुरुदेवकी शिष्यके प्रति अहैतुकी कृपा

एक समय मैं श्रीभक्तिवेदान्त गौड़ीय मठ, कनखल, हरिद्वारमें मठरक्षकके रूपमें नियुक्त था। तब शुभ अक्षय-तृतीया तिथिपर श्रीमन्दिरकी प्रतिष्ठाके उपलक्ष्यमें श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज और श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज मठमें अवस्थान कर रहे थे। उस दिन रातको रसोई घरमें भोग रन्धन करते समय गैस सिलेण्डरकी पाइप फटकर आग लग गयी। उससे श्रीनित्यपद ब्रह्मचारी प्रभुका शरीर सबसे अधिक जल गया। वे तीन बार 'गुरुदेव बचाओ, गुरुदेव बचाओ, गुरुदेव बचाओ' कहकर जोर-जोरसे पुकारने लगे।

तब मैं श्रीगुरु-महाराजकी चरणसेवा कर रहा था। इस चीत्कारको सुनकर गुरु-महाराजने कहा—"शीघ्र नीचे जाओ, कहाँसे आवाज आ रही है, देखो।" मैंने नीचे जाकर देखा कि रसोई घरमें आग लगी हुई थी। मैंने शीघ्र ही सिलेण्डरका रेगुलेटर बन्द कर दिया और नित्यपद प्रभुके शरीरमें कम्बल ओढ़कर आग बुझा दी। इसके बाद स्कूटरमें बिठाकर उनको मैं अस्पतालमें ले गया। अस्पतालमें डाक्टरने कहा कि ऐसी अवस्थामें इनकी चिकित्सा यहाँ सम्भव नहीं है, इनको दिल्ली ले जाओ। मैंने डाक्टर साहबसे अनुरोध किया कि अब कहाँ जाऊँ, रात अधिक है, आप यहाँपर भर्ती कर दीजिए, सुबह ले जाऊँगा। यह सुनकर उन्होंने प्रभुको भर्ती कर लिया और कहा—"शीघ्र ही देहरादूनसे चार बोतल रक्त लाना होगा।"

नित्यपद प्रभुको भर्ती कर रात प्रायः १२ बजे मैंने मठमें गुरुमहाराजके निकट लौटकर देखा कि वे पलङ्ग पर बैठकर हरिनाम कर रहे थे। मैंने गुरु महाराजको पूरी घटना बतायी। उन्होंने कहा—"उसको थोड़ा-सा कष्ट होगा, पर वह बच जाएगा। तुम चिन्ता मत करो। अभी देहरादून जाकर रक्त ले आओ।" श्रीगुरु-महाराजकी यह आश्वासन-वाणी श्रवणकर मेरे मनमें साहस आ गया कि सब कुछ ठीक हो जाएगा।

भोर ४ बजे मैंने देहरादूनसे रक्त लाकर डाक्टर साहबको दिया। नित्यपद प्रभुकके शरीरमें रक्त देनेके बाद दोपहरके समय उनका ज्ञान लौट आया। यह देखकर डाक्टरने कहा—"ऐसे रोगी साधारण रूपसे बचते नहीं हैं, परन्तु इसका ज्ञान लौट आया है। इनके प्रति भगवान् और गुरुदेवकी अहैतुकी कृपा है। अब मैं यहीं पर इसकी चिकित्सा करूँगा, दिल्ली ले जानेकी आवश्यकता नहीं है।"

कुछ दिनोंके बाद प्रभुजी स्वस्थ हो गये एवं शेवड़ाफुली स्थित श्रीमाधवजी गौड़ीय मठमें उन्होंने श्रीगुरु-महाराजकी बहुत सेवा की। बादमें संन्यास लेनेके बाद उनका नाम हुआ श्रीमद्भक्तिवेदान्त निरीह महाराज। अभी वे श्रीनिमाईतीर्थ गौड़ीय मठमें मठरक्षकके रूपमें सेवाकार्यमें नियुक्त हैं।

यदि तुम मेरे साथ रहते हो, तो मैं तुमको बचा लूँगा

श्रीगुरु-महाराजकी अहैतुकी करुणाका अन्य एक उदाहरण मैंने देखा है। हरिद्वारमें रहते समय एक

दिन पूज्यपाद गोपीकान्त प्रभुने श्रील गुरु-महाराजसे कहा—"गुरुदेव, तीस वर्षकी आयुमें मेरा अकाल मृत्यु योग है।" यह सुनकर गुरु-महाराजने कहा—"यदि तुम मेरे साथ रहते हो, तो मैं तुमको नहीं मरने दूँगा, बचा लूँगा। पुनः यदि मुझसे दूर किसी स्थानपर रहते हो, तो तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकता।" इसके कुछ दिनों बाद एक दिन श्रील गुरु-महाराजने हरिद्वार मठसे टैक्सीसे दिल्ली यात्रा की। साथमें मैं, श्रीगोपीकान्त ब्रह्मचारी (वर्तमान श्रीभक्तिवेदान्त जनार्दन महाराज), श्रीरघुनन्दन ब्रह्मचारी और एक अन्य ब्रह्मचारी थे। गाड़ीके आगेकी सीट पर मैं और वह ब्रह्मचारी तथा पीछेवाली सीट पर बायीं खिड़कीकी ओर श्रील गुरु-महाराज, बीचमें गोपीकान्त प्रभु एवं दूसरी खिड़कीकी ओर रघुनन्दन प्रभु बैठे थे। मैंने गुरु-महाराजसे कहा—"गुरु-महाराज, आप बीचमें बैठ जाइए, अन्यथा आपको तेज धूप लगेगी।" इसके उत्तरमें उन्होंने कहा—"किसी-न-किसीको तो धूप लगेगी ही। मुझे ही लगने दो।" तब गोपीकान्त प्रभु गुरु-महाराजको बीचमें बिठाकर स्वयं खिड़कीकी ओर चले गये।

इसके ठीक पाँच मिनट बाद मुजफ्फरनगरमें गाड़ीकी दुर्घटना हो गयी। दो गाड़ियोंमें पाससे टक्कर लगने पर गोपीकान्त प्रभु अधिक घायल हुए। उनकी नाक और कानसे निरन्तर रक्तकी धार बहने लगी एवं वे अचेत हो गये। जिस गाड़ीके साथ टक्कर लगी थी, उस गाड़ीका चालक उनको अस्पताल ले गया। साथमें रघुनन्दन प्रभु भी गये। मुजफ्फरनगर अस्पतालमें सर्जनने कहा—"आपलोग रोगीको तुरन्त दिल्ली ले जाएँ। मैं आपको अधिक रुई दे रहा हूँ, नाक और कानसे जो रक्त निकल रहा है, उसे सब समय रुईसे साफ करते-करते जाना। किसी प्रकार रक्त बहना बन्द नहीं होना चाहिए।" चिकित्सकके निर्देशके अनुसार रघुनन्दन प्रभु रास्तेमें रक्त साफ करते रहे। इस प्रकार हमने दिल्ली पहुँचकर उनको लोहिया अस्पतालमें भर्ती किया। अन्य एक गाड़ीसे श्रील गुरु-महाराज दिल्लीमें पहुँचकर इन्द्रप्रस्थ गौड़ीय मठमें ठहरे। गाड़ीमें हम पाँच लोग थे, आश्चर्यकी बात है कि केवल गोपीकान्त प्रभुको ही चोट लगी, अन्य किसीको किसी प्रकारकी भी चोट नहीं लगी।

इस घटनासे हम लोग सन्न रह गये थे। परन्तु श्रील गुरु-महाराजने कहा—"तुमलोग शान्त रहो, उसे कष्ट होगा, किन्तु नहीं मरेगा। मैंने ठाकुरजीसे लड़कर (पहले तो सेवक सुन्दरानन्दको ले गये, अभी इसे ले जाना चाहते हैं) इसे बचा लिया है, मरने नहीं दिया।" मैंने गाड़ीमें बैठकर दिल्ली जाते समय देखा था कि गुरुदेव आह्निक जप करनेके समान हाथ भीतर करके 'श्रीनृसिंह मन्त्र' जप कर रहे थे एवं कह रहे थे—"आपको मेरे इस सेवकको लौटाना होगा।" अगले दिन गोपीकान्त प्रभुका ज्ञान लौटने पर उपस्थित चिकित्सकोंने कहा कि—"एकमात्र गुरु और भगवान्‌की कृपासे ही ऐसी अवस्थामें व्यक्तिके प्राण वापस पा सकते हैं। इसमें हमारी कोई बहादुरी नहीं है।" श्रील गुरुदेव अपने प्रिय शिष्यके लिए श्रीनृसिंहदेवके साथ कलह भी कर सकते थे। यही गुरुदेवका दिव्य-अलौकिक प्रभाव है।

मैं आपकी तिथिका पालन अवश्य करूँगा

एक बार वैशाख मासमें श्रील गुरुमहाराज और पूज्यपाद श्रील त्रिविक्रम महाराजका मथुरा मठमें शुभागमन हुआ। तब श्रील नारायण गोस्वामी महाराजने मुझे कहा—"तुम दोनों महाराजोंके साथ गोवर्धन जाकर उनके रहनेके लिए एक कक्षकी और प्रसादादिकी व्यवस्था करो।" उनके निर्देशके अनुसार मैंने गोवर्धनमें दानघाटी स्थित धर्मशालामें एक कक्षकी व्यवस्था कर पूज्यपाद नृसिंह प्रभुको प्रसाद रन्धनके लिए कहा। मैंने सायं ६ बजे श्रीगुरुमहाराज और श्रील त्रिविक्रम महाराजको साथमें लेकर दानघाटीमें श्रीगिरिराजकी पूजाकर परिक्रमा प्रारम्भ कर दी।

दानघाटीसे कुछ दूर श्रीगोवर्धन गौड़ीय मठके पाससे जब हम जा रहे थे, तब मैंने श्रील त्रिविक्रम महाराजसे पूछा—"महाराज, आपकी आविर्भाव तिथि किस माससमें है?" यह सुनकर त्रिविक्रम महाराजने कहा—"मेरा कोई शिष्य नहीं है, इसलिए मेरी आविर्भाव तिथिका पालन कौन करेगा?" तब गुरुमहाराज थोड़ा-सा पीछे थे। यह सुनकर उन्होंने कहा—"मैं आपकी तिथिका पालन करूँगा।" पूज्यपाद त्रिविक्रम महाराजने पीछे मुड़कर गुरुमहाराजसे कहा—"आप किस प्रकार मेरे जन्मदिनका पालन करेंगे? आपका और मेरा जन्मदिन तो एक नहीं है, पृथक्-पृथक् हैं।" किन्तु गुरुमहाराजने कहा—"मैं अवश्य ही पालन करूँगा।" परवर्त्ती कालमें यह देखा गया कि गुरुमहाराजने श्रील त्रिविक्रम गोस्वामी महाराजकी तिरोभाव तिथिको आश्रयकर ही अप्रकटलीला प्रकाशित की एवं इस प्रकार [आविर्भाव और तिरोभाव एक तात्पर्यपर हेतु] अपनी तिरोभाव-तिथिपर अपने आश्रितजनों द्वारा श्रील त्रिविक्रम गोस्वामी महाराजकी तिरोभाव तिथिका भी पालन करवाकर उस तिथिको आत्मसात् कर अपने उक्त वचनकी रक्षा की। इसके अतिरिक्त गुरुमहाराजने अपनी आविर्भाव तिथिके साथ श्रील नारायण गोस्वामी महाराजकी तिरोभाव तिथिको भी आत्मसात् किया। इसीसे उन्होंने दिखाया कि श्रील त्रिविक्रम गोस्वामी महाराज और श्रील नारायण गोस्वामी महाराजके साथ उनका किस प्रकारका अभेद सम्बन्ध है। ये तीन अभेदमूर्तियाँ परम गुरुदेव श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके शिष्यके रूपमें अप्राकृत दिव्यशक्तियाँ हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महेश रूपमें इन तीनोंकी आत्मा एक ही है, वह इस घटनासे प्रमाणित होता है।

[आविर्भाव-शतवार्षिकी-स्मारकसे अनुदित]

श्रीमती माया सरकार

बसिरहाट, २४ परगणा (उत्तर)

मैं श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठसे आया हूँ

मेरे शिक्षागुरुदेव हैं श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठके प्राक्तन आचार्यदेव श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज। श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ एवं वहाँके प्राक्तन आचार्यदेवके साथ मेरा परिचय दो अलौकिक घटनाओंके द्वारा हुआ था।

मेरे गुरुदेव त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिकुसुम श्रमण गोस्वामी महाराज श्रीधाम मायापुर स्थित श्रीचैतन्य मठके भूतपूर्व आचार्य थे। परन्तु मेरी दीक्षा श्रीधाम मायापुरमें नहीं हुई तथा मैं तबतक मायापुर नहीं गयी थी। मेरी दीक्षा कोलकाताके चैतन्य रिसर्च इन्स्टीट्यूटमें हुई थी। तबतक मैं किसी गौड़ीय मठका नाम तक नहीं जानती थी, परन्तु एक आश्चर्यजनक घटनाके माध्यमसे मैंने श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठका नाम सुना।

मेरी दीक्षाके एक-दो मासके अन्दर एक उत्सवके दिन मैंने बहुत-से पकवान बनाकर श्रीराधागोविन्दको भोग निवेदन किया एवं मन-ही-मन सोचने लगी कि मैंने जो इतने सारे भोग बनाये हैं, यदि कम-से-कम

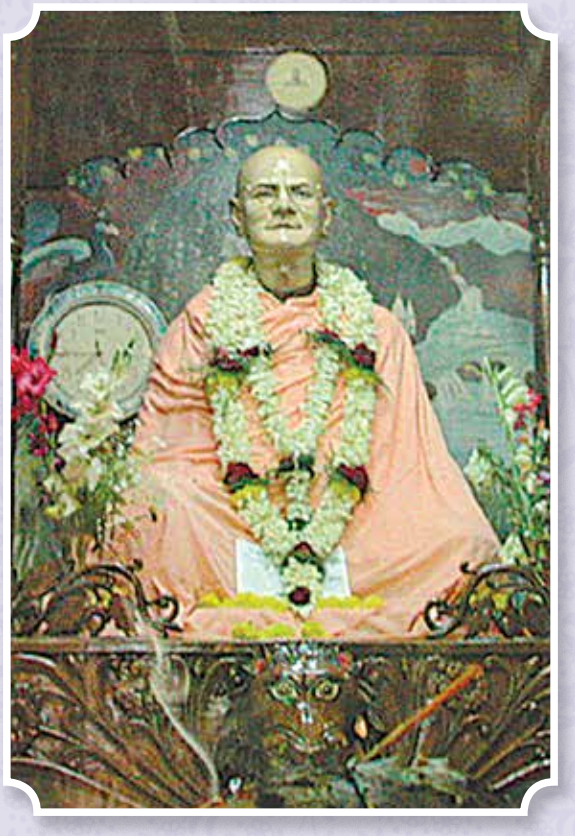

एक वैष्णव आकर इस प्रसादको ग्रहण करते, तो यह प्रसाद महा-महाप्रसाद हो जाता। हरिनाम करते-करते मैं यह सब सोच रही थी।

आश्चर्यकी बात है, इतनेमें सचमुच ही सुन्दर कान्तियुक्त एक वैष्णव-संन्यासी मेरे घरमें प्रविष्ट हुए एवं मुझसे भिक्षाकी याचना करने लगे। मैंने उनका दण्डवत् प्रणाम करते हुए पूछा—"महाराज! आप कहाँसे आये हैं?" उन्होंने कहा—"मैं श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठसे आया हूँ।" तब मैंने उनसे प्रार्थना की—"अब दोपहरका समय है, यदि आप यहाँ प्रसाद ग्रहण करते हैं, तब मैं अत्यन्त आनन्दित होऊँगी।" उन्होंने कहा—"माँ, मैं तो बोलकर आया हूँ कि मठमें लौटकर प्रसाद पाऊँगा।"

तब मैंने उनसे विनयपूर्वक अनुरोध किया—"आप कृपापूर्वक यहाँसे प्रसाद पाए बिना मत जाइए।" उन्होंने कहा—"अच्छा, ठीक है, मैं तुम्हारे यहाँ प्रसाद पाऊँगा।" उस दिन उन्होंने परम तृप्तिके साथ प्रसाद पाकर मुझे धन्य और कृतार्थ कर दिया।

बादमें जब मैं श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठके शाखामठ कोलकाताके हालदार बागान लेन स्थित श्रीविनोदविहारी गौड़ीय मठमें जाने लगी, तो उन संन्यासीको ढूँढती, परन्तु देख न पाती। अन्तमें जब श्रीनवद्वीप-धामकी परिक्रमाके समय श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें गयी, तब वहाँ परमहंसस्वामी अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके श्रीविग्रहका दर्शन कर चौंक पड़ी। इन महाराजने ही तो उस दिन मेरे घरमें प्रसाद सेवा की थी। उन्होंने कहा था—"मैं श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठसे आया हूँ और मठमें जाकर प्रसाद पाऊँगा।" तब मैं समझ गयी कि यह एक अलौकिक घटना थी। मेरी प्रार्थनासे किसीके लिए श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीपसे इतनी दूर वसिरहाटमें आना क्या सम्भव हो सकता है? पुनः किसीके लिए दोपहर १ बजे वसिरहाटसे श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीपमें लौटकर प्रसाद पाना क्या सम्भव है? उन्होंने तो कहा था कि वे मठमें लौटकर प्रसाद पायेंगे।

यह घटना अलौकिक है, क्योंकि श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज सन् १९६८ ई॰ में अप्रकट हुए थे, और मेरी दीक्षा हुई थी सन् १९८१ ई॰ में। अप्रकट अवस्थामें उन्होंने मुझे प्रकट-लीलाका दर्शन कराया है, यही अलौकिक है। जिस प्रकार भगवान् प्रकट-अप्रकट दोनों लीलाओंमें अपनी इच्छाके अनुसार सब कुछ करनेमें समर्थ हैं, उसी प्रकार भगवान्की स्वरूपशक्ति श्रीराधारानीके अंशस्वरूप शुद्ध वैष्णवगण भी अनेक अलौकिक कार्य करनेमें समर्थ हैं। 'कृष्णभक्ते कृष्णेर गुण सकलि सञ्चारे।'

इस घटनाके द्वारा ही श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठसे मेरा परिचय एवं कोलकाता स्थित श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठके शाखा मठ श्रीविनोदविहारी गौड़ीय मठके साथ भी मेरा परिचय होना एक आश्चर्यजनक घटना है।

आपके पास कुछ लिखित प्रबन्ध हैं

एक दिन मैंने वसिरहाट पूर्वाञ्चलीय गौड़ीय मठसे सन्ध्या-आरती दर्शनकर घरमें लौटकर देखा कि एक आश्चर्यजनक घटना मेरी प्रतीक्षा कर रही थी। घरमें लौटने पर मेरे पतिदेव (मास्टरजी) ने मुझसे कहा—"कोलकाताके हालदार बागान लेन स्थित श्रीविनोदविहारी गौड़ीय मठसे एक ब्रह्मचारी तुमसे मिलने आये हैं।" मैंने पूछा—"वे कहाँ हैं?" वे घरमें बैठे थे। मेरी आवाज सुनकर वे बाहर बरामदेमें आये और मुझे प्रणाम किया, मैंने भी उनको प्रणाम किया। उन्होंने मुझे 'पिसिमा' (बुआजी) सम्बोधन किया। उनके सम्बोधनसे मैंने उनके प्रति स्नेहसिक्त बन्धनका अनुभव किया। यह बन्धन पारमार्थिक जगत्का बन्धन है। मेरे श्रीगुरुदेव—श्रीमद्भक्तिकुसुम श्रमण गोस्वामी महाराज उनके परम गुरुदेव—श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके गुरुभ्राता थे। यह 'पिसिमा' सम्बोधन उसके कारण है। इन सौम्य कान्तियुक्त ब्रह्मचारीजीने बुआजी सम्बोधन कर कहा—"मेरे श्रीगुरुदेवने मुझे आपके पास भेजा है।" मैंने पूछा—"आपके गुरुदेव कौन हैं?" उन्होंने कहा—"त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज मेरे श्रीगुरुदेव हैं। मेरा नाम सत्यानन्द ब्रह्मचारी है।" मैंने कहा—"मैंने तो अभी तक आपके श्रीगुरुदेवका दर्शन भी नहीं किया है, उन्होंने आपको किसलिए भेजा है?" उन्होंने कहा—"आपके पास कुछ लिखित प्रबन्ध हैं, गुरुदेवने मुझे उन प्रबन्धोंको लेनेके लिए भेजा है, हमारी श्रीगौड़ीय-पत्रिकामें प्रकाशित करनेके लिए।"

मैंने कहा—"मेरे पास वे लिखित प्रबन्ध हैं, वह आपके गुरुदेव कैसे जानते हैं?"

इसके उत्तरमें प्रभुजीने कहा—"वह मैं नहीं जानता।"

यह प्रश्न आज भी मेरे पास प्रश्न होकर ही रह गया है। यहीं श्रीगुरुतत्त्वकी विशेषता छिपी हुई है। गुरुतत्त्व कदापि पृथक् नहीं हैं।

इस घटनाके कुछ दिन पहले ही मेरे श्रीगुरुदेव अप्रकट हुए थे। श्रीगुरुदेवकी विरह-स्मृति तब मुझे सदैव घेरे हुए थी। ऐसे विरहके दिनोंमें श्रीगुरुदेवके अभिन्न-विग्रहके रूपमें श्रील वामन गोस्वामी महाराजने मेरे निकट संवाद भेजा मेरे द्वारा लिखित प्रबन्धोंको प्रकाशित करनेके लिए।

मेरे परमाराध्यतम श्रीगुरुदेवने ही अत्यन्त स्नेहपूर्वक एक-एक प्रबन्धको स्वयं आदेश करते हुए अपनी शक्तिका सञ्चार करके इस अधीनाके हस्तमें लेखनी धारण कराके लिखवाया था। श्रीगुरुदेवकी बहुत इच्छा थी कि ये लेख प्रकाशित हों। परन्तु श्रीगुरुदेवके अप्रकटके बाद उन प्रबन्धोंको प्रकाशित करनेकी जब मेरी कोई इच्छा या शक्ति नहीं थी, तब श्रीगुरुदेवके अभिन्न-विग्रहके रूपमें श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज अपने प्रिय शिष्यको भेजकर उन प्रबन्धोंको ले गये। उन लेखोंको उन्होंने अपनी श्रीगौड़ीय-पत्रिकामें धारावाहिक रूपमें प्रकाशित किया एवं सत्यानन्द प्रभु(श्रीगोविन्द महाराज)को देकर उन्हें ग्रन्थके आकारमें भी प्रकाशित कर दिया।

परवर्ती समयमें उन्होंने मेरे श्रीगुरुदेवके अभिन्न स्वरूपमें मेरी लेखनीमें पुनः शक्तिका सञ्चार किया। इस दृष्टान्तसे मुझे अनुभव हुआ है कि गुरुतत्त्व एक और अभिन्न हैं। श्रीकृष्णकी गुरुशक्ति ही समस्त गुरुओंके माध्यमसे कार्य करती हैं। इसलिए मेरे गुरुदेवकी इच्छा मेरे इन शिक्षागुरुके माध्यमसे फलवती हुई।

[आविर्भाव-शतवार्षिकी-स्मारकसे अनुदित]

श्रीद्विजकृष्ण दास ब्रह्मचारी

(गोवर्धन)

ये महाराजजी तो कुछ दिन पहले ही गोपालजीके दर्शन करने आये थे

श्रील गुरुमहाराज ब्रह्म-माध्व-गौड़ीय-सम्प्रदायके आचार्य श्रीमन्मध्वाचार्यके द्वारा उडुपीमें प्रतिष्ठित दधि-मन्थन-दण्डधारी श्रीबालगोपालजीके दर्शन करनेकी इच्छा बहुत दिनोंसे पोषण कर रहे थे। किन्तु विभिन्न कारणोंसे उनका वहाँ जाना सम्भव नहीं हो पा रहा था। अतः एक बार भुवनेश्वरमें एक भक्तके घरमें रहते समय गुरुमहाराजने चार सेवकोंको साथ ले जानेका निर्णय करके भुवनेश्वरसे उडुपीकी वायुयानकी टिकटें आरक्षित करवा ली। परन्तु यात्रासे पहले ही गुरुमहाराज अस्वस्थ हो गये जिसके कारण उनको उडुपीकी यात्राको रद्दकर वहींसे वापस कलकत्ता लौटना पड़ा। उडुपी न जा पानेके कारण गुरुमहाराज कुछ दुःखी हो गये। कलकत्तामें डॉक्टरने श्रील गुरुमहाराजकी चिकित्सा आरम्भ की और उन्हें विश्राम करनेका निर्देश दिया।

जब कलकत्तामें सभी भक्तों और ब्रह्मचारियोंने आकर गुरुमहाराजका दर्शन किया, तब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि गुरुमहाराजने उडुपी जानेके लिये इच्छा की थी, किन्तु वे अस्वस्थ होनेके कारण नहीं जा पाये। तब दो ब्रह्मचारियोंने यह विचार करके कि हम गुरुमहाराजजीके चित्रपटको ले जाकर उसके द्वारा उन्हें गोपालजीके दर्शन करवायेंगे, उन्होंने उडुपी जानेके लिये टिकट बनवा लिये। उडुपीमें वे मन्दिरमें दर्शन करनेके लिये पहुँचे। दर्शन खुलनेपर उन्होंने गुरुमहाराजके चित्रपटको लेकर गोपालजीके सामने कर दिया जिससे गुरुमहाराज गोपालजीका दर्शन करें। हठात् मन्दिरके पुजारीने बाहर आकर देखा कि दो ब्रह्मचारी एक संन्यासीके चित्रपटको लेकर गोपालजीका दर्शन करा रहे हैं। गुरुमहाराजके चित्रपटको देखकर पुजारी बोले कि—ये महाराजजी तो अभी कुछ दिन पहले ही यहाँ गोपालजीके दर्शन करनेके लिये आये थे। मैंने उन्हें गोपालजीकी प्रसादी माला पहनायी थी और गोपालजीका लड्डू भोगका प्रसाद भी दिया था। तब महाराजजी दण्डवत्-प्रणाम करके एवं गोपालजीकी सेवाके लिए कुछ प्रणामी देकर चले गये। किन्तु उस समय महाराजजी अकेले थे, उनके साथ कोई भी नहीं था। वे दोनों ब्रह्मचारी पुजारीकी इस बातका विश्वास नहीं कर पा रहे थे, क्योंकि वे गुरुमहाराजको तो कलकत्तामें अस्वस्थ अवस्थामें डॉक्टरके निर्देशसे विश्राम करते हुए देखकर आये थे। किन्तु उन्होंने पुजारीसे इस विषयमें कुछ नहीं कहा।

कलकत्ता लौट आनेपर उन्होंने गुरुमहाराजके सेवकको उडुपीके पुजारीकी सब बात बतलायी। उन सेवक प्रभुने जब गुरुमहाराजसे पूछा,—"क्या आप गोपालजीका दर्शन करनेके लिये उडुपी गये थे?" इसके उत्तरमें गुरुमहाराज मुखसे कुछ नहीं बोलकर केवल थोड़ा-सा मुस्कराकर सिर हिलाने लगे। इसके द्वारा वे सचमुच एक स्वरूपसे सेवकोंके निकट अवस्थान करते हुए दूसरे स्वरूपसे गोपालजीके दर्शन कर आये थे, उन्होंने प्रकान्तरमें स्वीकार किया। यह उनके जीवन-चरितकी एक अतिमर्त्य घटना है।

[सौजन्य—श्रीवैष्णव दास]

मेरे लिये आदेश हुआ है

यह सन् १९९४ ई. के लगभग की घटना है। श्रीगुरुपादपद्म श्रील वामन गोस्वामी महाराज, श्रील नारायण गोस्वामी महाराज और हम सब उनके सेवक श्रीनवद्वीप-धाम-परिक्रमाके समय श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें उपस्थित थे। एक दिन प्रातःकाल चार बजे श्रीगुरुमहाराजने अपने सेवकको श्रील नारायण गोस्वामी महाराजजीको बुलानेके लिये भेजा। श्रीगुरुमहाराजने पूर्व संध्यामें ही पुजारीसे श्रीराधाजीकी प्रसादी मालाको मँगवाकर अपने पास रख लिया था। तथा पहलेसे ही अपने कमरेमें अपने बिस्तरके निकट एक कुर्सीपर आसन लगवाकर रख लिया था। जब श्रील नारायण गोस्वामी महाराजजी श्रीगुरुमहाराजजीके कमरेमें आये तो गुरुमहाराजने उनको कुर्सीपर बैठनेको कहा और स्वयं अपने हाथोंसे वह माला श्रील नारायण गोस्वामी महाराजजीको पहना दी। फिर जैसे श्रीकृष्ण श्रीबलदेवके कन्धेपर बाजु रखकर खड़े होते हैं, उसी प्रकार श्रीगुरुमहाराज श्रील नारायण गोस्वामी महाराजके कन्धेपर बाजु रखकर बोले,—"महाराजजी इस जगत्से सबसे पहले त्रिविक्रम महाराजजी हम सबको छोड़कर चले जायेंगे और तत्पश्चात् मैं भी चला जाऊँगा। श्रीगुरुपादपद्म(श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज)ने आपके लिये कुछ सेवा निर्धारित करके रखी है। आप वह सेवा करनेके उपरान्त ही जायेंगे।" श्रील नारायण गोस्वामी महाराज, श्रीगुरुमहाराजके श्रीमुखसे ऐसी भविष्यवाणी सुनकर हाथ जोड़कर बहुत रोने लगे, हम सभी उनके निरन्तर बहते अश्रुओंको देखकर अवाक् रह गये। श्रील नारायण गोस्वामी महाराजका कण्ठ अवरुद्ध हो गया। कुछ समय बाद उन्होंने श्रीगुरुमहाराजसे कहा,—"महाराजजी, आप दोनों हम सबको छोड़कर चले जायेंगे और मैं अकेला रह जाऊँगा? मुझमें कोई भी योग्यता नहीं है। गुरुजी मुझसे क्या सेवा करवायेंगे? आप सबकी सहायताके बिना मैं असहाय हो जाऊँगा।" ऐसा कहकर वे पुनः करुण रोदन करने लगे। जब उनका रोदन रुका, तब श्रीगुरुमहाराजने कहा,—"महाराजजी यह मेरे लिये आदेश हुआ है और यह बात मैंने आपको बतला दी। अब आप अपनी भजनकुटीमें जा सकते हैं।" ऐसा कहकर श्रीगुरुमहाराज शान्त हो गये और श्रील नारायण गोस्वामी महाराजजी अपनी भजनकुटीमें चले गये। जब यह वार्तालाप हुई थी, तब मैं साक्षात् वहाँपर उपस्थित था।

आपके चरणोंमें यह मिट्टी कैसे लग गयी

एकसमय श्रीगुरुमहाराज श्रीराधाविनोदबिहारी गौड़ीय मठ कलकत्ता, हालदार-बागान लेनमें तीसरे तलेपर स्थित अपनी भजनकुटीरमें लेटे हुए थे। उस समय प्रातःकालके लगभग आठ बजे थे और उनके सेवकने भीतर झाँककर देखा कि गुरुमहाराज अभी जगे हुए हैं, सो नहीं रहे हैं। तब वह सेवक भजनकुटीरके भीतर गुरुमहाराजके निकट आ गया और उसने देखा कि गुरुजीके चरणोंमें कुछ मिट्टी लगी है। उस समय श्रीगुरुपादपद्म अस्वस्थ लीला कर रहे थे और वे पन्द्रह दिनोंसे मठमें अपनी भजनकुटीसे नीचे भी नहीं आये थे। वे अपने कक्षसे भी कहीं बाहर नहीं गये थे। तब सेवकने गुरुमहाराजसे पूछा,—"गुरुदेव आपके चरणोंमें यह मिट्टी कैसे लग गयी?" गुरुमहाराज उस समय आवेशमें बोले,—"मैं वृन्दावनमें यमुनाके तटपर गया था, वहाँ श्रीमती राधाठाकुरानीने मुझे अपनी कुछ सेवा प्रदान की थी।" ऐसा कहकर श्रीगुरुमहाराजने आँखें खोली और अपने निकट सेवकको खड़े हुए देखा तो तत्काल वे मौन हो गये और उससे बोले, —"यह बात किसीको नहीं बताना।" तब उन सेवकने गुरुमहाराजके चरणोंसे उस मिट्टीको निकालकर अपने पास रख लिया और बादमें उस मिट्टीको कुछ भक्तोंको भी बाँटा।

[सौजन्य—श्रीगोकुलानन्द प्रभु]

आप शीघ्रतासे आकर नावमें बैठ जाइये

बहुत पुरानी बात है। तब पत्रके द्वारा ही संवादका आदान-प्रदान होता था। एक समय श्रीगुरुमहाराजने उमा दीदीके घर चुँचुड़ामें जानेका कार्यक्रम बनाया तथा उमा दीदीकी बड़ी बहन गार्गी बुआ, जो श्रीपरम गुरुदेवकी शिष्या थीं, उनको पत्र द्वारा सूचित कर दिया कि मैं अमुक दिन आपके घरमें आऊँगा। निर्धारित दिनमें श्रीगुरुमहाराज दो सेवकों—श्रीसुन्दरानन्द ब्रह्मचारी और एक गृहस्थ भक्त श्रीजगन्नाथ झा (बिहार निवासी) को साथमें लेकर नवद्वीपसे चुँचुड़ाके लिये चले। श्रीगुरुमहाराज नवद्वीपसे लोकल ट्रेनसे बैंडल स्टेशनपर पहुँचे। वहाँसे फिर दूसरी ट्रेन पकड़ कर नईहाटी गये। नईहाटीसे नदी पार करके उमा दीदीके घरमें जाना होता था। उस समय नदीके ऊपर कोई पुल नहीं था और नदी पार करनेके लिये बड़ी-बड़ी नावें जिनको स्टीमर कहते हैं, उनका प्रयोग हुआ करता था। उस समय दिसम्बर मास था और बहुत कोहरा छाया हुआ था। बीस फुटके आगे कुछ भी दिखायी नहीं दे रहा था। गुरुमहाराज जब अपने सेवकोंके साथ नौकाके घाटपर पहुँचे, तो देखा कि कोहरेके कारण कोई भी नाव नहीं चल रही है और वहाँ लोगोंकी भीड़ लगी है। श्रीगुरुमहाराज सब समय अपने दिये गये निर्धारित समयका बहुत ध्यान रखते थे। वे विचार करने लगे, कैसे जाऊँगा, समय निकलता जा रहा है। गुरुमहाराज जहाँ नदीके तटपर खड़े थे, वहीं नईहाटीके निकट एक स्थान है जो श्रीमन्महाप्रभुजीके गुरुदेव श्रील ईश्वरपुरी पादका जन्मस्थान है। उसका नाम चैतन्य-डोवा है। वहाँपर बहुत सुन्दर दर्शन होते हैं। गुरुमहाराज मनमें सोच रहे थे कि मैं कैसे नदी पार करूँ, समय बीतता जा रहा है और मुझे विलम्ब नहीं करना चाहिये। परन्तु कोई साधन नहीं था, तभी अचानक एक मछुआरा नदीमें छोटी नाव लेकर आ गया। उस नावमें तीन-चारसे अधिक व्यक्ति नहीं बैठ सकते हैं। वृद्ध मछुआरा छोटी नावको लेकर गुरुमहाराजसे थोड़ी दूर घाट पर आया और वहाँ पर नाव लगाकर उसने गुरुमहाराजसे कहा,—"आप शीघ्रतासे आकर नावमें बैठ जाइये।" तब गुरुमहाराज अपने दोनों सेवकोंको लेकर नावमें बैठ गये और वह वृद्ध व्यक्ति नाव चलाने लगा। तटपर अन्य लोग जो नदी पार करनेके लिये नावकी प्रतीक्षा कर रहे थे, वे भी चिल्लाने लगे,—"हमें भी ले जाओ, हमें भी ले जाओ।" परन्तु उस नावमें अन्य किसीके बैठनेका स्थान ही नहीं था। उस नाविकने शीघ्रतासे नाव चलानी आरम्भ कर दी। कोहरेके कारण अधिक कुछ दिख नहीं रहा था और वहाँपर नदी भी बहुत विस्तृत थी। नावके द्वारा साधारणतया उसको पार करनेमें एक-डेढ़ घण्टा लग सकता था, क्योंकि वहाँपर नदीका बहाव बहुत तेज था। परन्तु वृद्ध नाविकने १५-२० मिनटके भीतर ही नावको उस पार पहुँचा दिया।

उमा दीदीके घरके पास ही उस नदीका घाट है 'चुँचुड़ा घाट'। जब नाव उस घाटपर पहुँची, तब गुरुमहाराज और उनके सेवक नावसे उतरे। गुरुमहाराजने अपने सेवकको नाविकको भाड़ा देनेके लिये कहा। सेवक बीस रुपये लेकर जाने लगा, गुरुमहाराजने सेवकसे पूछा,—"कितना भाड़ा दोगे?" सेवकने कहा कि बीस रुपये दे दूँगा जो उचित है। गुरुमहाराजने कहा,—"नहीं-नहीं।" यह कहकर अपनी जेबसे बीस रुपये निकालकर सेवकको दिये और कहा,—"जाओ, ये चालीस रुपये देकर आओ।" जब सेवक भाड़ा देनेके लिए पीछे मुड़ा तो आश्चर्यचकित हो गया, क्योंकि वहाँ तो कोई भी नहीं था। न तो नाव और न ही नाविक। स्वयं प्रभुने नाविकके रूपमें आकर अपने निजजनके वचनकी रक्षा की।

[सौजन्य—श्रीजगन्नाथ झा]

श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजके अप्राकृत शिक्षामृत-सिन्धुके कुछेक बिन्दु

श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजकी उपदेशावली

—संग्रहकर्त्ता श्रीमद्भक्तिवेदान्त श्रीधर महाराज (वृन्दावन)

१) सबसे पहले हमारा सम्बन्ध-ज्ञान स्थापित होना आवश्यक है। भगवान् ही हमारे नित्य पति हैं, श्रीगुरुदेव हमारा उन पतिके साथ सम्बन्ध करवा देते हैं, इसलिये गुरुदेवको "सम्बन्ध ज्ञानदाता" कहते हैं और सम्बन्धज्ञानका नाम ही दीक्षा अथवा दिव्यज्ञान है।

२) विषयीगण प्रातःकालमें मल-त्यागादिसे आरम्भ करके स्नान-भोजनादि सब कुछ विषय-सुखके लिये ही करते हैं। भगवद्भक्तगण भी उन-उन कार्योंको भगवद्-सेवाके उद्देश्यसे करते हैं और वे सब कार्य भक्तिके अङ्गरूपमें ही पर्यवसित होते हैं।

३) सम्बन्ध ज्ञानयुक्त भक्त सभी कार्य भगवद्-प्रीति अथवा सेवाके उद्देश्यसे करते हैं, और विषयी व्यक्ति अपने-अपने ऐहिक-पारलौकिक सुख-सुविधाके लिये ही उन-उन कार्योंको करते हैं। यहाँपर सम्बन्ध-ज्ञान ही भगवद्-सेवाके अनुकूल और सम्बन्ध-विहीन अवस्था ही प्रतिकूल भावकी सृष्टि करता है।

४) सम्बन्धके बिना अभिधेयका निर्णय नहीं होता, और अभिधेयका साधन किये बिना सम्बन्ध दृढ़ नहीं होता। अभिधेयके बाद ही 'प्रयोजन' सिद्ध होता है।

५) साध्वी पत्नी कभी भी किसी दूसरेसे प्रशंसा प्राप्त करनेके लिये पतिकी सेवा नहीं करती अथवा उस सेवाके विनिमयमें अलङ्कार, वेशभूषा आदि किसीकी भी कामना नहीं करती। वह पतिके सुखके लिये ही पतिकी सेवा करती है; पतिकी प्रीति ही अर्थात् सन्तोष ही उसका प्रयोजन है, पतिके सुखमें ही उसका सुख है। वैसे ही सभी प्रकारसे अपने स्वार्थका त्याग करके भगवद्-प्रीतिका अनुष्ठान ही भक्त-जीवनका मूल-मन्त्र है।

६) साधु-शास्त्र कहते हैं—"आदौ गुरुपदाश्रय"। भक्ति प्राप्त करनेकी इच्छा करनेपर पहला और प्रधान कर्त्तव्य सद्गुरुका पदाश्रय है। तत्त्वजिज्ञासु व्यक्ति अपने आत्यन्तिक मङ्गलको जाननेके लिये शब्दब्रह्ममें सुनिपुण और परब्रह्ममें निष्णात् पारमार्थिक सद्गुरुका पदाश्रय करेंगे। पारमार्थिक गुरु-वरण करनेके समय व्यवहारिक विचार आनेपर वास्तव सत्यको प्राप्त नहीं किया जा सकता।

७) जो शास्त्रके अनुसार आचरण करके शिष्योंको उस आचारमें स्थापित करते हैं, वे ही वास्तवमें आचार्य हैं। इसके विपरीत-पथगामी वैष्णव-विद्वेषी कभी भी आचार्य नहीं कहला सकते।

८) जो शासित होते हैं, वे शिष्य हैं और जो शासन करते हैं, वे ही गुरु हैं। प्राकृत जाति-कुल-पाण्डित्य और लौकिक आचारकी अपेक्षा ना करके, परमार्थका अनुसन्धान करनेवाले व्यक्तिका कृष्णतत्त्ववित् पारमार्थिक सद्गुरु पादपद्मका एकान्त-भावसे आश्रय करना कर्त्तव्य है।

९) भक्ति स्वीकार करनेपर भक्ति, भक्त और भगवान्का पृथक् अवस्थान और नित्यत्व स्वीकार करना होता है।

१०) नित्य-पदार्थका आश्रय करनेपर ही नित्यवस्तु प्राप्त होती है, अनित्य वस्तुका आश्रय करनेपर कोई भी नित्यवस्तुको प्राप्त नहीं कर सकता। इसलिये वैष्णवगण नित्यसत्यका आश्रय ग्रहण करते हैं।

११) गुरुदेव नित्य-पदार्थ हैं, वे नित्यकाल भगवान्‌के प्रेष्ठ विग्रहरूपमें अवस्थान करते हैं। शिष्य नित्यकाल उनके आनुगत्यमें कृष्णसेवा करते हैं। अतएव इस प्रकार नित्यपदार्थ या वैष्णवगुरुका श्रीचरणाश्रय करना सबके लिये एकान्त कर्त्तव्य है।

१२) हम भक्तिसाधकोंको सबसे पहले सद्गुरु पदाश्रयके लिये भगवान्‌के निकट व्याकुल होकर कातर भावसे प्रार्थना करनी चाहिये। भगवान् हमारी प्रबल आर्त्ति देखकर हमें शुद्धपथपर चलानेके लिये महान्त गुरुको प्रेरित करेंगे। अन्यथा हम अपनी क्षुद्र बुद्धिके द्वारा कभी भी अप्राकृत सद्गुरुका दर्शन नहीं कर सकेंगे।

१३) जो गुरु हमारे मनसे मन मिलाकर चल सकें, प्रचलित जनमतको जो धर्म-कर्म कहते हों, उस प्रकारके कार्योंमें जो ईंधन प्रदान अर्थात् प्रोत्साहित करते हों, उनको 'गुरु' कहकर माननेपर जीवन वृथा ही विपथमें चला जायेगा।

१४) भगवत्-सेवाके बदले प्रच्छन्न इन्द्रिय-तर्पणको ढूँढ़ते हुए किसी वैष्णवविद्वेषी प्राकृत सहजियाके कृत्रिम हाव-भावमें प्राकृत पाण्डित्य आदि लोकवञ्चनाके बाह्यविषय देखकर उसको महाभागवत परम वैष्णव मानकर इस प्रकार प्रच्छन्न अवैष्णवको गुरुपदरूपमें वरण करनेपर शुद्धभक्तिपथसे चिरकालके लिये विच्युत हो जायेंगे।

१५) जो निष्कपट रूपसे हरि-गुरु-वैष्णवकी सेवा करना चाहते हैं, भगवान् उनके निकट महान्त-गुरुके रूपमें आविर्भूत होते हैं। कृष्णैकनिष्ठा महान्त-गुरुका स्वरूपलक्षण है। इस प्रकारके सद्गुरुका पदाश्रय करनेपर ही भक्ति-साधककी अभीष्ट-सिद्धि होती है।

१६) सभी शक्तियोंके मूल आधार अखिलरसामृतमूर्ति मायाधीश श्रीहरि ही एकमात्र परतत्त्व हैं। जीव उनके विभिन्न अंश हैं। भक्ति ही एकमात्र साधन और कृष्णदास्य अथवा कृष्णप्रेम ही जीवकी साध्य वस्तु है। यही शुद्धजीवका और उसके सिद्धस्वरूपका परिचय है।

१७) जीवकी दो अवस्थाएँ हैं—सिद्धावस्था और बद्धावस्था। शुद्धावस्थामें जीवका जड़से सम्बन्ध नहीं होता। 'कृष्णदास' अभिमान ही जीवका शुद्ध परिचय है। कृष्णप्रेम ही उसका स्वरूप-धर्म है। सेव्यके प्रति सेवकका जो सहज आनुगत्य भाव है, वही प्रेम या प्रीतिका मूल कारण है। सेव्य, सेवक और सेवा—ये तीनों वस्तुएँ ही नित्यसिद्ध तत्त्व हैं।

१८) जीवका सम्बन्धज्ञान उदित करानेके निमित्त परम करुणामय जीवके दुःखमें दुःखी भगवान् स्वयं अपने प्रियजनोंको इस जगत्‌में भेजते हैं, और कभी वे स्वयं भी साधु-गुरु-शास्त्ररूपमें अवतीर्ण होकर मूढ़ जीवोंको अपने तत्त्वका ज्ञान कराते हैं। इसलिये साधु-गुरुरूपमें ही भगवत्-कृपा इस जगत्‌में वर्षित होती है।

१९) सद्गुरुसे सम्बन्धज्ञान प्राप्त करके ही जीव अपने स्वधर्ममें—प्रेमधर्ममें प्रतिष्ठित होता है।

२०) क्या आर्थिक, और क्या पारमार्थिक—सभी क्षेत्रोंमें ही उपयुक्त गुरुके बिना कोई भी कार्य सुसिद्ध नहीं होता। इसलिये नित्य कल्याणप्रद भगवद्भक्ति और भगवद्-तत्त्व जाननेके लिये निश्चय ही सद्गुरुका प्रयोजन है। गुरुकृपाके बिना अपनी चेष्टासे कभी भी जीवकी बद्धदशा दूर नहीं होती और कृष्णभक्ति प्राप्त नहीं हो सकती। अतएव आत्यन्तिक मङ्गलकामी सनातन-धर्मके आश्रितको सबसे पहले सम्बन्धज्ञान उदयके निमित्त अवश्य ही सद्गुरु-पदाश्रय ग्रहण करना कर्त्तव्य है।

२१) दीक्षा आदि ग्रहण ना करनेपर जन्म-जन्मान्तरमें अशेष दुःख प्राप्त होता है और सद्गति नहीं होती। अदीक्षित व्यक्तिका जीवन व्यर्थ है। उसके द्वारा प्रदत्त

कोई भी द्रव्य भगवान् ग्रहण नहीं करते हैं और उसकी सब प्रकारकी चेष्टाएँ विफल हो जाती हैं। अजितेन्द्रिय व्यक्ति गुरु पदाश्रय ना करके चञ्चल मनको स्थिर करनेका प्रयत्न करते हैं और अपनी चेष्टासे संसारके दुःखोंको नाश करनेका प्रयास करनेपर वे और भी अधिक विपदाग्रस्त हो जाते हैं। इसलिये नाविकके बिना समुद्रमें डूबते हुए निराश्रित यात्रीके समान उनकी भी दुर्दशाकी सीमा नहीं है।

आश्रय लइया भजे, तारे कृष्ण नाहि त्यजे,
आर सब मरे अकारण।
संसारेर पार हैया भक्तिर सागरे।
ये डुबिबे से भजुक निताइ चाँदेरे॥

२२) **सत्-शिष्यके लक्षण और परिचय**—मैं अति मूर्ख, दीनहीन बद्धजीव हूँ। धर्म-अधर्मके विषयमें मुझे कोई वास्तविक ज्ञान नहीं है। भगवत्-तत्त्वसे अनभिज्ञ होकर मैं 'कार्पण्य'-दोषसे अभीभूत हुआ हूँ। हे आचार्यदेव! मेरे लिये जो कुछ श्रेयस्कर है, उस विषयमें कृपापूर्वक उपदेश प्रदान करके मेरे संशयको दूर कीजिये। मैंने आपका शिष्यत्व स्वीकार किया है, आपके शरणागत हुआ हूँ। मुझ शरणागतको अपना दास जानकर शासनके द्वारा मेरा संशोधन करें—यही वास्तविक शिष्यकी मनोवृत्ति होती है।

२३) **गुरुसेवक होनेका अधिकार**—निष्पाप, हरि-गुरु-पूजामें अनुरक्त, जितेन्द्रिय, दयालु व्यक्ति ही शिष्य होनेका योग्य पात्र है। अभिमानशून्य, निर्मत्सर, आलस्यरहित, जड़वस्तुओंमें ममताहीन, गुरुमें दृढ़ मित्रतायुक्त, अचञ्चल, गुणीगणोंके दोषको नहीं देखनेवाला, प्रजल्प नहीं करनेवाला व्यक्ति ही गुरु-सेवक हो सकता है।

२४) **शिष्यका गुरुसेवाके सम्बन्धमें कर्त्तव्य**—प्रतिदिन गुरुके लिये जलके पात्रको भरकर लाना, कुश-पुष्प-यज्ञीय काष्ठको लेकर आना, गुरुके शरीरका मार्जन, गृहका मार्जन, कपड़े धोना, गुरुके प्रिय और हितकर कार्योंका अनुष्ठान करना; गुरुके गुरुसे गुरुके समान व्यवहार, गुरुकी अनुमति लेकर ही पिता-माताके साथ वार्त्तालाप, सर्वत्र ही गुरु-दर्शन करते ही भूमिपर गिरकर दण्डवत् प्रणाम करना, नित्य ही प्रीतिजनक, मनोहर अन्न-जलादि वस्तुओंको गुरुको समर्पित करना और उनके उच्छिष्टको ग्रहण करना।

२५) सेव्य भगवान् श्रीकृष्ण गुरुके शरीरमें अवस्थित हैं, ऐसा जानकर भगवद्-बुद्धिसे गुरुको प्रणाम करना, अपनी समस्त सम्पत्ति और निजदेहको दक्षिणा-स्वरूप गुरुको समर्पित करना।

२६) श्रीराधा ठाकुरानीकी सेवाके बिना श्रीकृष्णकी सेवा प्राप्त करना बहुत दूरकी बात है। इसे जाननेके लिये साधकमात्रका ही स्वाभाविक आग्रह होता है। गोलोकधामके रासमण्डलमें जो कन्या प्रकटित होकर श्रीकृष्णके निकट धावित हुई थीं, पुराणको जाननेवाले पण्डितगण उनको 'राधा' कह कर पुकारते हैं। वे ही राधा, श्रीकृष्णके प्राणोंकी अधिष्ठात्री देवी हैं।

२७) बहुतसे लोग कहते हैं कि श्रीमद्भागवत वैष्णव-शास्त्र होनेपर भी इसमें राधिकाका नाम नहीं देखा जाता—जिनको लेकर श्रीकृष्णका समस्त लीला-विलास होता है। किन्तु जिनको महाप्रभुकी धारामें गुरुवर्गोंके आनुगत्यमें भागवतकी आलोचनाका सुयोग प्राप्त हुआ है, वे सर्वत्र ही राधारानीके नामका दर्शन कर पाते हैं—"अन्याराधितो नूनम्", "जन्माद्यस्य यतो", "रमाक्रीड़न अभृतनृप", "श्रयत इन्दिरा", "योगमायां उपासृता" आदि।

२८) श्रीमन्महाप्रभुने सर्वश्रेष्ठ वैष्णवता और आराधनाकी बात ही जगत्के जीवोंको बतलायी है। उन्होंने अखिलरसामृतमूर्ति श्रीव्रजेन्द्रनन्दनको ही मधुररतिका

उपास्य 'कान्त'रूपमें निर्णीत किया है। इस प्रकारकी आराधनामें ही उपासनाकी श्रेष्ठता प्रदर्शित हुई है।

२९) भगवत् अनुग्रहके बिना विज्ञान-रहस्यसे युक्त अद्वयज्ञानके स्वरूपकी उपलब्धि नहीं होती। श्रौतपन्थका अतिक्रम करके भगवत्-ज्ञानकी प्राप्ति नहीं होती। भगवत्-ज्ञान प्राप्तिका प्रमाण भजनकारीकी भजनीय वस्तुकी सेवावृतिमें अवस्थित होता है।

३०) श्रीजगन्नाथ रथयात्राके महोत्सवका यथार्थ तात्पर्य यह है—श्रीराधाके अनुगतजन व्रजेन्द्रनन्दनको प्रेमकी रस्सीके द्वारा खींचकर ऐश्वर्य—लीलाक्षेत्र श्रीक्षेत्र नीलाचलसे माधुर्य-भूमि सुन्दराचल वृन्दावनमें ले जा रहे हैं—इसकी उपलब्धि करना।

३१) हमें रूपानुग गौड़ीय गुरुवर्गकी वाणीमें यह प्राप्त होता है—जड़चिन्ता और जड़धर्मको दूर करके क्रमशः चिद्धर्मकी उन्नति साधन कर पानेमें ही व्रजमें गोपी जन्म प्राप्त होगा। गोपी हुए बिना कृष्णभजन नहीं होगा।

३२) श्रीगौरसुन्दरका अनर्पितचर महादान अर्थात् श्रीराधा-माधव-भजनरीति सुदुर्लभ होनेपर भी उन्होंने उसका महादान किया, उसमें मेरा कुछ भी अनुशीलन और आलोचनाका समय एवं सुयोग नहीं हुआ है। मैं अनर्थ और मायाके प्रभावमें इतना अधिक आविष्ट हूँ कि उस अनर्थ राशिको दूर करके अपना संशोधन नहीं कर पा रहा हूँ।

३३) गुरु-वैष्णव-भगवान्—ये तीन परस्पर अचिन्त्य-भेदाभेद तत्त्व हैं। श्रीगुरुपादपद्मका निष्कपट स्मरण करनेपर ही हमारे विघ्नोंका विनाश होगा और निश्चित ही अभीष्ट पूर्त्ति होगी। प्रीति नहीं होनेपर स्मृति नहीं होती; जहाँपर प्रीति है, वहीं स्मृति है; जहाँपर स्मृति है, वहींपर प्रीति है।

३४) 'मैं कृष्णका, कृष्ण मेरे'—इस प्रकार एकनिष्ठ विचार ना होनेपर कभी भी गौर-कृष्णकी उपासना सम्भव नहीं होती। *"आमि त' तोमार, तुमि त' आमार, कि काज अपर धने।"*

३५) राधारानीके गणोंमें गणना होनेपर ही परिपूर्ण कृष्णसेवा प्राप्त करनेका सामर्थ्य आता है और उसीमें ही सेवासौन्दर्य और औदार्य-माधुर्यकी पराकाष्ठाका प्रदर्शन होता है।

३६) श्रीकृष्णके अति प्रिय गुरुपादपद्म और गौरकृष्णकी सेवाके अतिरिक्त मेरा अन्य कोई भी कार्य नहीं है—यही भजन चतुर बुद्धिमानका विचार होता है।

३७) जिस दिन मैं आत्मेन्द्रिय-प्रीतिवाञ्छाको दूरसे ही त्याग करके कृष्णेन्द्रिय तर्पण-विधानमें तत्पर होऊँगा, उस दिन ही मेरा मुकुन्दप्रेष्ठ सद्गुरुके पदाश्रयमें कृष्णकथा श्रवण और वास्तविक कर्णबेध-संस्कार होगा।

३८) दस-नामापराध शून्य होकर श्रीनाम ग्रहण करनेपर ही श्रीहरि-गुरु-वैष्णवके प्रति श्रद्धा उत्तरोत्तर बढ़ती जायेगी। निष्ठाके साथ श्रीकृष्णनाम श्रवण-कीर्तन ना कर पानेपर भगवत्-विमुखता ग्रहणकी प्रवृत्ति प्राप्त होती है।

३९) गुरु-वैष्णव सेवा ही बद्धजीवके लिये सर्वश्रेष्ठ कर्त्तव्य है। अवैष्णव-सङ्ग त्याग करके शुद्ध वैष्णवका सङ्ग करनेपर ही हरिभक्ति प्राप्त होनेकी सम्भावना होती है। उनके सान्निध्यमें रहनेपर ही श्रीनाम ग्रहण और हरिकथा प्रचार सुन्दररूपसे सुसम्पन्न होता है।

४०) प्रतिकूलका वर्जन ना होनेपर अनुकूलको ग्रहण करना कभी भी सम्भव नहीं है। इसलिये वास्तव गुणग्राहीगणोंने भजन-विरोधी अन्याभिलाषितादिको त्यागकर साधन-भजनानुकूल परिवेशमें रहनेको ही वास्तव कल्याण या आत्यन्तिक मङ्गल प्राप्त करनेका एकमात्र उपाय कहकर निर्धारित किया है।

४१) भक्तिशास्त्रों और गुरु-वैष्णवोंसे ही हम यह जान सकते हैं कि विशेष सौभाग्यवान् जीव ही भगवत्-कृपा और भक्तकृपासे भक्तिलताके बीजस्वरूप श्रद्धाको प्राप्त करते हैं।

४२) श्रद्धा होनेपर ही सौभाग्यका उदय होता है। श्रद्धा होनेपर ही जीवात्माका शुद्धवृत्तिके द्वारा गोलोक-वृन्दावनमें परम भजनीय वस्तुको सेव्यरूपमें प्राप्त करनेका सुयोग होता है। 'श्रद्धा'-शब्दसे सुदृढ़ विश्वासको समझना चाहिये।

४३) साधुसङ्गके प्रभावसे ही हमारा श्रवण-कीर्तनका सौभाग्य उदित होता है। सौभाग्य उदित होनेपर ही हम अन्धविश्वासको त्यागकर वास्तव उपलब्धिके द्वारा साधु-शास्त्रका सान्निध्य प्राप्त करते हैं। सञ्चित सुकृतिके प्रभावसे जीवका साधुसङ्ग और उसके द्वारा भक्तिकी प्राप्ति होती है। यही भक्ति प्राप्त करनेका क्रम है।

४४) भगवान्की सेवाके उद्देश्यसे उनकी प्रीति कामनाके लिये जो कुछ भी किया जाता है, वही भक्ति है। भज्-धातु सेवायाम्, अर्थात् सेवाका नाम ही भक्ति है।

४५) मायिक संसारमें ऐसा कोई सुख नहीं है जिसके पीछे दुःख नहीं छिपा हो। निरन्तर सुख-शान्ति मायिक संसारमें कभी भी सम्भव नहीं है।

४६) इस हरिविमुख जगत्में साधुओंका बहुत ही अभाव है। इसलिये करुणामय भगवान् अपने प्रियतम किसी निजजनको इस जगत्में साधुश्रेष्ठ महान्तगुरुके रूपमें भेजते हैं। असत्सङ्गके द्वारा ग्रास होने अथवा भोक्ताभिमानके हाथोंसे श्रीगुरुपादपद्म ही हमारी रक्षा करनेमें समर्थ हैं।

४७) जो धन-अर्थ आदिकी प्राप्तिकी आशासे अश्रद्धालु व्यक्तिको हरिनाम या दीक्षादान करते हैं, उनको हरिनाम मन्त्र विक्रेता कहते हैं। वे तुच्छ लाभके लिये अमूल्य रत्नको नष्ट करके स्वयं भजनसे पतित हो जाते हैं।

४८) साधनभक्तिके जितने भी प्रकार है, उनमें एकमात्र नामाश्रयसे ही सर्वसिद्धि होती है—इस प्रकार जिनका विश्वास है, वे ही सर्वोत्तम साधक हैं। भगवान्ने नाममें अपनी समस्त शक्ति अर्पण की है, तभी वाच्यस्वरूप होनेपर भी वाचक श्रीनामस्वरूपकी करुणाका आधिक्य प्रमाणित है।

४९) शुद्धरूपसे नाम करनेके लिये नाम अपराधका विचार रहता है और वही श्रीनामानुशीलनमें प्रबल बाधा-विपत्ति-स्वरूप है। "निरपराधे नाम लैले पाय प्रेमधन।" जो सोलह-नाम बत्तीस-अक्षरके महामन्त्रको केवल जप्य मानकर उसके उच्चकीर्त्तनसे विरत रहते हैं, वे ही शास्त्र और गोस्वामियोंके विचारानुसार नामापराधी हैं।

५०) श्रीरूपानुगगणोंकी भजनीय सम्पत्ति—श्रीराधाकृष्ण मिलिततनु श्रीमन्महाप्रभु हैं। महाप्रभुके अनुगत सेवकगण रूपानुगधारामें स्नान करनेकी इच्छा करते हैं। श्रीरूपपादके क्रियाकलाप, आचार-विचार सभी महाप्रभुकी इच्छाके अनुरूप होनेके कारण गौड़ीयगण रूपानुग होनेका गौरवबोध करते हैं।

५१) प्रतिदिन नियमपूर्वक निरपराध होकर श्रीनामसंख्या पूर्ण करना ही प्रयोजन है। लाख नाम ना करनेपर श्रीभगवान् सेवकके द्वारा प्रदत्त वस्तुको ग्रहण करनेमें अपनी अनिच्छा दिखलाते हैं। जो प्रतिदिन नियमपूर्वक लाख नाम ग्रहण करते हैं, उनको श्रीमहाप्रभु 'लक्षेश्वर' कहते हैं। 'देख, नाम बिना येन दिन नाहि जाय'—उनके इस आदेशका यथोचित पालन करना कर्त्तव्य है।

५२) भक्तिसाधिका कातरभावसे दृढ़ता और निष्कपटरूपमें श्रीनाम-भजनमें तत्पर होंगी। तभी

श्रीनामप्रभुकी कृपा प्राप्त होगी। श्रीनाम ग्रहणकारी व्यक्ति तब यह उपलब्धि कर सकेंगे कि नामी भगवान् और श्रीनाम-स्वरूप एक ही वस्तु है।

५३) श्रीनाम ग्रहणके माध्यमसे ही भगवत् साक्षात्कार सम्भव होता है। श्रीभगवान्‌के निकट क्रन्दन और दैन्य निवेदनके बिना जीवकी साधनमें सिद्धि प्राप्त करना सम्भवपर नहीं है।

५४) चञ्चल मन श्रीनाम-साधनकालमें इधर-उधर विक्षिप्त होनेपर भी उसको वापस लाकर स्थिर करना होगा। अभ्यासयोगके द्वारा ही यह सम्भव है। उस अभ्यासके साथ कुछ वैराग्यका योग भी करना होगा अर्थात् आहार-विहारमें नियम-पालन और संयमका अभ्यास प्रयोजनीय है।

५५) श्रीमद्भगवद्गीता-शास्त्रमें भगवान् श्रीकृष्णने प्रियसखा अर्जुनको मनको वशमें करनेके लिये विधि-विधान दिया है, वही हमारे साधनका विषय है।

५६) परम प्रेमिक भक्त श्रील नामाचार्य हरिदास ठाकुरने श्रीनाम साधनकी बड़ी सुन्दर व्यवस्था और शिक्षा जगत्‌में प्रदान की है। यही हमारे जीवनका आदर्श है।

५७) प्रतिकूल अवस्था होनेपर भी अनुकूल कृष्णानुशीलनके लिये यत्नवान होना होगा। भजनके प्रतिकूलका त्याग करके *'अन्तरनिष्ठा कर, बाह्य लोक व्यवहार'*—इस विषयमें विशेषरूपसे सावधान रहना होगा।

५८) प्रचुर परिमाणमें श्रीनामग्रहण और श्रीहरिकथा श्रवण-कीर्तनके द्वारा ही हृदयकी कालिमा, असत्-तृष्णा, हृदयदौर्बल्य दूर होते हैं।

५९) निष्कपट रूपसे श्रीहरि-गुरु-वैष्णवोंकी सेवामें अपने आपको नियुक्त करनेपर ही तुम्हारा वास्तविक कल्याण होगा, यही तुम्हारे प्रति मेरी शुभेच्छा है। श्रीभगवान् निश्चय ही तुम्हारे ऊपर कृपा करेंगे।

६०) तुम्हारे द्वारा प्रबल निष्ठा और एकान्तिकरूपसे साधन-भजनमें प्रवृत्त होनेपर श्रीभगवान् तुमपर अवश्य ही कृपा करेंगे। तुम दीन-हीन अधमा, अयोग्या कन्या कैसे हो सकती हो? श्रीगौरसुन्दरके कृपाशीर्वादसे श्रीवासपण्डितके घरमें सेवा करनेवाली दुःखीका नाम 'सुखी' हो गया था। धनी व्यक्तिकी पत्नी मीराबाई गिरिधर-गोपालकी आराधना करते हुये सती-साध्वीरूपमें जगत्‌में विख्यात हुई है।

६१) गुरु-वैष्णवोंका सान्निध्य ही जीवके लिए कल्याण-जनक है। वे किसी भी स्थानपर क्यों न हों, वहीं वृन्दावन है, इसलिये श्रील नरोत्तमदास ठाकुरने गाया है—*"यथाय वैष्णवगण, सेइ स्थान वृन्दावन, सेइ स्थाने आनन्द अशेष।"*

६२) गुरु-वैष्णवोंकी कृपादृष्टि साधक या साधिकाके प्रति सब समय रहती है। उनके आशीर्वादसे सब असम्भव सम्भव होते हैं। पङ्गु भी पर्वत लाँघनेमें सामर्थ्य प्राप्त करते हैं और मूक भी वाचाल हो जाते हैं।

६३) जो श्रीभगवान्‌की करुणाके ऊपर पूर्ण निर्भरशील हैं, वे षड्ङ्ग शरणागतिके मूर्त्त प्रतीक हैं, वे ही जगत्‌को भगवत् भागवत-सेवाधर्मकी शिक्षा दे सकते हैं, उन्हींको ही 'गोस्वामी' कहा गया है।

६४) जिनके अमानी-मानद धर्म और तृणादपि सुनीच-भावके भीतरमें भी 'वज्रादपि कठोराणि मृदुनि कुसुमादपि' भाव छिपे होते है, वे ही वास्तविक वैष्णव और जगद्गुरु हैं। इस प्रकारके महत् पुरुषकी कृपा होनेपर भक्तिहीन, पापी, पाखण्ड बुद्धिवालोंका भी आत्यन्तिक कल्याण होता है।

६५) सद्गुरुका पदाश्रय करके श्रीहरिभजनमें प्रवृत्त होनेपर साधक-साधिकाकी किसी प्रकारकी अयोग्यता साधनपथमें बाधाको उत्पन्न नहीं करती है।

६६) परम मुक्तपुरुषगण भी श्रीभगवान्‌की उपासना करते हैं और उनकी सेवामें सब समय संलग्न रहते हैं। इसलिये किसी भी अवस्थामें ही सेवक-सेविका सेवासे छुट्टी या अवसर ग्रहण नहीं कर पाते। किन्तु श्रीभगवान्‌के अशोक-अभय-अमृत-आधार श्रीचरण-कमलोंमें आश्रय ग्रहण करना ही वास्तविक विश्राम है।

६७) श्रीविग्रहका दर्शन जिस प्रकार कानोंके द्वारा भली-भाँतिरूपसे होता है, उसी प्रकार श्रीहरि-गुरुकी सेवापूजा भी परोक्षरूपसे अधिकतर सुन्दररूपसे सम्पादित होती है। इसका प्रमाण, याज्ञिक पत्नियोंने जब श्रीकृष्णके निकट रहनेकी इच्छा प्रकाशित की, तब श्रीकृष्णने कहा—"मेरे निकटमें ना रहकर दूरमें रहकर तुम मेरे श्रीनाम, रूप, गुण, लीलाका अनुसरण करना।" मिलनसे विरह श्रेष्ठ है।

६८) परम करुणामय श्रीहरि-गुरु-वैष्णव बद्धजीवकी विमुखताको दूर करनेके लिये सर्वदा उद्विग्न और स्नेहशील होते हैं। भगवत्-उन्मुख होनेकी चेष्टासे ही बद्धजीवकी गम्भीरता और साधन प्रमाणित और सफल होते हैं। इस साधन-भजनमें मनुष्यमात्रने ही योग्यता प्राप्त की है।

६९) क्षुद्र मर्त्यजीव गुरु-वैष्णवोंकी अप्राकृत महिमा और गुण-गाथाका वास्तवमें वर्णन करनेमें असमर्थ है। "ब्रह्माण्ड तारिते शक्ति धरे जने जने।"

७०) शुद्ध भगवन्नाम चेतन-जिह्वापर ही उच्चारित होता है, वह प्राकृत इन्द्रियोंके द्वारा ग्राह्य वस्तु नहीं है। सेवोन्मुख इन्द्रियोंके द्वारा ही वे अप्राकृत श्रीनामब्रह्म सेवित होते हैं और साधक-साधिकाके निकट अपने आपको प्रकाशित करते हैं।

७१) सात समुद्रोंको यदि स्याही रूपमें मान लें, हिमालयका गौरी-शिखर यदि लेखनी हो और पृथ्वी यदि कागज़ हो, तो भी गुरु-भगवान्‌की महिमा सम्पूर्ण रूपसे वर्णन करना असम्भव है। वे अपनी महिमासे स्वयं ही महिमामान हैं, उसे प्रकाश करनेके निमित्त किसी माध्यमकी वे अपेक्षा नहीं रखते हैं। चन्द्र, सूर्यके उदित होनेके साथ ही जैसे उनका गौरव प्रकाशित होता है, गुरु-भगवान्‌की महिमा भी उसी प्रकारसे है।

७२) प्राकृत अहङ्कारका त्याग करके निष्कपट होनेपर स्वयंको दीन-हीन मानकर वैष्णवोंकी कृपा प्राप्त करनेकी योग्यता अर्जित होती है।

७३) जो सद्गुरुके चरणोंका आश्रय करके श्रीहरिभजनमें मनको निवेश करती हैं, वे निःसन्देह ही सौभाग्यवती हैं। वे दुर्भागिनी कैसे होंगी? उनकी दुर्दैव नामक कोई भी वस्तु नहीं है।

७४) श्रीनामसेवा, श्रीधामसेवा और श्रीगौरकाम अर्थात् श्रीगौरसुन्दरके मनोऽभीष्ट पूरणके द्वारा ही उनकी असमोर्ध्व करुणाकी प्राप्ति होती है।

७५) साधु-गुरुकी अहैतुकी कृपा ही जीवका एकमात्र पाथेय (यात्रा-व्यय धन) है। मायाबद्ध जीव गुरुकृपासे कृष्णोन्मुख होता है। सरल हृदय और निरपराध होनेपर ही हरि-गुरु-वैष्णवकी कृपाकी उपलब्धि सम्भव है।

७६) जागतिक स्त्री-पुरुष अभिमान रहने तक अप्राकृत नवीनमदन श्रीगोपीनाथकी साक्षात् सेवा सम्भवपर नहीं है। भीतरमें परस्पर स्त्री-पुरुष आसक्तिका त्याग करनेपर ही श्रीभगवान् जीवको अपना सेवाधिकार प्रदान करते हैं, उसमें प्राकृत स्त्री-पुरुष रूपकी कोई प्रधानता नहीं है।

७७) साधक-साधिकाके द्वारा अपनी अयोग्यताके विषयको समझ लेनेपर ही उनके कल्याणकी सम्भावना दिखलायी देती है—यह प्रमाणित है।

७८) प्राकृतिक अहङ्कार और कपटता ही साधन-भजनके बाधा स्वरूप हैं, वे जीवको मोहमें अन्धा कर देते हैं और भक्तिपथसे दूर फेंक देते हैं।

७९) वास्तविक सद्गुरु किसीको भी शिष्य नहीं बनाते, अपितु वे अपने परमसेव्य श्रीभगवान्‌के वैभवरूपमें ही उनका दर्शन करते हैं। कृष्णप्रेष्ठ श्रीगुरुपादपद्म अयोग्या किङ्करीरूपमें ही अपने सिद्धस्वरूपका परिचय प्रदान करते हैं।

८०) बिना विचार किये गुरुकी आज्ञाका पालन करना ही शिष्यका शिष्यत्व है और उनके शासनको स्वीकार करना ही पूर्ण शरणागतिका मापदण्ड है। स्नेह और शासनके द्वारा अवश्य ही चित्तशुद्धि होती है। श्रीगुरुपादपद्मकी आज्ञा, निर्देश, उपदेश व इच्छाके अनुसार जीवनपथमें अग्रसर होना ही प्रत्येक वास्तवधर्मी साधक-साधिकाका एकमात्र कर्त्तव्य है।

८१) श्रीनाम ग्रहणादि भक्त्याङ्ग-याजन और भजन-साधन ही मूल वस्तु है। उसीसे ही समस्त ग्रहशान्ति और रोग-शोक दूर होते हैं।

८२) भगवान् अपने धाममें किसी पापी व्यक्तिको तो खींच सकते हैं, किन्तु अपराधी जीवपर वे कभी भी कृपा नहीं करते। इसलिये नामापराध, धामापराध और सेवापराधसे हमें सावधान रहना चाहिये।

८३) भक्त चिन्मय नेत्रोंसे श्रीभगवान्‌के जिस अप्राकृतिक रूप-माधुरीका दर्शन करते हैं, वही श्रीविग्रहमें प्रकटित अथवा प्रतिफलित होती है। उसीको मूर्त्ति कहते हैं और वे ही पूज्यास्पद हैं।

८४) जगत्‌के अनन्त कोटि अस्पतालोंकी अपेक्षा एक व्यक्तिको आत्मधर्ममें नियुक्त करना लाख गुना श्रेष्ठ कर्त्तव्य है, ऐसा साधु-शास्त्र-भगवद्वाक्यमें स्वीकृत हुआ है।

८५) जबतक जीव शास्त्रीय सिद्धान्तके साथ अपने जीवनको तुलनामूलक रूपमें ढाल नहीं सकता, तबतक वह अनुचित पथपर ही चलता जायेगा।

८६) तुम्हारे वर्तमान या भविष्यकालके दायित्वको ग्रहण करने या भारवहन करनेमें मैं व्याकुल नहीं हूँ, किन्तु मेरे स्नेहपूर्ण उपदेश-निर्देशका पालन करनेके लिये यदि तुम चेष्टाशील होवोगे, तभी मैं विशेषरूपसे प्रसन्न होऊँगा।

८७) तुम्हारे श्रीभगवान् हैं, तुम्हारे गुरु-वैष्णव हैं। तुम अपने आपको निसङ्ग अर्थात् अकेला क्यों समझ रहे हो?

८८) 'उठरे-उठरे भाई, आर त' समय नाइ'—यह वाक्य सब समय जैसे चेतन कानोंमें झंकृत होता है।

८९) तुम कृष्णधनमें धनी होनेके लिये यत्न करो, प्राकृत समस्त धन ही तुच्छ है—ऐसा समझ जाओगे।

९०) भूल-त्रुटियोंको लेकर ही मनुष्यका जीवन है, किन्तु उनके संशोधनका उपाय या व्यवस्था है, उसके द्वारा ही मनुष्यकी रक्षा होती है।

९१) प्राकृत सहजिया और जाति गोस्वामी व्यवसायी-पाठक या कथावाचक पाठ या व्याख्याको श्रवण करनेकी आवश्यकता नहीं है। उससे बहुत बार प्रतिकूल शिक्षा हो जायेगी।

९२) गुरु और भगवान्‌को सब समय पथ-प्रदर्शकरूपमें देखनेपर तब और किसी भयकी सम्भावना नहीं है।

९३) सब समय श्रीगुरु-वैष्णव तुम्हारे रक्षक उपदेष्टारूपमें वर्तमान रहते हैं।

९४) शास्त्र हमें भोगी या त्यागी होनेकी शिक्षा नहीं देते। हम श्रद्धा-भक्ति प्राप्त करके गुरु-वैष्णवोंकी पादुका वहन करनेवाले हों—यही श्रेष्ठ अभिलाषा और आकाङ्क्षा है।

९५) साधन भजनको त्यागकर शरीरकी चिन्तामें व्यस्त होनेपर हम देहारामी हो जायेंगे और हरिभजनसे बहुत दूर चले जायेंगे।

९६) सद्गुरुका पदाश्रय ना होनेपर सिद्धान्तविरोध और रसाभास-दोष आकर हमें ग्रास कर लेंगे और विपथपर चलायेंगे।

९७) भक्ति प्राप्त करनेके इच्छुक साधक-साधिका तार्किक-वृत्तिसे सब समय दूर रहेंगे।

९८) जगत्‌की प्रत्येक घटना स्थिर मस्तिष्कसे चिन्ता करनेपर ही श्रीभगवान्‌की अहैतुकी कृपाके विषयकी उपलब्धि की जा सकती है।

९९) शुद्ध आचरणवाले एकनिष्ठ वैष्णवोंके श्रीमुखसे ही हरिकथा श्रवणका विधान विशेषरूपसे शास्त्र आदिमें प्रदत्त हुआ है, अन्यथा श्रवण-कीर्तनके सुफलकी प्राप्ति नहीं होती है।

१००) तुम कभी भी अकेले नहीं हो, तुम्हारे साथ सब समय ही श्रीगुरु और भगवान् साक्षात् और परोक्ष रूपसे रहते हैं।

१०१) प्राथमिक अवस्थामें अपराधादि रह सकते हैं, किन्तु श्रीनामप्रभु ही ऐकान्तिकता और भजननिष्ठाका विचार करके उसे दूर कर देते हैं।

१०२) श्रील अद्वैताचार्य प्रभु, श्रीवास पण्डितादि सभी मृदङ्ग-करताल लेकर 'हरे कृष्ण' महामन्त्रका कीर्तन करते हैं। यहाँपर संख्यापूर्वक या असंख्या जपादिका कोई विधि-निषेध नहीं है। महामन्त्र एक ही साथ जप्य और कीर्तनीय है।

१०३) श्रीभगवान्‌के अन्तरङ्ग प्रियजन अपने आपको सब समय छिपाकर रखना चाहते हैं, वे वैष्णवोंके अप्राकृत २६ गुणोंके द्वारा सदा ही समलंकृत हैं—अमानी-मानद धर्ममें दीक्षित हैं।

१०४) प्राथमिक साधक-साधिकाके नाम ग्रहणकालमें दोष-त्रुटि, नामापराध हो सकते हैं, उससे निरुत्साहित न होकर आदरपूर्वक यत्न करते हुए श्रीनाम लेते-लेते नामापराध दूर होता है।

१०५) श्रीभगवान्‌को और श्रीगुरुको प्रेम करनेपर ही जड़-विषयोंसे चित्त ऊर्ध्वगतिको प्राप्त करता है।

१०६) प्रत्यक्ष साधुसङ्गके अभावमें शास्त्ररूपी साधुसङ्ग अर्थात् सत्-शास्त्रकी आलोचनाकी विशेष उपयोगिता रहती है। सत्-सिद्धान्तसे अवगत होनेके लिये धीर-स्थिर भावसे ग्रन्थादिका पाठ करना कर्त्तव्य है, इसके द्वारा भक्तिवृत्ति दृढ़ होती है।

१०७) गुरुदेव आश्रय-विग्रह हैं—वे श्रीभगवान्‌की अति प्रिय सेविका हैं। श्रीगुरुतत्त्व—शक्ति या प्रकृति है। श्रीभगवान्‌की सेवाशिक्षा ही उनके स्वरूपका धर्म है। गुरुदेव गोपिका-सखियोंकी अनुगता सेवाधिकारिणी हैं। विषय-विग्रह भोक्ता भगवान्‌के सेवाविलासमें सुदक्ष होनेके कारण उनकी अति प्रिय हैं।

१०८) श्रील गुरुदेवको भगवत्-स्वरूप जानना होगा, किन्तु जब स्वयं भगवान् ही गुरुरूपमें अवतीर्ण होते हैं, तब वे विषय-विग्रहरूपमें अधिष्ठित आश्रय-विग्रहके समान कार्य करनेपर भी तत्त्वतः भोक्ता और परमसेवनीय वस्तु हैं।

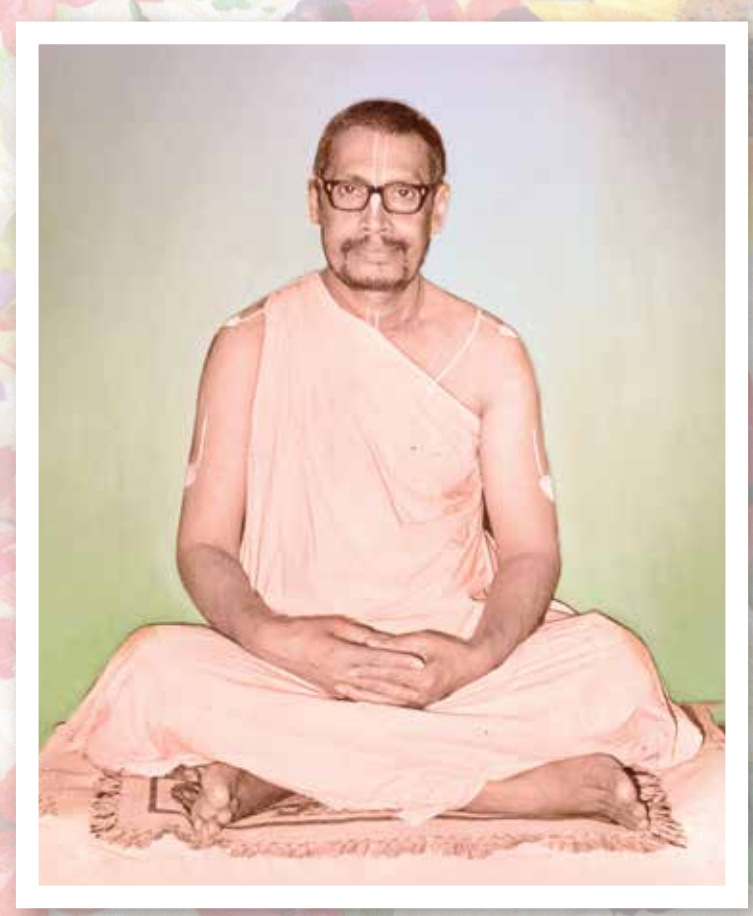

● श्रीगौरसुन्दरका अनर्पितचिर महादान अर्थात् श्रीराधा–माधव–भजनरीति सुदुर्लभ होनेपर भी उन्होंने उसका महादान किया है। उसके प्रति मेरा कुछ भी अनुशीलन और आलोचनाका समय एवं सुयोग नहीं हुआ है। मैं अनर्थ और मायाके प्रभावमें इतना अधिक आविष्ट हूँ कि उस अनर्थ राशिको दूर करके अपना संशोधन नहीं कर पा रहा हूँ।

● जिनके अमानी–मानद धर्म और तृणादपि सुनीच–भावके भीतरमें भी 'वज्रादपि कठोराणि मृदुनि कुसुमादपि' भाव छिपे होते है, वे ही वास्तविक वैष्णव और जगद्गुरु हैं।

—श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज

RNI NO. - UPHIN/2004/13352
POSTAL REGN NO. - MATHURA - 013/2022-2024
DATE OF PUBLICATION - 28 DECEMBER 2021

मैं पूज्यपाद वामन महाराजजीके साथमें प्रायः ६० वर्ष रहा हूँ। मैंने उनके जीवन चरित्रको बहुत निकटसे देखा और समझा है, उनमें वैष्णवोचित सभी लक्षण थे। वे स्वाभावसे ही बड़े सरल, गम्भीर, सहिष्णु, गुरु–निष्ठा सम्पन्न, वैष्णव–सेवा परायण थे। इन्हीं सब गुणोंके कारण वे भक्तिके अति उच्च सोपानपर उपस्थित हो सके। उनकी गुरुनिष्ठा अद्भुत थी। गुरु–सेवाके लिए वे अपने प्राणोंको हाथोंमें लेकर चलते थे। हमने बहुत गुरुसेवकोंको देखा है, किन्तु जिस प्रकारसे पूज्यपाद वामन महाराजजीने अपनी ब्रह्मचर्य अवस्था और संन्यासकी अवस्थामें परमाराध्यतम श्रील गुरु–महाराजकी तन, मन, वचन, भावना सब प्रकारसे सेवा की है, ऐसे गुरुसेवक जगतमें विरले ही हैं।

—श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज